नयी तालीम

नयी तालीम का ध्रुव तारा
खादी और गोसेवा
विकास का सच्चा अर्थ
'ईश्वर–अल्ला तेरे नाम'
देवनागरी लिपिकी लोकप्रियता
विश्व हिन्दी विद्यापीठ
शोषण और पोषण

अखिल भारत नयी तालीम समिति

सेवाग्राम

वर्ष : २५] अगस्त–सितम्बर, १९७६ [अंक : १

वर्ष २५

अंक १

अनुक्रम

हमारा दृष्टिकोण		
नयी तालीम का ध्रुव तारा	९	महात्मा गांधी
खादी और गोसेवा	११	विनोबा
विकास का सच्चा अर्थ	१७	डा. इवान इलिच
'ईश्वर-अल्ला तेरे नाम'	२३	श्रीमन्नारायण
देवनागरी लिपि की लोकप्रियता	३०	डा. मलिक मोहम्मद
विश्व हिन्दी विद्यापीठ	३७	शंकरराव लोंढे
शोषण और पोषण	४३	सरला देवी
सेवाग्राम आश्रम वृत्त	४७	

अगस्त-सितम्बर, '७६

* 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नयी तालीम' का वार्षिक शुल्क बारह रुपये है और एक अंक का मूल्य २ रु है।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी संख्या लिखना न भूलें।
* 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नयी तालीम समिति, सेवाग्राम के लिए प्रकाशित और राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

हमारा दृष्टिकोण

ऋषि विनोबा

वर्ष : २५

अंक : १

इसी सितम्बर को ऋषि विनोबा अपने जीवन के ८१ वर्ष पूरे कर रहे हैं। इस शुभ अवसर पर हम 'नयी तालीम' के पाठकों की ओर से उनका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

बहुत वर्ष पहले श्रद्धेय जमनालालजी बजाज ने हमसे कहा था, 'विनोबाजी को हम आज भले ही पूरी तरह न पहचानें, किन्तु मेरा पक्का विश्वास है कि वे भारत के प्राचीन ऋषियों से किसी प्रकार कम नहीं हैं। जैसे-जैसे वर्ष बीतेंगे वैसे-वैसे हम विनोबाजी की विशेषताओं को समझेंगे।' स्वर्गीय जमनालालजी की यह भविष्यवाणी कितनी सही और सच साबित हुई है।

पूज्य विनोबाजी का व्यक्तित्व सचमुच विलक्षण है। उनमें ज्ञान, भक्ति और कर्म का अद्भुत समन्वय है। वेद, उपनिषद, कुरान, बाइबिल और धम्मपद आदि सभी धार्मिक ग्रन्थों का उनका अध्ययन बेजोड़ है। भारत की तो वे सभी प्रादेशिक भाषाओं से भली भाँति परिचित हैं। साथ ही-साथ उन्होंने विदेशों की भी कई भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है। विभिन्न भाषाओं के हजारों-लाखों श्लोक व भजन उन्हें कण्ठस्थ हैं। इसके अलावा

उनका हृदय प्रेम, करुणा और भक्ति से भरा हुआ है और दीन व दुखिया के दर्द से सदा प्रभावित रहते हैं। तेरह वर्ष तक भारत के विभिन्न प्रदेशोमे उन्होंने भूदान प्राप्त करने के लिये लगभग चालीस हजार मील की पद यात्राएँ की और करीब ४४ लाख एकड जमीन प्राप्त की, जिसमें से करीब १५ लाख एकड भूमि बेजमीन खेतिहर मजदूरो में बँट भी चुकी है। किन्तु उनका ध्येय सिर्फ जमीन बाँटना ही नही है। ऋषि विनोबा तो सभी के हृदयो को जोडने का सतत प्रयत्न करते रहते है। भूदान यात्रा में 'एक बनो, नेक बनो' उनका मूल मंत्र रहा था। जब उनसे पूछा जाता था कि आप भूदान आन्दोलन द्वारा जमीन के छोटे छोटे टुकडे क्यो कर रहे है? विनोबाजी का उत्तर था "मुझे जमीन के टुकडो की इतनी चिन्ता नही है, जितनी कि लोगोके दिलो के टुकडे होने की। यदि भूदान से अमीरो और गरीबो के दिलो को करुणा द्वारा जोडा जा सके, तो मैं अपने कार्य को सफल मानूँगा।"

इन दिनो ऋषि विनोबा पंच शक्तियों के सहयोग पर बहुत जोर देते हैं। पहली शक्ति है—जन शक्ति, क्योंकि जनता के सहयोग के बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। दूसरी शक्ति है—विद्वतजन या आचार्यो की शक्ति। किसी भी देश के आचार्य ही जनता को सही दिशा दर्शन दे सकते है। तीसरी शक्ति है—महाजन शक्ति। उद्योग पतियो और व्यापारियो की ताकत। इसका सहयोग भी देश के द्रुत विकास के लिए आवश्यक है बशर्ते कि वह सेवा भावना से ओतप्रोत हो। चौथी है—सज्जन शक्ति। किसी भी राष्ट्र में सज्जनो की संख्या तो कम ही होती है लेकिन उनका नैतिक प्रभाव जनता पर पडता ही है। और पाँचवी शक्ति है—शासन शक्ति। पूज्य विनोबाजी समझाते हैं कि हाथ की पाँचो उंगलियो में यह शक्ति 'अनामिका' है। उसका प्रयोग कम से कम होना चाहिये। अच्छा शासन वही है, जो अदृश्य रूप से कार्य करे और अन्य सभी शक्तियो का सहयोग प्राप्त करे। इस पंच शक्ति सहयोग का विचार पूज्य विनोबाजी ने करीब तीन वर्ष पहले पवनार में ट्रस्टीशिप सम्मेलन के अवसर पर दिया था। इस विचार का प्रभाव सभी पर बहुत गहरा पडा है।

आचार्य विनोबाजी ग्राम-स्वराज्य पर भी बहुत बल दे रहे हैं। जब तक हमारे गाँवो में ग्राम सभाओ द्वारा आर्थिक सयोजन नही होता, तब तक अहिंसक समाज की रचना वास्तविक ढग से सफल नही होगी। राष्ट्रपिता महात्मा गाधी की तरह ही विनोबाजी समझाते हैं कि प्रत्येक गाँव अन्न और वस्त्र के क्षत्रो में स्वावलम्बी बने। गाँव वालो के लिय उनका नारा है—'मक्खन खाओ, कपडा बनाओ'। इस समय तो हमारे गाँवो का दूध और मक्खन शहरो में बेचा जाता है और उसकी आमदनी स लोग कपडा खरीदते हैं। सभी दृष्टि से यह गलत व्यवस्था है। इसके कारण ग्रामीण जनता का स्वास्थ्य भी गिरता जा रहा है और उनका आर्थिक शोषण घटन के बजाय, बढ़ रहा है। हरेक ग्राम-सभा का काम सर्वानुमति से होना चाहिये-यह भी विनोबाजी का आग्रह रहा है बहुमत द्वारा शासन की प्रणाली समाज को तोडने वाली है जोडन वाली नहीं। इसीलिये विनोबाजी 'सकलायतन पद्धति' पर बहुत जोर देते हैं।

मूलत ऋषि विनोबा एक अनभवी और विद्वान शिक्षक है। पूज्य बापूजी के बुनियादी शिक्षा के विचार को उन्होंने शक्त और सूरत दी और बहुत वर्षो तक उसका प्रयोग भी किया। तीन वर्ष पहले सेवाग्राम के राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन के अवसर पर उन्होंन हमें एक नया मत्र दिया था—'योग, उद्योग और सहयोग'। इन तीनो सिद्धान्ता के आधार पर ही हमारी शिक्षा पद्धति में आवश्यक सुधार किये जा सकते हैं।

इन दिनो पूज्य विनोबाजी ने गोवध बन्दी का कठोर सकल्प किया है और वे चाहते है कि उनके आगे जन्म दिन तक सारे देश में गायो की कत्ल समाप्त होना चाहिये और सुप्रीम कोर्ट की व्याख्या के अनुसार हमारे सविधान का ४८ अनुच्छेद सभी राज्यो में सख्ती से लागू करना चाहिये। यह ख्याल करना गलत होगा कि उनकी यह माँग हिन्दू धर्म की भावना से प्रभावित हुई है और इसलिए वह 'सेक्यूलर स्टेट' में उचित नही है। ऋषि विनोबा ने स्वय कुरान शरीफ व बाइबिल का बहुत गहरा अध्ययन किया है। आजकल तो वे

अकसर अपने को 'मौलाना विनोबा' के नाम से भी पुकारते हैं। उन्होंने सभी मजहबों के बुनियादी सिद्धान्तों के नवनीत को पुस्तकों के रुपमें प्रकाशित भी किया है। इसलिये यह इशारा करना कि उनकी माँग भारत जैसे सेक्यूलर राज्य में अनुचित है, नितान्त भ्रामक होगा। हमें यह भी अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि 'सेक्यूलर' का अर्थ 'धर्म-विहीन' नही, बल्कि 'सर्व-धर्म-समभावी' राज्य है। पूज्य विनोबाजी की गोवध-बन्दी सम्बन्धी माँग राष्ट्रीय, सांस्कृतिक व रचनात्मक भावना से ओतप्रोत है।

इसमें तनिक भी सन्देह नही कि ऋषि विनोबा का जीवन और कार्य सैकड़ो वर्षों तक अन्धकार को चीरता हुआ प्रकाश-स्तम्भ की तरह जगमगाता रहेगा। देश और दुनिया उनके भूदान व ग्रामदान आन्दोलन को भले ही भूल जाय, किन्तु एक महान शिक्षा-शास्त्री, प्रगाढ विद्वान, स्वतत्र और मौलिक चिन्तिक व एक दिव्य कोटि के ऋषि के रुप में विनोबा को मानव-समाज कृतज्ञता और आदर के साथ स्मरण करता रहेगा।

नये विश्वविद्यालयों की माँग :

कुछ समय पहले लोकसभा में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री प्रो० नूरुल हसन ने कहा था कि विभिन्न राज्य-सरकारें नये विश्वविद्यालय स्थापित करने के लिये विवेकहीन माँगे करती रहती है। एक प्रकार से हमारे देशमें नयी युनिवर्सिटियाँ खोलने की 'क्रेज़' हो गई है। इसलिये शिक्षा-मत्रालय ने यह स्पष्ट कर दिया है कि युनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन की स्वीकृति के बिना भविष्य में कोई नया विश्वविद्यालय खोलनेकी इजाजत नही दी जायगी।

हमें यह मान्य करना चाहिये कि भारत मे उच्च शिक्षा का स्तर ऊँचा रखने के लिये नये-नये विश्वविद्यालय खोलते जाना वांछनीय नही है। जब कोई नयी यूनिवर्सिटी स्थापित होती है, तो एक वाइस-चांसलर और कुछ अन्य पदाधिकारी नियुक्त कर दिये जाते हैं। रजिस्ट्रार के ऑफिस में कुछ लोगो को नौकरियाँ मिल जाती हैं। प्रोफेसरो को भी

नये विश्वविद्यालय के अन्तर्गत कुछ ऊंचे पद प्राप्त हो जाते हैं, और उनमें से काफी लोग परीक्षक भी बन जाते हैं, जिससे उन्हें अधिक आमदनी होने लगती है। किन्तु यह निश्चित है कि उच्च शिक्षण और परीक्षाओं का स्तर नीचे गिर जाता है। शिक्षा की प्रगति की दृष्टि से यह हितकर नहीं है।

भविष्य में यदि कोई नया विश्वविद्यालय खोला जाय तो उसके लिये विशेष कारण होने चाहिए। उदाहरण के लिये मुझे स्मरण है कि जब उज्जैन में विश्वविद्यालय स्थापित करने का प्रस्ताव पेश किया गया था, तब शिक्षा मंत्रालय को यह आश्वासन दिया गया था कि वह कालिदास अकादमी के रूप में ही होगा और वहाँ भारत के प्राचीन साहित्य के अध्ययन पर विशेष बल दिया जायगा। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। इस समय उज्जैन विश्वविद्यालय भी अन्य युनिवर्सिटियों की तरह ही पढ़ाई व परीक्षाओं का सामान्य प्रबन्ध कर रहा है।

हमें ज्ञात हुआ है कि हाल ही में दक्षिण भारत में मदुराई के नजदीक गांधीग्राम के ग्रामीण महाविद्यालय को एक ग्रामीण विश्वविद्यालय के रूप में भारत सरकार ने मान्य किया है। हम इसे सही कदम मानते हैं। यदि देश में इस प्रकार के कुछ और ग्रामीण विश्वविद्यालय स्थापित किये जाँय, तो अच्छा रहेगा। आदिवासियों के पिछड़े क्षेत्रों में यदि कुछ नये प्रकार के विश्वविद्यालय खोले जाँय, तो हम उसका स्वागत करेंगे। शर्त यह है कि इस तरह की यूनिवर्सिटियाँ पिछड़े हुए वर्गों की आवश्यकताओं के अनुरूप हों और उनमें नया पुरुषार्थ पैदा करें। यदि ऐसा न हुआ, तो पिछड़े वर्गों की यह कुसेवा होगी और उनमें अधिक बेकारी फैल जायगी।

हम आशा करते हैं कि नये विश्वविद्यालय खोलते वक्त इन सभी पहलुओं का गम्भीरता से विचार किया जायगा। नहीं तो नये नये विश्वविद्यालय खोलने की 'क्रेज' के कारण हमारे देश की उच्च शिक्षा का स्तर और भी नीचे गिरता जायगा।

स्कूलों में अँग्रेजी का स्थान :

हाल ही में भारत सरकार के शिक्षा-मन्त्रालय ने सभी राज्य सरकारों को एक परिपत्र भेजा है, जिसमें आग्रह किया गया है कि सभी स्कूलों में अँग्रेजी की पढाई छठवें से दसवें वर्ग तक अनिवार्य कर दी जाय। एक प्रश्न के उत्तर में केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री प्रो. नूरुल हसन ने संसद मे यह भी स्पष्ट किया कि ग्यारहवीं क्लास की परीक्षा में अँग्रेजी को एच्छिक स्थान ही दिया जायगा। इस परिपत्र के अनुसार कई राज्यों ने यह निश्चय भी कर लिया है कि स्कूलों में छठवीं कक्षा से अंग्रेजी को लाजमी ढग से पढाया जाय।

इस परिपत्र के आरम्भ में प्रधान-मंत्री के कुछ भाषणोंके उद्धरण दिये गये है, जिसमें उन्होंने बहुत जोर दिया है कि अन्तराष्ट्रीय क्षेत्र मे अन्य राष्ट्रों के मुकाबले में हमारे प्रतिनिधियो का अँग्रेजी भाषा का स्तर गिरता जा रहा है, इसलिये हमारे देश में अँग्रेजी के अच्छे ज्ञान पर अधिक ध्यान देना आवश्यक है।

इस विषय में तो दो राय नही हो सकती कि हम जो भी विदेशी भाषा सीखें, वह अच्छी तरह सीखें। विदेशी भाषाओंके ज्ञान से हमारा अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क भी अधिक सम्पन्न और उपयोगी बनता है, किन्तु हमारे विद्यालयो में सभी विद्यार्थियों को अँग्रेजी भाषा अनिवार्य रुप से पढाई जाय--यह उचित प्रतीत नही होता।

इस समय संसार में अँग्रेजी भाषा बहुत व्यापक ढग से पढी और बोली जाती है। यह निर्विवाद है। भारत के इतिहास की दृष्टि से भी विदेशी भाषाओं मे अँग्रेजी का प्रमुख स्थान रहना चाहिये। साथ ही साथ दुनिया की दूसरी भाषाओ का ज्ञान भी हमारे देश में फायदेमन्द होगा। उदाहरण के लिये यदि हमारे विद्यार्थी स्कूलों और कालेजों में चीनी, जापानी, नेपाली, बर्मी आदि एशिया की भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकें, तो कई दृष्टि से बहुत उपयोगी साबित होगा। फ्रेंच, जर्मन व रुसी भाषाओं की जानकारी भी उपयुक्त होगी। लेकिन इन सभी विदेशी भाषाओंकी शिक्षा ऐच्छिक होनी चाहिये,

अनिवार्य नही। देशमें ऐसे बहुत कम लोग होंगे जिन्हें अन्तर्राष्ट्रीय क्षत्रमें काम करने की आवश्यकता पड़ेगी। इन थोडे से व्यक्तियों की सुविधा के कारण अंग्रेजी भाषा को शहरों और गाँवो के सभी छात्रों पर लाजमी तौर पर लादा जाय—यह न्यायसंगत नहीं होगा।

सभी स्कूलों में अच्छी अंग्रेजी सिखाने के लिये हमारे पास शिक्षक भी नहीं है। वे विद्यार्थियो को टूटी फूटी और गलत उच्चारण सहित अंग्रजी सिखायग, जिससे कोई लाभ नही होगा जिन्हें अंग्रजी या अन्य कोई विदेशी भाषा सीखनी हो उन्हें बहुत अच्छी सुविधा दी जानी चाहिये और उसके लिये विशेष प्रबन्ध भी किया जाय। लेकिन एक विदेशी भाषा को छठवें वर्ग से ही अनिवार्य बना देना न उपयोगी होगा, और न शिक्षा शास्त्र की दृष्टि से जायज होगा। प्रत्येक विद्यार्थी को पहले अपनी मातृभाषा कुशलतापूर्वक सीख लेनी चाहिये, फिर राष्ट्रभाषा हिन्दी और बाद में एक विदेशी भाषा भी। शिक्षा शास्त्र की दृष्टि से यही वैज्ञानिक व तर्कसंगत होगा। हम आशा करते है कि भारत सरकार और राज्य सरकार इस विषय पर पुनः गम्भीरता से विचार करेगी।

फिल्मों पर सेंसर कड़ा हो

हमें यह जानकर खुशी हुई कि केन्द्रीय सूचना व प्रसारण मंत्रालय की ओर से फिल्म निर्माताओं को आदेश दिया गया है कि वे अपनी फिल्मो में हिंसा और 'सेक्स' को बढावा न दें। यदि वे ऐसा करेंगे तो उनकी फिल्में बड़ी कड़ाई से सेंसर की जायेंगी और उन्हें आर्थिक हानि भुगतनी पड़ेगी। यह चर्चा तो बहुत वर्षों से चल रही है कि हमारी फिल्मों का स्तर ऊँचा हो ताकि वे नौजवानो के सामने उच्च नैतिक व सामाजिक मूल्य पेश कर और वर्तमान सामाजिक बुराइयो से उन्हें दूर रखें किन्तु अभी तक हमारी फिल्मो का गुणात्मक स्तर ऊँचा होने के बजाय नीचे गिरता ही जा रहा है। एक ओर शिक्षण संस्थाओ में विद्यार्थियो के चरित्र गठन पर जोर दिया जाता है और दूसरी ओर गन्दी फिल्मो को देखकर हमारे नौजवान चरित्रहीन बन रहे हैं।

यह जाहिर है कि अगर समुचित ध्यान दिया जाय, तो विद्यार्थियों को फिल्मों द्वारा विभिन्न प्रकार का उपयोगी शिक्षण दिया जा सकता है। लेकिन अगर हमारी फिल्मों में काम-भावना और हिंसा के दृश्यों का ही अधिक प्रभाव बना रहे, तो लाभ के बजाय हानि ही होती है। हमें उम्मीद है कि सूचना व प्रसारण-मंत्रालय इस ओर सख्ती से कदम उठायेगा, ताकि फिल्मों का स्टैंडर्ड अच्छा बने और उनके द्वारा नयी पीढ़ी को सही दिशा-दर्शन मिलता रहे।

मन जीवन की व्याख्या ही ऐसी की है—इसमें 'त्याग' दो मात्रा में और 'भोग' एक मात्रा में होता है। जैसे हाइड्रोजन दो मात्रा में और ऑक्सीजन एक मात्रा में लेने से पानी बनता है, उसी तरह से त्याग दो मात्रा में और भोग एक मात्रा में हो, तो जीवन बनता है। आगे त्याग, पीछे त्याग, बीच में भोग—इस तरह एक भोग के इर्द गिर्द दो त्याग हम खड़े करते हैं, तब जीवन बनता है।

—विनोबा

महात्मा गांधी :

नयी तालीम का ध्रुव तारा

(जनवरी १९४५ मे सेवाग्राम में हिन्दुस्तानी तालीम संघ की ओर से एक राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन आयोजित किया गया था। उन दिनों महात्मा गांधी का स्वास्थ्य अच्छा नही था। इसलिये उन्होंने सम्मेलन के लिये एक लिखित संदेश भेजा था, जो पाठकों की जानकारी के लिये यहाँ दिया जा रहा है।)

मेरी उम्मीद तो थी कि इस मजलिस को खोलते हुए मैं दो शब्द बोलकर कहूँगा, लेकिन ईश्वर ने और ही सोचा था। मुझको खाँसी वगैरह के कारण गूँगा बनाना था। इसलिए जो कहना चाहता था, सो लिख लिया है।

आज तक अगरचे हमारी तालीम तो नई थी तो भी हम एक उपसागर में रहे। खुले समुद्र से उपसागर सुरक्षित है। उसकी ओर कुछ रक्षा रहती है। हमारा कार्यक्रम बँधा हुआ है। अब हम उपसागर को छोडकर भरे समुद्र मे फेंके जा रहे है। वहाँ ध्रुव तारे को छोडकर हमारा कोई रक्षक नही। वह ध्रुव तारा हाथ का ग्रामोद्योग है। अब हमारा क्षेत्र सात से चौदह साल के बालक नही है लेकिन माँ के पेट से पैदा होते है वहाँ से लेकर मरते है वहाँ तक हमारा अर्थात नई तालीम का क्षेत्र है। इसलिये हमारा काम बहुत बढ गया है। लेकिन काम करनेवाले तो वही रहे।

इसकी हम परवाह न करें। हमारा सच्चा साथी सत्यरूप ईश्वर है। वह हमको कभी धोखा नही देगा। वह सत्य हमारा साथी तभी बन सकता है, जब हम किसीकी परवाह न करके उस सत्य पर डटे रहेंगे। उसमें न आडम्बर को जगह है, न अहंकार को, न राग क्रोध को। हम सब देहातियो के शिक्षक बनते हैं। इसमे इनाम काम है, तो वह हमारे दिल का साक्षी, बाहर का कोई नही। सत्य की खोज में हमें साथी मिलें, तो भी सही, न मिले तो भी सही।

यह नई तालीम पैसो पर निर्भर नही है। नई तालीम का खर्च तालीम से ही निकलना है, भले कैसी भी टीका हो। मैं जानता हूँ कि सच्ची तालीम स्वाश्रयी है। इसमें शरम नही है, लेकिन नयापन है।

अगर हम इसे बना सके और कह सके कि उसीमे मन यानी मस्तक का सच्चा विकास होता है, तो आज जो हमारी हँसी उडाते है, वही नई तालीम की तारीफ करगे और नई तालीम सर्वव्यापक बनेगी। और आज के सात लाख देहात, जो हमारी सब प्रकार की निर्धनता बताते है, समृद्ध होंगे। वह समृद्धि बाहर से नहीं आवेगी। मगर भीतर से, हमारे देहातो के शुद्ध उद्योग से आवेगी। यह स्वप्न हो या सच्चा खेल!

नई तालीम का यह उद्देश्य है। इससे छोटा-कुछ नही। इस उद्देश्य को सही करने मे सत्यरूपी ईश्वर हमें मदद दे।

मै हमारे हिसाब का विवरण पढ़ गया हूँ। उससे पता चलता है कि हमने सब खर्च देखभाल कर ही किया है। हिसाब छोटा है। मुझे आशा है सब पढेगे।

अगरचे भाषा की दृष्टि से भाषा नई तालीम का विषय नही है, *तो भी आज की हालत मे माध्यम तो मातृभाषा ही है।* इस पर जोर देना ही होगा। इसी तरह राष्ट्रभाषा है, वह-अंग्रेजी कभी नही हो सकती। अंग्रेजी राजभाषा है, व्यापार की भाषा है। राष्ट्रभाषा हिन्दी-हिन्दुस्तानी ही है। दो रूप समझने के लिये और स्वभाव से एक बनने के लिये आज हमें हिन्दी और उर्दू, देवनागरी और फारसी लिपि सीखना ही होगा। इसका चिन्ह मे तो मेरे आसपास ही देख रहा हूँ। हमारी सब पढाई दोनो लिपियो में होनी चाहिय और हममे कोई ऐसे नही होने चाहिये, जो दोनो रूप आसानी से बोल न सकें या दोनो लिपियो मे आसानी से लिख न सकें।

एक और बात पर भी आपका ध्यान खीचूं। नई तालीम के लिये यह केन्द्र सबसे अच्छा है, क्योकि यहाँ चरखा संघ के मुख्य प्रयोग चलते है। दूसरे ग्रामोद्योग यहाँ, यानी वर्धा में चलते है। सच्ची गोसेवा यानी पशु की उन्नति यहाँ होती है।

सेवाग्राम तो एक देहात नहीं है। उसके इर्द-गिर्द करीब तीस देहात है। इसलिये नई तालीम का शुद्ध प्रयोग अगर कहीं चल सकता है, तो यहाँ। इसमें सब पोषक संस्थाएँ साथ मिलती है। सबको मदद रूप ही बनना है। यही तो प्रेम का इन्कलाब का निशान है।

❀

विनोबा :

खादी और गोसेवा

(गोवध-बन्दी सम्बन्धी अपने संकल्प के बारे में पूज्य विनोबाजी ने २१ जून को सारे भारत से आये हुए खादी-कार्यकर्ताओं के बीच एक भाषण दिया था, जो यहाँ दिया जा रहा है।)

आप लोगों के दर्शन से बाबा को जो आनन्द हुआ, उसका वर्णन करने की शक्ति भाषा में नहीं है। मैंने एक दफा कहा था, भारत का काम पंचशक्ति-सहयोग से होगा। ये जो हमारे सामने बैठे हैं, वे सज्जन-शक्ति के प्रत्यक्ष चिन्ह हैं। प्रसिद्ध वाक्य है, 'क्षणमिह सज्जन-संगतिरेका, भवति भवार्णव तरणे नौका''--एक क्षण भी सज्जन-संगति प्राप्त हो जाय, तो संसार-समुद्र तैरने के लिये नौका मिल जाती है। और ये जो सज्जन बैठे हैं सामने, वे भारत के सब प्रदेशों से आये हुए हैं। इतना बड़ा भारत! १५ विकसित और ५०-६० अविकसित भाषाएं, और दुनियाभर के सब धर्म। यह भारत का जो वैभव है, वह बाबा को अद्वितीय मालूम होता है। इसलिये नहीं कि बाबा भारत में जन्मा हुआ है। चाहे वह युरोप में या दूसरे किसी देश में जन्मा होता, तो भी भारत का यह जो वैभव है, वह उसे मान्य होता। एक बहुत अद्भुत वाक्य है संस्कृत में-- दुर्लभं भारते जन्म मानुषं तत्र दुर्लभम्।'' यानी भारत में कुत्ते बिल्ली का जन्म भी प्राप्त हो, तो वह भी दुर्लभ है। इतना गौरव अपने देश का क्यों हुआ? क्योंकि यहाँ की चप्पा-चप्पा जमीन पर अनेक ऋषि-मुनियों, सन्तों-आचार्यों के पदरज का स्पर्श हुआ है। हिन्दुस्तान की जमीन का एक

चप्पा भी बाकी नहीं होगा, जगल का, गाँव का, शहर का, जहाँ किसी न किसी सन्त का पदस्पर्श न हुआ हो। ऐसे महान देश में आप और हम, खादी के काम में लगे हुए लोग यहाँ इकट्ठा हुए हैं।

अ–सरकारी असरकारी :

आपके काम का वर्णन मैं देख गया और आप जो दिव्य भव्य कार्य कर रहे है, उसके लिये मेरे मन में अत्यन्त आदर पैदा हुआ। लेकिन इन दिनो एक वाक्य हमेशा मुझे याद आता है। काकासाहेब (कालेलकर) ने कहा था, "अ सरकारी, असरकारी"। सरकार के साथ सम्बध न रहने वाला जो भी सघ होगा। इसका अर्थ यह नही कि हम सरकार की कोई निन्दा कर रहे हैं। उन्होने भी कुछ अच्छे काम किये है, कर रहे है करेंगे। फिर भी कहने का तात्पर्य यह है कि स्वतत्र जन शक्ति खडी होनी चाहिए। सरकार के साथ सहयोग हम जरूर करेंगे, लेकिन जनता की शक्ति मजबूत होगी, सरकार की गौण होगी, यह मुख्य बात। है। यह सध जाय, तो बहुत सध जायगा।

'मक्खन खाओ, कपडा बनाओ' :

मैंने एक मत्र दिया है 'मक्खन खाओ, कपडा बनाओ'। पवनार गाँव में मक्खन तयार होता है और वर्धा शहर में बेचा जाता है। तो मक्खन का भाव व्यापारी तय करते हैं। गाँववालों के हाथ मे नही रहता। मक्खन बेचना और कपडा खरीदना। कपडे का भाव भी व्यापारी के हाथ म। इससे गाँव की मुक्ति होनी चाहिए। यह हम को करके देखना होगा। एक वाक्य वेद में आता है—**'विश्व पुष्ट ग्रामे अस्मिन अनातुरम्'**, हमारे इस गाँव में परिपुष्ट विश्व का दर्शन होना चाहिए, और इस गाँव में कोई बीमार नही है, ऐसा होना चाहिए।

इस वास्ते बाबा न कहा एक ओर 'जय जगत्' और एक ओर 'ग्रामदान'। यह हमारा आखिरी नारा है। हम केवल भारत से सम्बध रखकर सन्तुष्ट नही होगे। कुल पृथ्वी की प्रदक्षिणा करनी है इसलिए हम पृथ्वीपति नाम देते हैं। कुल पृथ्वी एक हो जायगी, तब दुनिया की

समस्या हल हो जायगी। अन्दर अन्दर मे लडते रहेग, तब तक दुनिया में कभी शान्ति नहीं होगी। इसलिए एक जगत बन ना होगा। उसका एक नमूना गाँव है। मै आपको अर्जी करूँगा कि आप जहाँ काम करते है वहाँ आप कोशिश करें कि गाँव पूरी तरह स स्वावलम्बी हो। पूरा कपडा गाँव में हो। गाँव का कपडा गाँव मे बनाना होगा। चाह पुरान औजार हो चाहे नयें, चाह बिजली सचालित हो। मुझ किसी भी यत्र से विरोध नही है बशर्ते कि उससे शोषण न होते हो। लकिन ऐसा गाँव बनओ, जो गोकुल जैसा हो।

'मैया, मैं नहीं माखन खायो'

मैने कई दफा कहा है–यशोदा कृष्ण-सम्वाद। कृष्ण मक्खन खाता है तो यशोदा कहती है, अरे मूरख माखन तो हमें मथुरा में बचना है। कृष्ण कहता है–'मैया' मैं नही माखन खायो।' इसका अर्थ हम सब गाँववालों ने मिलकर माखन खाया है। यशोदा कहती है—हम को मक्खन मथुरा में वेचकर पैसा लाना है। तो कृष्ण कहता है, मथुरा में पैसा है तो कस भी है। जहाँ पैसा है, वहाँ कस है –इतना याद रखो। मक्खन खाकर हम मजबूत बनेंगे और कस को खतम करेंगे। भगवान कृष्ण न मक्खन के आधार से कस को खतम किया। भागवत कोई कम्यूनिज्म का ग्रन्थ नही है। लेकिन उसम बात कम्यूनिज्म की है। कृष्ण ने यशोदा से कहा कि मैंन माखन नही खाया, यानी मैंने अकेल न नहीं खाया कम्युनिटी (समूह, समाज) ने खाया, यह भारतीय सस्कृतिको भगवान कृष्ण की देन है।

सर्वोपनिषदो गावो

एक विलक्षण बात है। बाबा न इन दिना जाहिर किया है कि गोमाता की हत्या नही होनी चाहिये। उसक लिये बाबा अपना प्राण अपण करेगा। उसके लिये मुद्दत दे दी है। एक विचित्र वाक्य सस्कृत भाषा में आता है। दुनियाकी किसी भाषा में ऐसा वाक्य नहीं आता है—

'सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनदन'

उपनिषद शब्द संस्कृत में स्त्रीलिंगी है जैसे परिषद। उपनिषद क्या है? गाय है। सारी उपनिषद गायें हैं। अपना सर्वोत्तम ग्रन्थ हिन्दुस्तान का कौन-सा है? उपनिषद। उपनिषद में से, उस गाय से दोहन कर लिया भगवान कृष्ण ने और--

'दुग्ध गीतामृत महत्'

गीतारूपी सुंदर दूध हमें भगवान कृष्ण ने पिलाया। गायें कौन-सी थी? उपनिषद। उन गायों से कृष्ण ने हमें यह उत्तम गीतामृतम् पिलाया। नया हम कहीं देखते नहीं। दुनिया के दूसरे देशों की भाषा में क्या कहेंगे? 'शराबे शोक पीता जा।' तुमको पीना है तो शराब पिओ। पर वे की बात करेंगे गोदुग्ध की बात नहीं करेंगे। भारत की संस्कृति है, शराब नहीं पियेंगे गाय का दूध पियेंगे।

खादी गाय के साथ जुड़ जाये

गांधीजी की जो प्रार्थना चलती थी सुबह की वह हम यहाँ नहीं चलाते। यहाँ पूरा ईशावास्योपनिषद बोलते हैं। उनकी सुबह की प्रार्थना में कई श्लोक आते थे। उसमें एक श्लोक था--

स्वस्ति प्रजाभ्य परिपालयन्ता
न्याय्येन मार्गेण मही महीशा
गो-ब्राह्मणेभ्य शुभ अस्तु नित्य
लोका समस्ता सुखिनो भवन्तु।

सभी लोग सुखी हो जायें राज्यकर्ता उत्तम रीति से राज्य-पालन करें और गायें और ब्राह्मण--दोनों का शुभ हो। बात ऐसी है कि आज गायें भी संकट में पड़ी हैं और ब्राह्मण भी संकट में पड़ा है। इसलिये खादी को गाय के साथ जोड़ना ही पड़ेगा। खादी आपको कपड़ा देगी, और खाने के लिये गाय का दूध मिलेगा। आप लोग जो काम कर रहे हैं खादी का, उसमें व्यापार की बात भी आ गई है। तो उससे आप मुक्त हो जायें ऐसी बात बाबा आपको कहेगा नहीं। क्योंकि वह प्रेक्टिकल (व्यावहारिक) नहीं है। इसलिये आपके कार्य में सार मुख्य यह देखिए कि कितने गाँव आपने स्वावलम्बी बनाये?

फिर आपका व्यापार चलता रहे, उसको एकदम रोकना सम्भव नहीं। ऐसी सलाह बाबा आपको देगा नहीं, क्योंकि बाबा की श्रद्धा अभी कायम है।

आप जानते हैं, बहुत बड़े नेता हो गये तमिलनाड में—राजगोपालाचार्य। राज! गोपाल! गोपाल के राजा! और उन्हींके मद्रास में हजारो गायों की कत्ल होती है। 'गोविन्दन', 'गोपालन्' इस तरह के नाम केरल में भी है। केरल शंकराचार्य का देश है। इसलिये केरल की भाषा में ८० प्रतिशत संस्कृत शब्द है। ऐसे केरल प्रदेश में कालिकट में गायें खूब कटती है। इस तरह सब दूर जो गोहत्या चल रही है, उसको हमें मिटाना ही चाहिये और उस काम में पूरा योगदान खादी कार्यकर्ताओं का भी रहना चाहिये। मैंने कई दफा कहा है—एकाग्र च समग्र च।' खादी का काम एकाग्र होकर करें और समग्र दृष्टि से करें। हम खादी का काम करते है, तो दूसरे काम की तरफ देखेंगे नहीं, गोसेवा की तरफ देखेंगे नही, ऐसा न करें। समग्र दृष्टि से खादी का काम करें। यह हम करेगे, तो भारत की समस्या जल्दी हल हो जायगी। और गाय और ब्राह्मण—दोनो संकट से मुक्त हो जायगे। बाबा की इस प्रतिज्ञा में व्यापारी लोग शामिल हो जाँय, तो सज्जन-शक्ति और महाजन शक्ति—दोनो इकट्ठी होगी, इसलिये काम जल्दी होगा।

बाबा को पूरा विश्वास है

बाबा ने अपने हाथ में यह काम लिया है। और बाबा को विश्वास है कि जो सद्बुद्धि भगवान ने बाबा को दी, वह सद्बुद्धि भगवान ने शासनकर्ता को भी दी है। बाबा का पूरा विश्वास है। बल्कि विश्वास के सम्बन्ध में बाबा का एक श्लोक है, जो आपको मालूम होगा—

> वेदान्तो विज्ञानं विश्वसदिचेति शक्तयः तिस्त्र
> यासां स्थैर्ये नित्यं शान्ति-समृद्धि भविष्यतो जगति।

दुनिया में शान्ति-समृद्धि के लिये तीन शक्तियाँ हैं—वेदान्त, विज्ञान

और विश्वास । इसलिये बाबा ने हमेशा विश्वास ही रखा है । यहाँ तक कि बाबा से पूछा गया कि आपका किन किन पर विश्वास है, तब बाबा ने कहा कि भुट्टो पर भी मेरा विश्वास है—और यह उन दिनों कहा, जिन दिनों भारत में भुट्टो के लिए बिलकुल विपरीत भावना थी सामने वाला मुझ पर जितना अविश्वास रखेगा, उतना मैं उस पर विश्वास रखूँगा । अविश्वास को अगर हटाना है तो विश्वास से ही वह हटेगा । अविश्वास करने वालों पर भी विश्वास रखना, —यह बाबा का एक सिद्धान्त है । और बाबा का विश्वास है, बाबा पूर्ण जानता है कि अगर दुनिया में भगवान की इच्छा हो संहार करने की, तो क्या मजाल है कि बाबा शान्ति की बात बोलता । बाबा भी संहार की बात बोलता । भगवान की इच्छा के विरुद्ध तो कोई बात बोल नहीं सकता । लेकिन बाबा को शान्ति की बात बोलने की प्रेरणा होती है इसका अर्थ है भगवान शान्ति ही चाहता है, संहार नहीं चाहता । इसलिये मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि दुनिया संहार से बचेगी । मैंने कई दफा कहा है कि छोटे-छोटे शस्त्र अहिंसा के विरोधी हैं । लेकिन बैलेस्टिक वेपन्स (प्रक्षेपण अस्त्र) जो आये हैं, वे अहिंसा के साथी हैं । इसलिये हमको शान्ति और विश्वास कभी खोना नहीं चाहिये । बाबा को पूर्ण विश्वास है कि बाबा तभी मरेगा, जब बाबा का प्रारब्ध क्षय होगा प्रारब्ध क्षय होने के

डा० इवान इलिच :

विकास का सच्चा अर्थ

[लेटिन अमरीका के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री डा० इलिच के लेख का यह हिंदी अनुवाद पाठकों को रुचिकर व उपयोगी प्रतीत होगा।]

अब यह माँग बढ़ रही है कि 'अमीर देश' शस्त्र आदि पर खर्च करना रोक कर पिछड़े देशों के विकास पर खर्च करें। यह माँग ठीक नहीं है। लोगों को विदेशी मदद के प्रति सावधान रहना चाहिए। समझना चाहिए कि एक अमरीकी ट्रक एक अमरीकी टैंक से ज्यादा नुकसान पहुँचा सकता है।

गरीब देशों में लोग तो बढ़ते जाते हैं मगर आमदनी घट रही है और इससे चीजें खरीदने की उनकी शक्ति तथा सम्पन्न औद्योगिक देशों के माल की पिछड़े देशों में होने वाली खपत घट रही है। ये इसलिए वहाँ की गरीबी को रोकने की कोशिश कर रहे हैं करेंगे। अगर एक बार य देश पश्चिमी देशों के साज-सामान या तकनीकी औजारों का बाजार बन गये, तो उन वस्तुओं की माँग और उनकी पूर्ति के बीच का फर्क निरन्तर बढ़ता जायगा और सम्पन्न देश उससे लाभ उठायेंगे।

दक्षिण अमरीका में हजार पर एक आदमी मोटरगाड़ी दिल के आपरेशन या उच्च शिक्षा पाने योग्य सम्पन्न है। मगर अभी वहाँ के लोगों को ये सुविधाएँ अनिवार्य नहीं लगतीं। वहाँ ज्यादातर लोगों को अभी इतना सम्पन्न होने में पीढ़ियाँ लग जायेंगी। विकसित देशों ने जिन उपायों से ऐसी सम्पन्नता पायी है, वे उनके मन पर इतने हावी हो गये हैं कि उनके नुकसान या निरर्थकता की ओर व ध्यान ही नहीं दे पाते। वे मोटरगाड़ी, हवाई-जहाज स्वास्थ्य के आधुनिक तौर-तरीकों और जटिल शिक्षा पद्धति के अधिकाधिक बढ़ाते चले जाने को ऐसी नियामतें समझते हैं कि वे इनकी नित नयी बाढ़ कैसे हो, यही सोचते रहते हैं।

ब्राजील में बनाई गई हर ऐक मोटरगाडी पचास लोगो का बस से आना-जाना समाप्त कर देती है। चिली के एक अर्थशास्त्री के मुताबिक दक्षिण अमरीका में चिकित्सको और अस्पतालो पर खर्च होने वाला हर डालर १०० लोगो की जान जाने के लिये ज़िम्मेदार होता है। अगर वही डालर पीने का साफ पानी मुहैया करने पर खर्च किया जाय तो ऐसे सौ लोगो की जान बचाई जा सकती है, जो साफ पानी न मिलने के कारण रोगो के शिकार होकर मर जाते है। इसी तरह स्कूल पर खर्च हुए डालर का मतलब बहुत-से लोगो की चिन्ता किये बिना कुछ लोगो को सुविधाएँ देना है। यह शिक्षा-पद्धति बहुत-से लोगो में हीनता की भावना भर देती है। जो ज्यादा नहीं पढ पाते, वे सोचते है कि ज्यादा पढ-लिख जाने वाले को ही शक्ति, धन और सम्मान पाने का अधिकार प्राप्त होता है।

फैक्टरी, अस्पताल, सरकार, स्कूल, खबरो और मनोरजन के माध्यम अखबार, रेडियो, टेलीविजन आदि, बँधे-बँधाये ढग से विभिन्न जरुरतो को पूरा करने के साधन माने जाते है, और अमीर देश उपकरणो के विस्तार को विकास समझते है।

मध्य पश्चिम के किसान के मन में लम्बी सडको पर बहुत तेज चलने वाली चार एक्सल वाली गाडियो को खरीदने का लालच पैदा किया जा रहा है। फिर बिजली से चलने वाली आरामदेह इन गाडियो के साल-दर-साल नये माडल भी निकाले जायेंगे। वहाँ के किसान को इनकी कोई जरूरत नही है, मामूली रफ्तार से चलने वाली कम कीमत की औसत गाडी उसके लिये काफी है। इसी तरह दक्षिण अमरीका की अधिकाश जगहो में ऐसे साधारण डाक्टरो से काम चल सकता है, जिनके लिये एम डी करना कतई जरुरी नही है। लातीनी अमरीका विश्वविद्यालय हर साल विशारद तैयार करने वाले नये-नये मेडिकल कॉलेज खोलते है। इनमे निकलने वाले डाक्टर या तो लम्बी-लम्बी फीस लेने वाले व्यवसायी बन जाते है, या किसी बडे अस्पताल मे बडे पद पर चले जाते है या फिर अधिक तेज और घातक दवाइयो को खोजने या बेचने वाले बन बैठे है, जब कि ज्यादा जरुरत प्रशिक्षित

नर्सों और साधारण डॉक्टरों की है। औजारों में निरन्तर तक्नीकी सुधार से अधिक लाभ उपभोक्ता की जगह उन्हें बनाने वाले को होता है। पैदावार का ढांचा जितना जटिल हो बड़े उत्पादक के लिये पुराने उपकरणों की जगह नये उपकरण बाजार में लाना उतना सहज होता है। वे उपभोक्ताओं का ध्यान हर नये मामूली सुधार की ओर खींचते हैं और इन सुधारों के दोष उनके ध्यान में नहीं आने देते। कोई नहीं सोचता कि इन सुधारों का परिणाम ऊंचे दाम, कम टिकाउपन सर्व-साधारण उपयोगिता में कमी, मरम्मत की ऊंची दर आदि होता है। यह नियम कृषि के किसी साधारण औजार से लेकर शिक्षा आदि की संस्थाओं, सब के बारे में लागू होता है।

लगता है, दुनिया एक अंधी गली की तरफ बढ़ रही है। हम दो दिशाओं से, दो रास्तों से होकर उस ओर जा रहे हैं। ये दो रास्ते हैं— फाजिल जन संख्या और फाजिल चीजों की बढ़ोतरी। पहली का बड़ा शोर मचाया जाता है, और दूसरी को नजरअन्दाज किया जाता है। बाजार में एक ही चीज के कई नमूने फेंककर उपभोक्ताओं में स्पर्धा और नकली किस्म का एक सन्तोष पैदा करने की कोशिश की जाती है। जन-संख्या में विस्फोटक बढ़ोतरी नये नये खाद्य-पदार्थों से लेकर गर्भ-निरोध तक के तमाम उपकरणों के लिये उपभोक्ता जुटाती है। हमारी कुंठित कल्पना शक्ति को तैयार-शुदा हलों के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता।

तीसरी दुनिया के अधिकतर देशों में जन संख्या बढ़ती जाती है। आबादी में मध्यम वर्ग के लोग भी बढ़ते हैं और उनके ख्याल से उनकी सुख-सुविधा की चीजों का उत्पादन भी बढ़ाया जाता है। इस वर्ग के और साधारण जनता के बीच का फर्क भी तेजी से बढ़ता चला जाता है। लेकिन ज्यादातर लोगों के भोजन, चिकित्सा, उपयुक्त काम तथा सुरक्षा आदि की सुविधायें पहले से भी कम हो जाती हैं। यह परिस्थिति कुछ अंशों में उपभोग के ध्रुवीकरण और कुछ हद तक सम्मिलित परिवार और पुरानी संस्कृति के विघटन से हुई है। जो लोग १९६९ में भूख, अभाव और बीमारी से मरे, उनकी

संख्या गिनती के लिहाज से ही नहीं, जन-संख्या के अनुपात के लिहाज से भी दूसरे महायुद्ध के दौरान मरने वालो से ज्यादा रही। इससे स्पष्ट हो जाता है कि दुनिया आगे बढ रही है या पीछे जा रही है। पिछड़ापन आखिर कोई आर्थिक चीज ही तो नही है। वह एक मनःस्थिति का पिछड़ापन सामान्य जरूरतों के तयशुदा हलों को नये ब्रॉडो में पेश कर देने से पैदा होता है। चूंकि ये हल बहुसंख्या की पहुँच के हमेशा बाहर रहते हैं, मनःस्थिति का यह पिछड़ापन उन देशों में भी बढ रहा है, जहाँ दूसरे मानदण्डों से शिक्षा, निवास, भोजन मे कैलोरी की मात्रा, कार या अस्पतालों में लगातार वृद्धि हो रही है। इन देशो में शासन उस उत्पादन को बढाता है, जो सम्पन्न लोगो की जरूरतो के ख्याल से किया जाता है। इस तरह मांग पर एकाधिकार की स्थिति बन जाती है और तब बहुसंख्यकों की जरूरतो को कभी पूरा किया ही नही जा सकता।

पिछड़ेपन का मतलब है, पहले से तयशुदा हलों के आगे घुटने टेक देना। सभी कौमो, देशों और विचारधाराओ के लोग आज अपने यहाँ तरह-तरह के कारखाने, अस्पताल और बड़े-बड़े विद्यालय स्थापित करने की कोशिश कर रहे हैं। यह सब पश्चिमी देशो, विशेषकर उत्तरी अमरीका का भद्दा अनुकरण है। तीसरी दुनिया की आधुनिक समझी जाने वाली संस्थायें, समता के उन लक्ष्यों के लिहाज से एकदम निकम्मी है, जिन्हे लेकर वे बनी है। इन देशो के अधिसंख्यक लोगों का सामाजिक चिन्तन कुंठित हो जाय, इसके पहले अमीर देशों के बदले गरीब देशो मे इस प्रकार की संस्थाओ को लेकर कुछ नया कर सकने की अधिक सम्भावना है। तमाम देशो में संस्थागत यह पिछड़ापन स्थायी होता जा रहा है। इससे पहले कि यह सब जगह स्थायी हो जाय, संस्थानिक क्रान्ति शुरू की जानी चाहिये।

लगातार बढते जा रहे पिछड़ेपन का सही जवाब हो सकता है कि भिन्न पूंजीगत ढांचे वाले देशो मे हम बुनियादी जरूरतें पूरा करने को अपनी योजना का लक्ष्य बनायें। कुछ प्रचलित संस्थाओं, सेवाओ और वस्तुओ के विकल्प आसानी से सुझाये जा सकते हैं। जैसे कारों

के विकल्प में ज्यादा बसें बनाई जायें। धूलभरी जमीन पर तेज ट्रकों का विकल्प है धीमे चलने वाले वाहन। खर्चीली शल्य चिकित्सा की जगह साफ पानी और इसी तरह चिकित्सा विशेषज्ञ के बदले सामान्य चिकित्सा और परिचर्या के प्रशिक्षण पर ज्यादा ध्यान दिया जाना चाहिये। शहरों में हर घर में महँगे दस्तरखान, बटलरी और दूसरे साज समान वाले रसोई घरोंके बदले सस्ते सामूहिक भोजन-गृहों का निर्माण किया जाय। वाहनों की जगह शहर में पैदल चलना कम हो सके। इस ख्याल से शहरों को बसाया हो इस तरह जाय कि आवागमन ज्यादा तर पैदल चलना आसानी से हो सके। इमारतों के ख्याल से कम कीमत के पूर्व निर्मित ढाँचों का इस्तमाल करें। इन ढाँचों से खुद मकान बना लेना साल भर के प्रशिक्षण के बाद सध सकता है।

शिक्षा में इस तरह के विकल्प सुझाना थोड़ा मुश्किल काम है, क्योंकि वर्तमान शिक्षा सस्थाओं ने शिक्षा के तमाम स्रोतों को ही सुखा डाला है। अब तक शिक्षा-सस्था का अर्थ विभिन्न कक्षाओं के पाठ्यक्रमों में हाजिरी माना जाता है। साल भर में बच्चे की शाला में १००० घटे उपस्थिति अनिवार्य मानी जाती है। शिक्षा सस्थाओं के स्वरूप की यह कल्पना बदली जानी चाहिये। बच्चों के साथ प्रौढ़ों को भी शिक्षा की दृष्टि से महत्व दिया जाना चाहिये। तीस साल से नीचे के सभी लोगों के लिये साल में एक महिने अनिवार्य शिक्षा की जा सकती है। सभी देशों में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के शिक्षा-साधन मुहैया होने चाहिये, क्योंकि शिक्षित होना व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। शिक्षा के लिये उपलब्ध सार्वजनिक आर्थिक स्रोतों की एक निश्चित राशि पर स्कूल जाने की उम्र वाले हर बच्चे का अधिकार है। अगर वह किसी कारण से सात या आठ साल की उम्र में शिक्षा-सस्था में नहीं जा पाता, तो दस साल का हो जाने पर भी उसे इसकी सुविधा मिल सकनी चाहिये। समाज में उपयोग किया जानेवाला तैयार माल और दृढ़ सस्थाओं के विकल्पों की सम्भावनाओं पर प्रतिभाशाली व्यक्तियों को एकाग्रता से विचार करने की जरूरत है।

विकल्प की खोज मुश्किल इसलिए होती है कि सोचते समय हमारे दिमाग पर मौजूदा ढाँचा छाया रहता है । हम उसीको सामने रखकर अपनी जरूरतों को समझने की कोशिश करते हैं। ठीक विकल्प की खोज न वे लोग कर सकते हैं जो इन संस्थाओं के अंग हैं और न वह उस पैसे से की जा सकती है जिसे ये संस्थाएँ मुहैया करती हैं। अगर गरीब देशों को जिन्दा रहना है, तो उन्हें हर चीज के तयशुदा हलों के बुनियादी विकल्प खोजने के लिये प्रोत्साहित करना होगा और यह भी ध्यान में रखना होगा कि तीसरी दुनिया के पास पूँजी की सख्त कमी है । दिक्कतें स्पष्ट हैं । विकल्पों की खोज करने वाले व्यक्ति को पहले तो ऐसे हर हल को जाँचना परखना पड़ेगा, जिसे साधारणतया हमने हल मान लिया है । दूसरे, उसे शक्ति सम्पन्न लोगों के तात्कालिक स्वार्थों के विरुद्ध फैसला लेने की हिम्मत दिखानी पड़गी और सबसे बड़ी बात यह कि उसे ऐसी दुनिया में अपने आपको टिका कर भी रखना होगा, जिसे वह बुनियादी तौर पर बदल डालना चाहता है ।

तीसरी दुनिया में राजनीतिक क्रान्तियों की कोशिश में लगे हुए लोग भी परिवर्तन की बात करते हैं । वे दावा करते हैं कि जो सुविधाएँ आज सम्पन्न आदमी को उपलब्ध हैं, उन्हें वे सब लोगों तक पहुँचा देंगे । यह एक बड़ी भ्रामक बात है । ऐसा कभी नहीं हो सकेगा । रूढ़ तरीकों की जगह नए विकल्प सामने रखे जाने पर कभी-कभी ये क्रान्तिकारी उलझन में पड़ जाते हैं । क्या बाँस की खपच्चियों को लादे हुए वियतनाम का साइकिल सवार पैदावार के लिहाज से बहुत उन्नत मशीनरी को पछाड़ नहीं रहा है ?

बढ़ते हुए पिछड़ेपन की संकटपूर्ण दिशा को बदलने का एक ही तरीका है कि हम तयशुदा हलों को हास्यास्पद मानना सीख जाँए ताकि उन माँगों को ही बदला जा सके, जो हम पर अनिवार्य कहकर लादी जा रही हैं ।

—रूपान्तर बनवारी

श्रीमन्नारायण :

'ईश्वर-अल्ला तेरे नाम'

सन् १९४६ में, जब देश के विभाजन के काले बादल भारत के ऊपर मँडरा रहे थे, तब गांधीजी ने राष्ट्र की अखण्डता व एकता कायम रखने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दी थी। वे उन दिनों बंगाल में भ्रमण कर रहे थे। मैं भी कुछ समय उनके साथ था। वे अपनी हरेक प्रार्थना सभा के अन्त में ये पंक्तियाँ गवाते थे

रघुपति राघव राजाराम।
पतित पावन सीता राम॥
ईश्वर अल्ला तेरे नाम।
सबको सन्मति दे भगवान॥

बापू जनता को आग्रहपूर्वक समझाते थे कि आजाद हिन्दुस्तान में सभी मजहबों का बराबर का स्थान रहेगा, सब धर्मों के प्रति समान आदर रखा जायगा। स्वतंत्र भारत में हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, जैन, ईसाई, सिख, पारसी सभी भाई भाई की तरह रह सकेंगे। इसलिए मजहब के नाम पर देश के बटवारे का ख्याल त्याग देना चाहिए। भारत के विभाजन से बड़ा अनर्थ होगा। राष्ट्र का बहुत नुकसान होगा।

लेकिन देश ने गांधीजी की बुलन्द आवाज सुनने से इन्कार किया। कांग्रेस के करीब सभी बड़े नेताओं ने विभाजन का सिद्धांत स्वीकार कर लिया और आखिर पाकिस्तान का जन्म हुआ। वह एक इस्लामी राज्य बना, किन्तु भारत फिर भी एक 'सेक्युलर' स्टेट ही रहा।

चूँकि आज भी हिन्दुस्तान में हिन्दुओं के अलावा मुसलमान, बुद्ध, जैन, ईसाई आदि धर्मों के अनुयाइयों की काफी बड़ी संख्या

है इसलिये उसे एक 'सेक्यूलर' राज्य बनाए रखना हितकर व वाछनीय है। लेकिन दुर्भाग्यवश हमने स्वराज्य-प्राप्ति के काफी वर्षों बाद 'सेक्यूलर' शब्द का अर्थ या तो स्वयं ठीक नहीं समझा या जनता को सही ढग से हम समझा न सके। हम मजहब के नाम से ही सनाते रहे, मानो सेक्यूलर' राज्य में धर्म का कोई स्थान ही नहीं हो सकता। हाँ यूरोप में 'सेक्यूलर' शब्द का अर्थ 'धर्मविहीन' ही रहा था। वहाँ पोप के राज्य से जनता इतनी परेशान हो चुकी थी कि उसने ऐसी 'सेक्यूलर' राज्य-व्यवस्था' स्थापित की, जिस में मजहब से कोई वास्ता न रहे। किन्तु भारत में गाधीजी व पडित नेहरू आदि ने 'सेक्यूलर' शब्द को 'सर्वधर्म-समभावी राज्य' की दृष्टि से ही अपनाया। यह सही भी था, क्योंकि जिस राज्य में कई मजहबोका बडी मात्रा में अस्तित्व हो, वहाँ सबको मिल-जुलकर, एक दूसरे की भावनाओं का आदर करके ही रहना होगा, नहीं तो देश के टुकडे-टुकडे हो जाने का हमेशा डर रहेगा।

*　　*　　*

सैकडो वर्ष पहले भारत में सन्त आनन्दघन ने भी बडी श्रद्धा से गाया था।

राम कहो, रहमान कहो कोऊ
कान्ह कहो, महादेव री।
पारसनाथ कहो, कोऊ ब्रह्मा,
सकल ब्रह्म स्वयमेव री॥

यह भजन गाधीजी को भी बडा प्रिय था। उनकी प्रार्थना-सभाओं में वह अक्सर सामूहिक रूप से गाया जाता था। हजारों वर्षों से हमारी सास्कृतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक व राजनैतिक परम्परा समन्वय की रही है, विविधता में एकता की रही है। इसी आदर्श के जरिए भारत बहुत से बाहरी आक्रमणों के बावजूद अखड बना रहा। नई-नई तहजीबों की धाराएँ आई और राष्ट्र के अगाध समुद्र में समाती गई। यही परम्परा हमारी भारतीय शक्ति व

सजीवता की बुनियाद रही है। कुछ वर्ष पहले मेरी कविताओं के नवीन संग्रह में ये पंक्तियां प्रकाशित हुई थीं—

विविधता में एकता का
गान ही गौरव हमारा।
शान भारत की यही है,
युगों का सौरभ हमारा।

* * *

लेकिन सांस्कृतिक व धार्मिक समन्वय का यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि हम मजहब को ही हीन समझें और उसे राष्ट्र के जीवन में उचित स्थान व सम्मान देने में संकोच करें व हिचकिचायें। हमारे 'सेक्यूलर' राज्य में एक हिन्दू को अच्छा हिन्दू बनना चाहिए, जो अपने धर्म की जानकारी के अलावा दूसरों के धर्मों के बुनियादी सिद्धान्तों के प्रति भी समुचित आदर रखे। इसी तरह एक मुसलमान या ईसाई को अधिक अच्छा मुसलमान व ईसाई बनने में संतोष होना चाहिए और साथ ही साथ दूसरे मजहबों की भी कद्र करना चाहिए। 'सेक्यूलर' के लिए आजकल हिन्दी में 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द प्रचलित हो गया है। मेरी दृष्टि से यह शब्द सार-गर्भित नहीं है। वह नकारात्मक है। सही शब्द तो 'सर्व-धर्म समभावी' राज्य होगा, यद्यपि वह जरा बड़ा लगता है और शायद कुछ अटपटा भी।

यूरोप में इस शब्द का भले ही दूसरा अर्थ रहा हो, किन्तु भारत को 'सेक्यूलर' राज्य तभी कहा जायगा, जब वहां के प्रत्येक नागरिक को अपने-अपने धर्म का पालन करने का पूरा अवसर हो और विभिन्न मजहबों के प्रति जनता की सद्भावना हो।

यदि इस सम्बन्ध में अभी भी किसी के मन में शंका है, तो वह शीघ्रता से निकाल देने में ही हमारा भला है। धर्म-भावना भारत की प्राचीन परम्परा का अविभाज्य अंग रहा है। हमारे जीवन में यदि मजहब का ख्याल न रहा, तो फिर हम वही के न रहेंगे। हम सब उस बिना पतवार की नाव जैसे बन जायगे, जिसे मझधार में तूफान के झोंको से उलटकर जल की समाधि लेनी पड़ती है। भारत की व

पाश्चात्य देशों की सभ्यता में एक मूलभूत अन्तर रहा है। भारत मे आध्यात्मिकता व रूहानियत को सर्वोपरि स्थान दिया जाता रहा है और यूरोप आदि देशों मे आर्थिक व भौतिक विकास व समृद्धि को। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस बुनियादी सत्य को बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया है.

"भारत मे एक किसान दिन-भर परिश्रम करके, शाम को भजन कीर्तन करता हुआ अपनी थकान मिटाने का प्रयत्न करता है, किन्तु यूरोप में एक मजदूर को शाम को अपनी थकान मिटाने के लिए 'शराबखाने' मे जाने के सिवा कुछ और सूझता ही नही है।"

यह हमारा सचमुच बडा दुर्भाग्य है कि इन दिनों भारत में भी शराबखोरी व भौतिकवाद का नशा बड़ी तेजी से फैलता जा रहा है, विशेषकर शहरो के नौजवानो मे। फिर भी हमारे देहातों में भारत की प्राचीन सभ्यता काफी हद तक अभी जिन्दा है और रहेगी।

* * *

देश की यह भी बदनसीबी रही है कि हम अकसर बातें तो बड़ी-बडी करते है, लेकिन अन्त में छोटी बातों में फँस जाते है। इसी वजह से हिन्दू धर्म में धीरे-धीरे सकुचित भावनाएँ पैदा हो गई और अस्पृश्यता या छुआछूत का भूत हमारे सिर पर हावी हो गया। इस्लाम मे भी शिया-सुन्नियो की कलह पैदा हुई और ईसाइयों में न जाने कितने तरह के सम्प्रदाय कायम होते गए। इसी तरह बौद्ध व जैनियों में भी आपसी झगडे खडे हुए और उनकी मौलिक शक्ति घटती गई। आचार्य काकासाहेब ने ठीक ही कहा है कि हम सब एक बडे राष्ट्र के छोटे लोग है। जब हमारा नजरिया तग बन जाता है, हमारा दिल व दिमाग सकुचित हो जाता है, तभी हमारी प्रगति मन्द पड जाती है और हम नीचे की ओर गिरने लगते है।

किन्तु हमें निराश कदापि नही होना चाहिए। भारत की यह भी भव्य परम्परा रही है कि हम अक्सर ठोकरें खाकर गिर जाते है, लेकिन फिर हिम्मत से उठकर खड़े हो जाते हैं और आगे कदम बढाने लगते है। ऋषियों-मुनियों के इस देश को आज भी ऐसा ही करना

है। हृदय में अडिग श्रद्धा व उत्साह किन्तु नम्रता रखकर भारत को दुनिया के सामने एक आदर्श राष्ट्र के रूप में विकसित करना हमारा कर्तव्य हो जाता है।

* * *

नेपाल एक छोटा-सा, लगभग एक करोड आबादी का देश है। वह ससार में एक-मात्र हिन्दू राष्ट्र है, किन्तु वहाँ धार्मिक सकुचितता का वातावरण नही है। नेपाल मे हिन्दुओ के अलावा बौद्धो की भी काफी सख्या है। लेकिन हिन्दू-मदिरो में बुद्ध-अनुयायी भक्त बडी श्रद्धा से जाते हैं। इसी प्रकार हिन्दू जन भी बुद्ध मदिरो मे नियमित ढंग से और आदर-भाव से प्रवेश करते है। नेपाल के इतिहास मे हिन्दू-बौद्ध का कभी धार्मिक सघर्ष नही हुआ। इन दो मुख्य धर्मों के अतिरिक्त वहाँ मुसलमानो की सख्या भी करीब पाँच फीसदी है। ईसाई व सिख भी हैं, लेकिन बहुत कम। नेपाल मे सब धर्मों को अपना पूजा-पाठ व अन्य सस्कार करते रहने की पूरी स्वतत्रता है। हाँ, जितने राजकीय व शाही समारोह होते हैं, उनमें वैदिक हिन्दू धर्म की परम्परा अपनाई जाती है।

लेकिन नेपाल में धर्म-परिवर्तन की इजाजत नही है। वह गैर-कानूनी है और ऐसा करने पर छ वर्ष की कडी सजा का विधान है। धर्म-परिवर्तन करने व कराने वाले दोनो को ही यह दड लागू होता है। इस सजा से बचने के लिए कुछ लोग भारत चले जाते हैं और धर्म को बदलकर फिर नेपाल वापस आ जाते हैं। ईसाई पादरियो ने इस तरह कुछ लोगो का धर्म-परिवर्तन कराया है, किन्तु यह सख्या अपेक्षाकृत कम होगी।

मेरा ख्याल है कि भारत के 'सेक्यूलर' या 'धर्म-समभावी' राज्य में भी धर्म-परिवर्तन की इजाजत नहीं होनी चाहिए। यदि राज्य की निगाह में सभी धर्म समान हैं, तो फिर एक मजहब से दूसरे मजहब में परिवर्तन करने का क्या अर्थ ? इस प्रकार के धर्म-परिवर्तन से हमारे देश में कई तरह की राजनैतिक पेचीदगियाँ खडी हो गई हैं। इसलिए हमें भविष्य में इस बारे में काफी सावधानी से काम लेना होगा।

नागालैंड व मीजो के सीमावर्ती पहाड़ी क्षेत्रों में ईसाई पादरियों ने करीब सौ फीसदी जनता को क्रिश्चियन बना लिया है। वहाँ के लोग आज अपने को भारतीय कहने में संकोच करते हैं और स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में मान्यता चाहते हैं। पादरियों ने इन क्षेत्रों की जनता की बड़ी लगन व परिश्रम से जो निरन्तर सेवा की है, उसके लिए हमें हार्दिक धन्यवाद देना चाहिए। लेकिन उनके धर्म-परिवर्तन के आन्दोलन से हमारे राष्ट्र को बड़ी परेशानी का सामना करना पड़ रहा है, यह भी हमारे दिमाग में स्पष्ट हो जाना चाहिए। किसी विशेष परिस्थिति में कोई व्यक्ति अपना धर्म स्वेच्छा से बदलने की तीव्र इच्छा जाहिर करे तो शासन की आज्ञा से ऐसी इजाजत भले ही दे दी जाय, किन्तु गरीबी व अज्ञानता का लाभ उठाकर बड़ी संख्या में धर्म-परिवर्तन करना तो सचमुच गम्भीर जुर्म होना चाहिए।

हाँ, भारत-जैसे 'सेक्यूलर' स्टेट में यह जरूरी है कि हरेक नवयुवक को अपने धर्म के अलावा राष्ट्र के दूसरे मजहबों के बुनियादी आदर्शों का सामान्य ज्ञान होना चाहिए। तभी वह दूसरों के धर्मों के प्रति आदर की भावना रख सकता है। इस दृष्टि से हमारे स्कूलों व कालिजों में धार्मिक व नैतिक शिक्षा का प्रबन्ध कर देना बिलकुल आवश्यक है। प्राथमिक शालाओं में सभी मजहबों के महापुरुषों के जीवन की कुछ विशेष घटनायें पढ़ानी चाहिये, जिनका बच्चों के मन पर गहरा असर पड़ सके। हाईस्कूल के विद्यार्थियों को विभिन्न धर्मों के मूल-सिद्धान्त पढ़ाये जा सकते हैं। कालिजों में धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन कराया जा सकता है।

मैं अक्सर महसूस करता हूँ कि स्वर्गीय राजाजी की राजनीति से कई लोग सहमत नहीं होंगे, किन्तु 'रामायण' व 'महाभारत' की दो पुस्तकें बड़े सुन्दर ढंग से लिखकर उन्होंने देश की स्थायी सेवा की है। मेरे ख्याल से भारत के सभी नवयुवकों को ये दोनों ग्रन्थ अवश्य पढ़ लेने चाहिये। इसी प्रकार हमारे भूतपूर्व राष्ट्रपति डा॰ राधाकृष्णन् ने कई बड़े उपयोगी ग्रन्थ लिखे हैं, जो धार्मिक शिक्षा की उच्च कक्षाओं में हमारे नौजवानों को पढ़ाये जा सकते हैं। गांधीजी

की 'आत्म-कथा भी इसी तरह की पुस्तकोंमें शामिल कर लेनी चाहिये। नैतिक या धार्मिक शिक्षाके लिये इससे अच्छी किताब और क्या होगी ?

* * *

भारत मे हिन्दुओ की काफी शिकायत रही है कि कांग्रेस द्वारा उन्हें आजादी के बाद न्याय नही मिला है। उनका कहना है कि भारत के 'सेक्यूलर' स्टेट में बहुमख्या म होना उनकी कोई गलती नही है। यह सही है कि देश की अल्पसख्यक जातियो व धर्मो क प्रति हिन्दुओ की सहानुभूति व सहिष्णुतापूर्ण व्यवहार होना चाहिये, कि तु इसका यह अर्थ नही हो सकता कि किसी हिन्दू को अपने को हिन्दू' कहन म भी शर्म महसूस करनी पडे। 'सर्व-धर्म-समभावी' राज्य म हिन्दुओ को भी अपना धर्म पालन करने का पूरा अवसर मिलना चाहिये। इसमें किसी को एतराज नही होना चाहिये बशर्ते कि यह प्रचार किसी दूसरे मजहब के विरोध में न हो। एक हिन्दू अपने धर्मका पालन करते हुए भी 'सेक्यूलर' स्टेट का अच्छा नागरिक रह सकता है, उसी तरह एक मुसलमान या ईसाई। खराबी तभी पैदा होगी, जब हम तग नजरिया अपनावें और विद्वेष व असहिष्णुता की साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का इजहार करने लगें। यह बिलकुल स्पष्ट है कि भारत जैसे विशाल देश की अखडता कायम रखने के लिये हम सभीको बडे दिल व दिमाग का बनना होगा। हजारो वर्ष पहले अथर्ववेद के ऋषि-कवि ने हमें आदश दिया था।

सहृदय सामनस्यमविद्वेष कृणोमि व

अर्थात, तुम्हारा हृदय व मन समान हो और तुम्हारे व्यवहार में द्वेष न रहे।

डा. मलिक मोहम्मद :

देवनागरी लिपि की लोकप्रियता

(डा. मलिक मोहम्मद नागरी लिपि परिषद के उपाध्यक्ष हैं। व कालिकट युनिवर्सिटी के हिन्दी विभाग अध्यक्ष भी हैं।)

भारतीय संविधान मे देवनागरी में लिखित हिन्दी को राजभाषा घोषित किया गया है। देवनागरी केवल हिन्दी की ही लिपि नही है, बल्कि कुछ और भारतीय भाषाओ की भी लिपि है। संस्कृत भाषा की भी लिपि होने के कारण देवनागरी लिपि इस देश की विशाल सांस्कृतिक परम्परा को भी साथ में लिए हुए है।

प्राय यह प्रश्न उठाया जाता है कि यदि भारत की कोई सामान्य लिपि हो सकती है, तो वह कौन-सी लिपि हो। इस सम्बन्ध में काफी वाद विवाद भी चला है। परन्तु गहराई और व्यापकता से विचार करने पर यह बात स्पष्ट हो जायगी कि भारत की किसी एक लिपि को व्यापक प्रयोग के लिए चुनना है, तो वह नागरी लिपि ही हो सकती है। हिन्दी की लिपि होने के कारण ही नही, बल्कि भारत की कुछ अन्य भाषाओ की लिपि होने के साथ साथ स्वाभाविक सुविधा और व्यावहारिकता की दृष्टि से भी देवनागरी लिपि की अधिक लोकप्रियता सिद्ध हो सकती है।

भारत की सभी लिपियो का आधार ब्राह्मी लिपि मानी जाती है। बंगला लिपि, गुजराती लिपि और देवनागरी लिपि में कोई विशेष अन्तर नहीं है। प्रदेश भेद, ध्वनि-भेद और ध्वनि के अनुकूल लिपि में थोडा सा अन्तर आ जाता है। मराठी की लिपि तो देवनागरी है। नेपाली भाषा की लिपि भी लगभग देवनागरी ही है। भारत की कुछ ऐसी भाषाएँ भी हैं, जिनकी अपनी निजी लिपि नहीं है। उनको नागरी को अपनाने में सुविधा है और उन भाषाओ ने नागरी को स्वीकार भी

कर लिया है। इस प्रकार कोंकिणी तथा सिंधी भाषा बोलनेवालों ने भी देवनागरी को स्वीकार कर लिया है। डोगरी ने भी नागरी को अपना लिया है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि भारत में ही नहीं, बाहर भी एक विशाल जन-समाज में नागरी लिपि का प्रयोग होता रहा है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्राचीन काल में भी नागरी लिपि काफी प्रयोग में रही है। इतिहास के धूमिल अंधकार में भी जिस समय देश में विभिन्न क्षेत्रीय लिपियाँ विकसित हो चुकी थीं उस समय भी देश के प्रायः सभी भागों में एक अतिरिक्त लिपि के रूप में देवनागरी का बराबर प्रचार था। दक्षिण में पल्लव राजाओं के शिलालेखों में ग्रंथ और तमिल लिपियों के अतिरिक्त नागरी का भी प्रयोग होता था। पल्लवों के परवर्ती चोल राजाओं ने भी अपने सिक्कों पर नागरी लिपि का प्रयोग किया था। उत्तम चोल, राजराज और राजेन्द्र गंगेकोंड चोल के प्राचीनतम सभी सिक्कों पर नागरी का प्रयोग हुआ है। दक्षिण में इस लिपि का प्रभाव इतना अधिक था कि यह चोल राज्य से आगे उन द्वीपों में भी चलाई गई, जिन्हें चोल राजाओं ने जीता था। लंका में पराक्रमबाहु, विजयबाहु भुवनेकबाहु आदि के सिक्कों पर इसका प्रयोग हुआ है। पश्चिमी चालुक्यों (आठवीं शताब्दी) ने भी अपनी शिलालेखों में कन्नड लिपि के साथ-साथ नागरी लिपि का प्रयोग किया था। मद्रास म्यूजियम में सुरक्षित काँची से प्राप्त ७ वीं शताब्दी के एक शिलालेख में ग्रंथ लिपि के दान पत्र का नागरी रूपान्तर भी मिलता है। दक्षिण के राष्ट्रकूट के अधिकांश शिलालेख नागरी में ही मिलते हैं। वस्तुतः नागरी का प्राचीन शिलालेख राष्ट्रकूट वंश का ही है। श्रवणबेलगोला में दसवीं से बारहवीं शताब्दी के बीच के अनेक शिलालेख मिले हैं। इनसे पता चलता है कि उस समय वहाँ कन्नड, ग्रंथ और नागरी–तीनों लिपियों का प्रयोग होता था।

नागरी लिपि का प्रयोग दक्षिण में विजयनगर राज्य में 'नंदिनागरी' के नाम से होता था, और १५ वीं शताब्दी के आगे तो वह चरमोत्कर्ष पर पहुँच चुका था। इस काल में इस राज्य में कन्नड,

तमिल और ग्रंथ लिपियों का भी प्रयोग होता था, किन्तु उस समय इस प्रदेश की प्रधान लिपि नागरी थी, विशेषकर ताम्रपत्रों में तो इसी लिपि का प्रयोग होता था। १८ वीं शताब्दी में तंजोर के महाराष्ट्र शासकों ने तो सर्वत्र नागरी लिपि का प्रयोग किया था। स्पष्ट है कि नागरी दक्षिण भारत में भी लोकप्रिय रही है। अतिरिक्त लिपि के रूप में मुसलमान शासकों ने भी नागरी की प्रतिष्ठा की। महमूद गजनवी के सिक्कों पर अरबी कलमा का संस्कृत अनुवाद देवनागरी के रूप में अंकित है। मुहम्मद बिनसाम, शमसुद्दीन अलमश और मुइज़ुद्दीन कैकुबाद के सिक्कों पर नागरी का प्रयोग हुआ है। सम्राट अकबर ने अपने एक सिक्के पर वनवासी राम-सीता का अंकन कराया था, जिसपर देवनागरी में 'राम सीय' लिखा है।

वस्तुतः देवनागरी का विरोध तो अंग्रेजों के समय में प्रारम्भ हुआ। 'नागरी' के प्रचार से भारत के नागरिकों का उद्बुद्ध होना स्वाभाविक ही था, जो अंग्रेज शासकों को पसन्द न था। इसलिये उन्होंने बराबर नागरी के प्रचार को रोका। किन्तु वे भारतीय नागरिकों में उठती जागरूकता को नहीं रोक सके। देशभक्त भारतीयों ने जब 'नागरी' और 'नागरिकों के सम्बन्ध को पहिचाना, तो उसी समय से नागरी के ग्रहण और प्रचार का आन्दोलन शुरू हो गया। स्वयं गुजराती भाषी होते हुए भी महर्षि दयानन्द ने हिन्दी और देवनागरी का प्रचार किया। वस्तुतः नागरी प्रचार आन्दोलन के जनक बंगवासी जस्टिस शारदाचरण मित्र हैं। मित्र महाशय ने १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में 'एक लिपि विस्तार परिषद' नामक एक संस्था की स्थापना की थी, जिसके तत्वाधान में 'देवनागर' नाम का एक पत्र भी वे निकालते थे। लोकमान्य तिलक ने सन् १९०५ में ही भारत की सामान्य लिपि के रूप में देवनागरी को अपनाने का सुझाव दिया था। न्यायमूर्ति मित्र महोदय द्वारा आयोजित एक लिपि सम्मेलन के अध्यक्ष पद से प्रसिद्ध विद्वान श्री. वी. कृष्णस्वामी अय्यर ने सन् १९१० में देवनागरी को अपनाने का सुझाव दिया था। उसी के आस-पास राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी ने भी

कहा था—"सभी भाषाओं की लिपि देवनागरी होनी चाहिये और मुझे विश्वास है कि देवनागरी के द्वारा द्रविड भाषाएँ भी आसानी से सीखी जा सकती हैं।"

जिस प्रकार भारतीय एकता के लिए सम्पर्क भाषा के रूप मे हिंदी भाषा एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती जा रही है, उसी प्रकार सम्पर्क-लिपि के रूप में देवनागरी की उपयोगिता निर्विवाद है। एक तो विशाल जनसमूह की सम्पर्क भाषा की लिपि होने के कारण देवनागरी काफी प्रचलन में है। दूसरी बात यह है कि वैज्ञानिकता और व्यावहारिता की दृष्टि से भी वह भारत के जनसमाज के लिए अधिक अनुकूल है।

हमारे कुछ विद्वान रोमन लिपि को सम्पर्क लिपि या सामान्य लिपि के रूप में जानने का तर्क प्रस्तुत करते हैं। परन्तु एक स्वतंत्र राष्ट्र में राष्ट्र की अपनी लिपि को ही महत्व देना होगा। फिर अँग्रेजी जानने वालों की संख्या अत्यल्प होने के कारण एक विशाल राष्ट्र के सम्पूर्ण जनसमूह के लिए रोमन लिपि को स्वीकार करना कैसे वांछनीय हो सकता है? फिर वैज्ञानिक दृष्टि से हमारी अपनी देवनागरी भारतीय भाषाओं के लिए बहुत ही अनुकूल सिद्ध हुई है। देवनागरी 'फोनिटिक्स' कहलाती है। मुँह से जैसी ध्वनि निकलती है, उसी के अनुरूप उसकी लिपि भी है। अर्थात वह लिपि ध्वनि-अनुकूल और स्वरानुकूल है। भारतीय भाषाओं की ध्वनि-सम्पत्ति को प्रकट करने के लिए देवनागरी की योग्यता के बारे में दो मत नहीं हो सकते। इतनी सभी ध्वनियों को प्रकट करने के लिए वही लिपि खरी उतर सकती है जिसमें लिपि चिन्ह पर्याप्त हों, लिपियों का रूप ध्वनि के अनुरूप हो और उसमें प्रत्येक ध्वनि के अनुरूप हो और उसमें प्रत्येक ध्वनि के लिए एक लिपि-चिन्ह हो। कहने की आवश्यकता नहीं कि देवनागरी लिपि इन सभी गुणों मे श्रेष्ठ है। लेकिन कुछ भारतीय भाषाओंमें कुछ ऐसी ध्वनियाँ अवश्य हैं, जिनके लिये देवनागरी में लिपि चिन्ह नहीं है। यह कोई बड़ी समस्या नहीं है। लिपि में थोडा बहुत सुधार हमेशा संभव रहता है। दूसरी भाषाओं की विशिष्ट ध्वनियों को सूचित करने के लिए

देवनागरी के अन्तर्गत ही कुछ नये लिपि-चिन्ह लाये जा सकते हैं। जो लोग देवनागरी लिपि में लिपि-सुधार की बात दोहराते रहते हैं, उनको चाहिये कि पहले वे देवनागरी को सम्पर्क-लिपि के रूप में स्वीकार कर ले और फिर सुधार की बात करे। जहाँ तक अक्षरो की बनावट का सम्बन्ध है, भारतीय लिपियो में देवनागरी ही ऐसी है, जिसकी आकृति में बिना कोई विकार उत्पन्न किये अनेक भाषाएँ लिखी जा सकती है। देवनागरी लिपि को टेलिप्रिंटर आदि यान्त्रिक आवश्यकताओ की दृष्टि से सुगम बनाने के लिए भी आवश्यक प्रयत्न हो रहा है।

देश की राष्ट्रीय एकता के लिए भारत की विविध भाषाओ के बीच में एक सम्पर्क-लिपि, जोडलिपि या सहलिपि के रूप में देवनागरी बहुत हद तक एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। देवनागरी को एक अतिरिक्त या जोडलिपि के रूप में स्वीकार करने से उन भारतीय भाषाओं के बीच में बहुत निकटता का सम्बन्ध हो सकता है, जिनकी लिपि देवनागरी नही है। देवनागरी को एक अतिरिक्त लिपि के रूप में काम में लाने से किसी एक भाषा को अपनी निजी लिपि को हानि पहुँचाने का उद्देश्य कभी भी नहीं है। विभिन्न भारतीय भाषाओ के बीच में लिपियो की विभिन्नता के कारण निकटता का अभाव है। एक व्यक्ति को कई भाषायें सीखने में लिपियो की कठिनाई एक बहुत बडी समस्या है। अगर देवनागरी के माध्यम से तमिल या मलयालम को सीखने की सुविधा हिन्दी भाषी को दी जाय, तो वह आसानी से उन भाषाओ को सीख सकता है। कोई उत्तर भारत का आदमी दक्षिण की भाषा सीखना चाहता है तो, उसे पहले उनकी लिपि सीखनी पडती है, जिसमें बहुत समय और शक्ति लगती है। वही सामग्री यदि नागरी लिपि में उसे मिल जाती है, तो भाषा सीखने में इतनी कठिनाई नही होगी। इस प्रकार उनके साहित्य का प्रचार भी खूब आसानी से हो सकता है। इसलिए लिपि के नागरी होने से साहित्य का प्रचार कम हो जायगा, ऐसा भ्रम किसीके मन में नही होना चाहिये। इस प्रकार एक व्यक्ति को कई भाषा सीखने के लिए एक सामान्य लिपि के रूप में नागरी काम दे सकती है। चूंकि भारतीय भाषाओ की

अलग-अलग लिपियाँ हैं. इसलिए हर कोई उन भाषाओं को समझ नहीं सकता और उनको सीखने में कठिनाई अनुभव करता है। इस आशंका के लिए कोई स्थान नहीं है कि एक अतिरिक्त लिपि के रूप में देवनागरी को स्वीकार करने से किसी भी दूसरी भाषा को अपनी निजी लिपि के लिए हानि पहुँचेगी और उस भाषा के विकास के लिए अड़चन होगी। इसके विपरीत नागरी-इतर लिपि-वाली भाषा को सीखने के लिए और दूसरे क्षेत्र में उस भाषा के प्रचार के लिये नागरी अधिक उपयोगी हो सकती है। क्योंकि नागरी का प्रयोग-क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। जबतक यह आशंका दूर नहीं होगी, तब तक नागरी की उपयोगिता ठीक तरह से समझी नहीं जा सकेगी।

नागरी को अपनाने में कुछ भाषा-क्षेत्रों में यह गलतफहमी भी है कि नागरी हिन्दी की लिपि है और नागरी के माध्यम से हिन्दी ही लादी जायेगी। परन्तु इस आशंका का कोई आधार नहीं है। क्योंकि नागरी केवल हिन्दी की लिपि नहीं, बल्कि और भी कई भाषाओं की भी लिपि है। नागरी के प्रचार को हिन्दी-प्रचार के दायरे में देखना उचित नहीं है। नागरी की वैधानिकता और जोड-लिपि के रूप में उसकी उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए देश में सांस्कृतिक एकता लाने के साथ साथ एशियायी भाषाओं के बीच में एक सह-लिपि के रूप में उसके प्रयोग के लिये आवश्यक वातावरण सृजित करना उचित होगा। जिस प्रकार यूरोप की विभिन्न भाषाएँ रोमन लिपि को एक सामान्य लिपि के रूप में स्वीकार करके उसका प्रयोग करती आ रही हैं, इसी प्रकार भारत और एशिया की भाषाओं के लिए एक अतिरिक्त लिपि के रूप में नागरी काम में लायी जा सकती है।

हर भाषा-क्षेत्र में उस भाषा की अपनी निजी लिपि तो अवश्य रहेगी, परन्तु उस भाषा-क्षेत्र के बाहर के लोगों को उस भाषा को सीखने के लिए नागरी एक अतिरिक्त लिपि के रूप में काम दे सकते हैं। इस तरह से अंग्रेजी भी नागरी के माध्यम से सीखी जा सकती है। इस प्रकार इस लिपि को उन सब देशों में, जहाँ की भाषाएँ

संस्कृत से प्रभावित है और वहाँ की लिपियाँ ब्राह्मी लिपि से प्रभावित हैं, हम ले जाय, तो वहाँ के भाषाई झगडे अपने आप दूर हो सकते हैं। दक्षिण पूर्व एशिया के राष्ट्रों में जैसे बर्मा श्रीलंका, लाओस, थाय ले, इंडोनेशिया आदि में जो भाषाएँ हैं, उनपर संस्कृत का प्रभाव है और उन सबकी लिपियों की जननी ब्राह्मी है। उन सब भाषाओं के साथ हम एक संपर्क-लिपि के तौर पर नागरी का सम्बन्ध जोड सकते हैं और इस प्रकार इसे एक अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप दे सकते हैं।

नागरी में प्रकाशित उर्दू साहित्य भी कितना लोकप्रिय हो सका, यह हम सब जानते ही हैं। उर्दू साहित्य की महिमा और गरिमा को नागरी के माध्यम से समझने का अवसर जब मिला, तब उसके लिए बहुत ही बडा पाठक वर्ग मिला। अनुभव से पता चलता है कि उर्दू की तुलना में नागरी लिपि का उर्दू-संस्करण जल्दी और अधिक संख्या में बिक जाता है। महाकवि गालिब की उर्दू कविताएँ जब देवनागरी में छापी गईं, तब उनकी इतनी अधिक माँग हुई, जो स्वयं उर्दू में भी नहीं हुई। इस प्रकार उर्दू का साहित्य भी नागरी के माध्यम से हिन्दी-साहित्य के बहुत निकट आ सका है।

देवनागरी भारत की भाषाओं के क्षेत्र में एक अतिरिक्त जोड-लिपि के रूप में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है। नागरी का प्रचार और विस्तार के क्षेत्र में जो आशंकाएँ हैं, उन्हें दूर करके उसकी राष्ट्रीय एकता के महत्व को प्रकाश में लाने की आवश्यकता है। इसके लिए 'नागरी लिपि परिषद्' विशेष काम कर रही है और विविध भाषाओं में नागरी की वास्तविक उपयोगिता को प्रकाश में लाकर उसके विस्तृत प्रयोग के लिए अनुकूल वातावरण पैदा करना है। इसमें किसी प्रकार की धार्मिक अथवा राजनीतिक मत की बात सोची भी नहीं जानी चाहिये। नागरी को सम्पर्क लिपि के रूप में मानने की बात आज नहीं, बल्कि दशाब्दियों के पहले ही देश के राष्ट्रीय नेताओं ने मान ली थी। राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता और भाषाई एकता को ही दृष्टि में रखते हुए नागरी के प्रचार की बात आगे बढ सकती है। ❁

शंकरराव लोढे :

विश्व हिन्दी विद्यापीठ

राष्ट्रपिता महात्मा गाधी की प्रेरणा से सन् १९३६ में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की स्थापना हुई थी। उसके सस्थापक सदस्यो में राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, प जवाहरलाल नेहरू, डा राजेन्द्रप्रसाद, सेठ जमनालाल बजाज, आचार्य नरेन्द्र देव नेताजी सुभाषचन्द्र बोस आदि-आदि देशके कर्णधार थे। उनका मार्गदर्शन और आशीर्वाद सस्था को मिलता रहा। तब से यह सस्था राष्ट्रीय भावना से भारत के हिन्दीतर प्रदेशो मे राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार तथा प्रसार प्रेम तथा सेवाभाव से करती आ रही है। अब तक ७० लाख लोगों तक यह सस्था हिन्दी का सन्देश पहुँचा चुकी है। यद्यपि भारत के बाहर के देश कार्यक्षेत्र में नही थे, फिर भी समिति यथा आवश्यकता और यथाशक्ति हिन्दी का प्रचार विदेशों में करती आ रही है। विदेशो मे समिति के १०० परीक्षा केन्द्र है और हजारो परीक्षार्थी समिति की परीक्षाओमे सम्मिलित होते हैं। विदेशों में जो कार्य हो रहा है, उसका चित्र भी प्रगतिशील ही है।

गत जनवरी १९७५ मे नागपुर में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा ही विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन किया गया था। सम्मेलन अनेक दृष्टियो से ऐतिहासिक, सफल एव अभूतपूर्व माना जाता है। इसमें ३२ देशो के लगभग १५० प्रतिनिधियो ने भाग लिया। चूंकि अनेक विदेशी सज्जनो के द्वारा यह माँग की जाती रही है कि विदेशो के विद्यार्थियो के लिए समिति के द्वारा हिन्दी के अध्यापन की समुचित व्यवस्था की जाय, अत. समिति इस आवश्यकता का अनुभव कर रही थी और अब तो और अधिक तीव्रता से यह

अनुभव कया जाने लगा है कि वर्धा में समिति के तत्वावधान में एक ऐसी विद्यापीठ की स्थापना हो, जिसमें विभिन्न विदशो से आनेवाले विद्यार्थी भारत की सभी प्रमुख भाषाओ का स्नेह और सहयोग प्राप्त करनेवाली हिन्दी का अध्ययन कर सके और ससार की अन्य भाषाओ के सम्बन्ध में हिन्दी क शोध कार्य हो सके, ताकि वह भारत की सामासिक सस्कृति की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम बने, जो अन्तर्राष्ट्रीय सास्कृतिक सामन्जस्य का सोपान हो। इसलिए विश्व हिन्दी सम्मेलन की फलश्रुति के रूप में 'विश्व हिन्दी विद्यापीठ' की योजना बनाने की बात सोची गयी। विश्व हिन्दी विद्यापीठ भवन का भूमि-पूजन राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के अध्यक्ष भूतपूर्व वित्तमन्त्री श्री मधुकररावजी चोधरी ने २८–१२–७४ को किया। और विश्व हिन्दी सम्मेलन के कार्यक्रम के अन्तर्गत ही तारीख १४ जनवरी १९७५ को समिति के वर्धा स्थित प्रागण में रेल-मत्री, प० कमलापति त्रिपाठीजी की अध्यक्षता में भारत सरकार के कृषि-मत्री, माननीय बाबू जगजीवनरामजी के करकमलो द्वारा विश्व हिन्दी विद्यापीठ की शिलान्यास-विधि सम्पन्न हुई।

वर्तमान भारत में हिन्दी व्यापक व्यवहार की भाषा है, इसीलिए इसे भारत की सघ सरकार की 'राजभाषा' का पद प्राप्त हो पाया है। इतना ही नही, यह भारत के पाँच राज्यो—उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश राजस्थान, हरियाणा तथा दो सघ राज्यो (हिमाचल प्रदेश और दिल्ली) की भी राजभाषा है। भारत की समूची जनसख्या का एक तिहाई अश हिन्दी भाषी है और भारत की सम्पूर्ण द्विभाषीय जनसख्या के चौथाई अश की यह सम्पर्क भाषा भी है।

हिन्दी के माध्यम से केवल विभिन्न बोलियो के बोलनेवाले ही अपनी सामासिक व सास्कृतिक एकता का अनुभव नही करते है वरन् विभिन्न प्रादेशिक भाषा-भाषियों को भी इसमें सामासिक सस्कृति और सर्व-सामान्य आचार-विचार का संस्कार प्राप्त होता है। इस प्रकार यह भाषा राष्ट्रीय दृष्टि से अनेकता में एकता की जननी है। भारत की अन्य भाषाओ के साथ निरन्तर पारस्परिक सम्बन्ध रहने के कारण यह भाषा

तीव्र गति से भारतीय संस्कृति और सभ्यता का प्रबल आधार बनती जा रही है। राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक एकता और अन्त:प्रादेशिक सम्पर्क की कडी के रूप में हिन्दी अपने व्यवहार-क्षेत्र का विस्तार करती हुई अपनी सीमा बढाती चल रही है। राष्ट्रीय दृष्टि से देखा जाय, तो सभी क्षेत्रों में इस भाषा के बोलनेवाले विद्यमान हैं। जिससे इसका व्यवहार क्षेत्र बहुत ही व्यापक हो गया है।

महात्मा गाधी के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा शिक्षा-दर्शन के साथ अहिंसा की भावना से प्रेरित विनम्रता तथा सत्य के प्रति समादर से प्राप्त आत्म प्रत्यय से अनुप्राणित उनके विलक्षण जीवन-विधान को मुखरित करनेवाले सक्षम साधन के रूप में भी हिन्दी काम कर रही है।

फिजी, त्रिनिदाद, मोरिशस, नेपाल, भूतान तथा ब्रिटिश गुआयना आदि देशों में व्यावहारिक रूप में हिन्दी का व्यापक प्रयोग होता है। वे देश भी हिन्दी को अपने ऐतिहासिक सम्बन्ध की सांस्कृतिक कड़ी और अपनी भावात्मक एकता का मूल आधार मानते हैं। बंगला देश, श्रीलका, ब्रह्मदेश, इडोनेशिया, मलेशिया, कम्बोडिया आदि देशों के लिए भी हिन्दी सामाजिक-सांस्कृतिक प्रेरणा प्रदान करती रही है। अमरीका, सोवियत-सघ, फ्रान्स, जापान, चेकोस्लोवाकिया, युनायटेड किंगडम आदि देशों में भी इस भाषा के अध्ययन के प्रति रुचि बढती जा रही है। इस समय अमरीका के उन्नीस विश्वविद्यालयों में विदेशी भाषा के रूप में हिन्दी पढ़ाई जाती है और वहाँ के एक स्कूल में तो यह शिक्षा का माध्यम भी है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय विदेशी भाषा के रूप में भी विश्व के अनेक भागों में हिन्दी को महत्वपूर्ण योग देना है।

हिन्दी की प्रकृति के जिन विशिष्ट लक्षणों में इसका राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्व निहित हैं, उन्हीं को प्रतिष्ठित और विकसित करने के निमित्त 'विश्व हिन्दी विद्यापीठ' प्रयत्नशील है। फिर भी, विश्व हिन्दी विद्यापीठ यह भली-भांति जानता है कि इस व्यापक कार्य को वह तभी पूर्णत: सम्पन्न कर सकेगा, जब उसे विभिन्न भाषा-केन्द्रों, भारत की अन्य प्रादेशिक भाषाओं के संस्थानों एवं विद्वत् संस्थानों का

पूर्ण सहयोग प्राप्त हो। क्योंकि भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा अन्य परिस्थितियों के कारण अन्य भाषाओं से अलग होकर हिन्दी कभी विकसित नही हो सकती। अत इसे अन्य भाषाओं और उनके माध्यम से अभिव्यक्त संस्कृतियों के सहयोग के साथ ही चलना होगा। विश्व हिन्दी विद्यापीठ की प्रारम्भ से ही यह भावना रही है कि इसकी बहुपक्षीय योजना में

(१) हिन्दी भाषा और साहित्य के अन्य अध्यापन-केन्द्रों में,

(२) भारत की अन्य प्रादेशिक भाषाओं के केन्द्रों से, और

(३) समान उद्देश्य तथा पुनर्नवीकरण की दृष्टि से हिन्दी तथा अन्य भाषाओं पर कार्य करनेवाले विदेशी अनुसधान-संस्थाओं से निरन्तर पारस्परिक सहयोग मिलता रहे।

अत 'विश्व हिन्दी विद्यापीठ' की स्थापना बहुत दिनों से अनुभूत उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए हुई है, जो द्वितीय तथा विदेशी भाषा के रूप में हिन्दी का विकास करना चाहती है। इसके विकास का उद्देश्य यही है कि आज के सास्कृतिक अवरोध के वातावरण में वह राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक-दूसरे को समझने और बहु-सस्कृति-भावित मानव बनाने के स्वप्न को साकार करने के लिए सांस्कृतिक और भावात्मक आधार बन सके। इससे सांस्कृतिक सम्बन्धों में भी अभिवृद्धि होगी और भारत के भीतर तथा बाहर विभिन्न केन्द्रों में हिन्दी भाषा एव साहित्य के अध्ययन-अध्यापन में भी ऐसी सहायता मिलेगी, जिससे भारत और अन्य देशो के बीच सद्भावना स्थापित कर सकने का भावी उद्देश्य पूर्ण करना सम्भव हो सकेगा।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के अध्यक्ष महाराष्ट्र राज्य के भूतपूर्व अर्थ-मन्त्री, श्री मधुकरराव चौधरी ने विश्व हिन्दी विद्यापीठ की योजना बनाने के लिए डा श्रीमन्नारायण की अध्यक्षता में एक उप-समिति गठित की। डा. वेणीशकर झा, रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव आदि के अथक परिश्रम से विश्व हिन्दी विद्यापीठ की योजना तैयार की गई है। उसके निम्नलिखित उद्देश्य तथा लक्ष्य है :—

(१) विश्व बन्धुत्व की पार्श्वभूमि में हिन्दी के माध्यम से भारतीय समन्वित परम्परा व गांधी तथा टैगोर की विचारधारा का सादगी तथा सरकारिता से ओतप्रोत वातावरण निर्मित करना।

(२) अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिन्दी का समुन्नयन करना।

(३) हिन्दी भाषा और साहित्य में (विशेषतः द्वितीय तथा विदेशी भाषा के रूप में) अध्यापन, प्रशिक्षण और अनुसंधान की व्यवस्था करना।

(४) भारतीय समाज व्यवस्था, दर्शन, सांस्कृतिक रिक्थ के सशक्त माध्यम के रूप में हिन्दी भाषा और साहित्य का परिचय कराना।

(५) बहुसंस्कृति भावित मानव के विकास में सहायता देने तथा अन्य देशों के विविध सांस्कृतिक परिवेशों के बीच व्यवहारिक सम्पर्क बढ़ाने के उद्देश्य से हिन्दी का विकास करना।

(६) देवनागरी की सशक्त अन्तरभाषीय लिपि-पद्धति के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए देवनागरी में अनुसन्धान करना।

(७) भारत और विदेशों में हिन्दी पर होनेवाले अध्यापन, प्रशिक्षण और अनुसन्धान कार्य में पारस्परिक समन्वय को स्थापित करना।

(८) हिन्दी के अध्ययन से सम्बद्ध सूचनाओं के संकलन के लिए सूचना-केन्द्र का कार्य करना।

(९) तुलनात्मक अध्ययन व नवीन एवं उपयोगी क्षेत्रों का परिचय कराने की दृष्टि से भारत की प्रादेशिक भाषाओं की संस्थाओं एवं केन्द्रों के साथ सम्पर्क स्थापित करना।

(१०) शिक्षण-प्रविधियों में (विशेषतः हिन्दी भाषा के शिक्षण से सम्बद्ध) हुई प्रगति का ग्रहण तथा प्रसारण करने में विभिन्न शिक्षा-केन्द्रों के साथ सहयोग करना।

(११) हिन्दी भाषा और साहित्य, भारतीय संस्कृति और नीति-शास्त्र के ग्रन्थों का अन्तर्राष्ट्रीय ग्रन्थालय स्थापित करना, जिसमें हिन्दी भाषा, साहित्य और संस्कृति के अध्यापन, प्रशिक्षण तथा अनुसन्धान के निमित्त दृश्य-श्रव्य सामग्री का संग्रह किया जायगा।

(१२) अध्यापकों, विद्वानों सहकर्मियों और समान आदर्शों के आदान प्रदान के नये माध्यम खोलने के लिए विभिन्न संस्थाओं तथा विश्वविद्यालयों के साथ समुचित व्यावहारिक सम्बन्ध स्थापित करना।

(१३) वास्तविक अध्यापन, प्रशिक्षण तथा व्यक्तिगत सम्पर्क के द्वारा पाठ्य विधान, पाठ्य-पुस्तकों, दृश्य-उप-करणों और जन-सम्पर्क के साधनों के प्रयोग में सहायता और परामर्श देना।

(१४) भारतीय विचार-पद्धति का शोध कराने के निमित्त भारतीय आदर्शों और उन पर होनेवाली प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करने के निमित्त सचल संस्थानों और सांस्कृतिक केन्द्रों की स्थापना करना।

उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मुख्य मन्त्री, श्री बहुगुणाजी ने विश्व हिन्दी विद्यापीठ भवन निर्मिति के लिए १ लाख रुपये का अनुदान दिया था। उसके अनुसार विश्व हिन्दी विद्यापीठ का प्रारम्भिक भवन बन गया है। इस भवन का उद्घाटन महामहिम उपराष्ट्रपति, श्री वासप्पा दासप्पा जत्ती जी के करकमलों द्वारा निकट भविष्य में सम्पन्न हो रहा है।

यह आशा की जाती है कि विश्व हिन्दी विद्यापीठ का शैक्षणिक कार्य जुलाई १९७७ से प्रारम्भ हो जाएगा।

सरला देवी :

शोषण और पोषण

(सरलादेवीजी ने बहुत वर्षों तक सेवाग्राम में हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के अन्तर्गत बुनियादी तालीम का काम किया था। बाद में वे उत्तराखंड में खादी, ग्रामोद्योग व नयी तालीम का काम करती रहीं। अब वे उत्तर प्रदेश के पिथौरागढ़ जिले में एक आश्रम बनाकर जन शिक्षण का काम कर रही हैं।)

कई बार विनोबाजी ने कहा है कि आजकल के बच्चे पहले के बच्चों से ज्यादा बुद्धिमान हैं, लेकिन उनके हृदय और भावनाओं का विकास पहले के बच्चों से कम होता है। आजकल पश्चिम में भी शिक्षा-शास्त्रियों के सामने यह एक मुख्य समस्या है। वे पाते हैं कि आजकल के बच्चों की रुचि यन्त्रों में, हल्ले में, कृत्रिम जीवन में है, प्राकृतिक जीवन की ओर, प्राकृतिक परिस्थिति की ओर, उन्हें बिलकुल रुचि नहीं है। शिक्षा के तज्ञ इस बात का कारण बिलकुल नहीं समझ पाते हैं, लेकिन उन्हें लगता है कि यदि इस समस्या की चाबी उनके हाथ लग जाय, तो आजकल स्वार्थी, लोभी समाज (Acquisitive) क्यों हुआ है, शायद यह बात समझ में आ जाय। इस सिलसिले में, मनुष्य के दूसरे व्यक्तित्व के बारे में श्री वेन्डल बेरी लिखते हैं "यदि हम अपने बारे में विजेता तथा शिकारी (Conquerors & Victims) दोनों की तरह सोचें, तो अमरीका का इतिहास कुछ समझ में आ सकता है। हम कह सकते हैं कि हम में शोषण तथा पोषण का द्वन्द्व चल रहा है। प्रथम देखने पर लगता है यह एक बहुत सीधा और सरल विभाजन है, लेकिन जब हम क्रमवार परिस्थितियों का सामना करते हैं, तब यह विभाजन कम जरा कठिन महसूस होता है। जिन आबादकारों ने लाल हिन्दुस्तानियों का शोषण किया, उन्हें निष्कासित किया, बाद में, उन्होंने अपने ऊपर सरकार के अत्याचार का विरोध किया था। ये शब्द शोषण

और पोषण सिर्फ व्यक्तियों के आपस मे विभाजन की सूचना नही देते है, ये हमारे भीतर में चलने वाले द्वन्द्व की भी सूचना देते है। इस प्रकार से हम सब लोगों का विकास एक शोषक समाज के बीच में हुआ है, और हममें से कोई भी यह दावा नही कर सकता है कि हमारे ऊपर उस बात का कोई भी प्रभाव नही पड़ा है।"

वास्तव मे इस बात मे छोटे बच्चों के झुकावों का विस्तार ही मिलता है।

शोषण और पोषण के बीच में क्या अन्तर है? शोषक एक विशेषज्ञ है। वह कुशलता के लिये ही चिन्तित रहता है। उसका लक्ष्य रुपये कमाना–आर्थिक लाभ ही है। शोषक देखता है कि इस जमीन में ज्यादा-से-ज्यादा क्या पैदा हो सकता है, कितनी जल्दी में पैदा हो सकता है? वह कम-से-कम काम करके ज्यादा-से-ज्यादा पैसे कमाना चाहता है। उसकी योग्यता सगठन में ही है। वह आंकडो और तन्त्रों के सन्दर्भ में विचार करता है। पोषक, विशेषज्ञता में सीमित नही है, वह पोषण करने के लिये चिन्तित रहता है। पोषक का लक्ष्य स्वास्थ्य ही है, अपना स्वास्थ्य, अपने परिवार का स्वास्थ्य, अपनी जमीन का स्वास्थ्य, अपने समाज तथा राष्ट्र का स्वास्थ्य। पोषक देखता है कि स्थायित्व के परिपेक्ष में इस भूमि से कितना उत्पादन मिल सकता है? पोषक बहुत अच्छा काम करना चाहता है। वैसा ही उससे उसका गुजारा भी मिलना तो चाहिये। लेकिन उन्हें अपने काम में ही गर्व और सन्तोष होता है। उसकी योग्यता एक मानवीय व्यवस्था में है, जो सगठन के महत्व को समझकर, फिर भी रहस्यों में भी विश्वास रखता है।

क्या यह व्याख्या १९३२ में धुलिया जेल में विनोबाजी के दिए हुए प्रवचनो में दिये हुए 'कर्मयोगी' की व्याख्या से नहीं मिलती है?

सम्भव है, शायद छोटे बच्चों के लिये पोषक जीवन के शान्त समन्वय भले ही शोषक के जीवन के चमत्कारी आनन्द की होड़ में न उतर सकें, लेकिन पारिवारिक जीवन के सरल ढांचे में पोषक की कला पूरी तरह व्यक्त होनी चाहिये। जिस घर मे बचपन से बच्चे

स्वाभाविक ढंग से पोषण की आदतें न सीख सके, वह घर सच्चा घर नहीं है। उसे हम कल के विरुद्ध एक षडयन्त्र कह सकते हैं। सही पोषण मिलने पर भी जिस बच्चे में पोषण की आदतें स्वत. ही पैदा नहीं होती, वह आगे जाकर शोषक ही बनेगा। यदि घर में हमारे बच्चों को पोषण करने की प्रेरणा नहीं मिल रही है तो हमें एक नये प्रकार का घर बनाने पर विचार करना पड़गा।

इतिहास के द्वारा बड़े बच्चे पोषण का बौद्धिक विचार समझ सकते हैं। जब सामूहिक की योजना के विकास से लोग शोषण के पिंजड़े में फँस जाते हैं, तब उसीके फलस्वरूप विद्रोह, क्रान्ति या प्रवसन प्रारम्भ हो जाता है। श्री बेरी लिखते हैं "इस उत्पीडन से बचने के लिये एक ही मार्ग रह जाता है—शोषक-वर्ग में प्रवेश करना। वैसा ही यह बचाव भी भ्रम तो है ही, क्योंकि एक चीज का उत्पादक दूसरी चीज का ग्राहक बन जाता है। हम कितने धनवान, कितने गतिशील क्यों न हों, लेकिन इस सारे चक्कर के परिणामों से अपने को बचाना कठिन है।"

अमरीका के इतिहास में यह बात स्पष्ट होती है। आबादकारों ने लाल हिन्दुस्तानियों को दबाया था। साम्राज्यवादी सरकार ने उन्हें दबाया। स्वराज्य के लिये लड़कर, उसके मिलने के बाद, ये फिर भी सरकार के नीचे दबे रहे। छोटे स्वतन्त्र किसान, जो स्वराज्य के आन्दोलन की रीढ़ थे, अब औद्योगिक समाज के शोषण से दब गये, या तो उस शोषण में भाग लेकर उसमें शामिल हुए हैं, या तो ऐसे छोटे समूहों से मिल गये, जिनका मुख्य लक्ष्य 'बचाव' ही है— 'अपनी जमीन को बचाओ', 'अपनी घाटी को बचाओ', 'अपनी पहाड़ी को बचाओ' इत्यादि।

जमीन के सिलसिले में पोषण का अर्थ समझाते हुए श्री बेरी लिखते हैं, "यान्त्रिक कृषि से जमीन के प्रति लोगों की भावना सूत्र-बद्ध, रुखी, निर्जीव बनती है। उसमें लचीलापन नहीं रहता है। जैसे-जैसे यन्त्रों का आकार बढ़ जाता है, वैसे-वैसे हम अपनी भूमि की

विशेषताओ की ओर कम ध्यान दे पाते हैं। वह भूमि, विशेष भूमि नही—सिर्फ एकडो मे मापने की चीज रह जाती है। ठीक इस प्रकार व्यस्त शल्यकार के लिये हम खुद शरीर मात्र ही रह जाते हैं। उसका एक परिणाम यह हुआ है कि काफी भूमि जो छोटे किसान की ठोस कृषि पद्धति से सुधर सकती थी अब बंजर हो गई है। इस घटना से जो उपान्तिक लोग अब शहरोकी समस्याओ में समा गये हैं—यह भी यान्त्रिक कृषि की लागतम गिनना चाहिये।"

उपजाऊ भूमि में भी उस कृषि पद्धति से बहुत छीजन हो जाती है। मानवीय बर्बादी के साथ ही साथ ऊपरी मृदा तथा ऊर्जा की भी छीजन हो जाती है, एक हिसाब के अनुसार आइओवा (Iowa) में एक मन मक्के को पैदा करने में दो मन ऊपरी मृदा बर्बाद, हो जाती है, और फिर भी उस मक्के का एक ऊष्माक (Calorie) को पैदा करने मे पांच से लेकर तेरह तक ऊष्माक पेट्रोलियम लगता है। इस मिट्टी के स्थायित्व को कायम रखने की पद्धति पर कोई विचार नही होता है बल्कि उसे दुनिया की सबसे कुशल कृषक-पद्धति कहते हैं।

यदि जमीन का पोषण करना हो, तो मुख्य लक्ष्य भूमि तथा कृषक-समाज का स्वास्थ्य होना चाहिये। यह स्वास्थ्य ही उत्पादन के लिये एक मात्र आश्वासन रह सकता है। भूमि तथा मानव को एक साथ बांधने के लिये एक स्थायी संरक्षक-संस्कृति की आवश्यकता है न कि अर्थशास्त्र या तकनीक की। और हम यह उम्मीद कर सकेंगे कि ऐसे पोषक समाज में जन्मे और पले बच्चे शायद उस चंचलता से बच सकेंगे, जिसकी कठिनाई इधर विनोबाजी तथा उधर शिक्षा-तज्ञ सब महसूस करते हैं।

सेवाग्राम आश्रम वृत्त

(माह जुलाई-अगस्त १९७६)

वर्षा का मौसम होने के कारण आश्रम परिक्षेत्र में पेड़-पौधे लगाने का विशेष कार्यक्रम इस अवधिमे चला। तुलसी के पौध खूब लगाये गये।

१ अगस्त से १५ अगस्त तक महात्मा गाधी इस्टीट्यूट आफ मेडिकल सायसेस के कोर्स के लिये प्रवेश प्राप्त नये विद्यार्थियो का १५ दिनोका सस्कार-शिविर आयोजित किया गया। इसके कारण विशेष चहल-पहल रही। प्रात-प्रार्थना में ओसतन ५३ और साय-प्रार्थना में औसत ४६ उपस्थित रही।

आश्रमवासियो में श्री चिमनलालभाई आदिका स्वास्थ्य अब ठीक है। श्री बलवन्त सिंहजी का स्वास्थ्य भी अब सुधर रहा है। वे फिलहाल रुस्तम भवन गेस्ट हाउस में ही रहते है। श्री शकरनजी का स्वास्थ्य भी अब ठीक है।

आश्रम-दर्शन के लिये वर्षा के कारण दर्शनार्थियो की सख्या कुछ कम रही, फिर भी जुलाई में १५८५ तथा अगस्त में १८४१ दर्शनार्थीयो ने दर्शन का लाभ उठाया। इस अवधि में कुल २२ विदेशी दर्शनार्थी आश्रम दर्शन के लिये आये, जिनमें इटालियन यात्रिओ का १८ लोगों का एक दल भी शामिल है।

विशेष अतिथियो में अगस्त में मद्रास के राज्यपाल माननीय श्री सुखाडियाजी तथा महाराष्ट्र के अन्न और नागरी पुरवठा-मन्त्री माननीय श्री रत्नापा कुभारजी सेवाग्राम-आश्रम-दर्शन के लिये आये तथा उन्होंने आश्रमवासियो के साथ चर्चा भी की।

इस अवधि में दो शिविर आश्रम परिक्षेत्र में सयोजित किये गये। १ महात्मा गाधी इस्टीटयूट आफ मेडिकल सायसेस के ६० लडके-लडकियो का १५ दिवसीय शिविर और २ भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशो के तरुण कार्यकर्ताओ का 'शिक्षा और ग्राम-रचना' के सम्बध में विचार करने के लिये द्विदिवसीय शिविर।

इन दिनो आश्रम प्रतिष्ठान के मत्री श्री प्रभाकरजी गोवध-बन्दी के कार्य के सम्बन्ध में विशेष रूप से बाहर ही रहने के कारण आश्रम प्रतिष्ठान के कार्य के लिये खास समय नही दे पाये। ◘

रजि० सं० WDA/1 लायसेंस नं० ५

मुद्रक शंकरराव लोंढे, राष्ट्रभाषा प्रेस वर्धा

नयी तालीम

स्वावलम्बन 'गुलामी' नहीं !
अपनी ताकत पर बढ़ना है !
माता रुक्मिणी की स्मृति में
"मेरे तो गिरधर गोपाल"
हमारे देश में शिक्षा की वर्तमान स्थिति
१०+२+३ की नई शिक्षा प्रणाली : एक समीक्षा
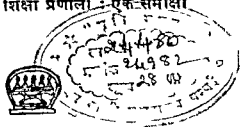
अखिल भारत नयी तालीम समिति

सेवाग्राम

वर्ष : २५] अक्टूबर–नवम्बर, १९७६ [अंक : २

सम्पादक-मण्डल :
श्री श्रीमन्नारायण – प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
श्री वजूभाई पटेल

वर्ष २५
अंक २

अनुक्रम

हमारा दृष्टिकोण

स्वावलम्बन गुलामी नहीं! ५६ महात्मा गांधी

अपनी ताकतपर बढ़ना है! ६३ डा. जाकिर हुसेन

माता रुक्मिणी की स्मृतिमें ६७ विनोबा

"मेरे तो गिरधर गोपाल" ७२ श्रीमन्नारायण

हमारे देशमें शिक्षाकी वर्तमान स्थिति ८१ वजुभाई पटेल

१०+२+३ की नई शिक्षा प्रणाली :
एक समीक्षा ८४ वंशीधर श्रीवास्तव

अक्टूबर-नवम्बर '७६

- 'नई तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
- 'नई तालीम' का वार्षिक शुल्क बारह रुपये है और एक अंक का मूल्य २ रु है
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी संख्या लिखना न भूलें।
- 'नई तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ. भा. नई तालीम समिति, सेवाग्रामके लिए प्रकाशित और
राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

हमारा दृष्टिकोण

नई तालीम सम्मेलन :

वर्ष : २५
अंक : २

अखिल भारत नई तालीम सम्मेलन का पिछला अधिवेशन नवम्बर १९७४ में सेवाग्राम में सम्पन्न हुआ था। अब दो वर्ष बाद यह सम्मेलन सेवापुरी में हो रहा है। हम सभी को खुशी है कि इसका उद्घाटन भारत के उपराष्ट्रपति महामहिम बी डी जत्ती करेंगे। बहुत वर्षों से उत्तर प्रदेश में सेवापुरी बुनियादी तालीम और अन्य रचनात्मक कार्यक्रमों का एक प्रमुख केन्द्र रहा है। काफी साल पहले यहीं सर्वोदय सम्मेलन भी हुआ था जहाँ भूदान-यज्ञ की प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय लक्ष्य निश्चित किये गए थे। हम आशा करते हैं कि अगला नई तालीम सम्मेलन भी इस रचनात्मक केन्द्र में कई दृष्टि से सफल सिद्ध होगा।

इन पिछले दो वर्षों में विभिन्न प्रान्तों में बुनियादी तालीम की दृष्टि से क्या प्रगति हुई है इसका लेखा-जोखा हम सेवापुरी में लेंगे ही। साथ ही साथ १०-२-३ की नई शिक्षा-प्रणाली की वजह से विभिन्न राज्यों में किस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हुई है यह भी हम अधिक स्पष्टता से समझ सकेंगे। बुनियादी पाठ्यक्रम को किस प्रकार अधिक कार्योन्मुख बनाया जा सकता है इसकी भी विस्तृत चर्चा होगी। हाल ही में

केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के आदेश के अनुसार छठवीं कक्षा से ही अँग्रेजी की पढाई लाजिमी ढंग से लागू करने के बारे में भी यह सम्मेलन विचार करेगा। अँग्रेजी शिक्षा सम्बन्धी इस निर्णय से गुजरात की बुनियादी शालाओं में तो एक बहुत कठिन परिस्थिति खडी हो गई है।

कुछ समय पहले प्रधान-मंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने कहा था कि बुनियादी तालीम के सिद्धान्त तो अच्छे हैं, लेकिन वह समय के अनुसार विकसित नहीं हुई है। किन्तु इसकी जिम्मेवारी किसकी है ? यदि केन्द्रीय शासन और राज्य सरकारें बुनियादी शिक्षा के मूल सिद्धान्तों को गम्भीरता से अपना लेतीं और उसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति के रूप में सारे देश में व्यवस्थित ढंग से लागू कर देतीं तो उसका विकास स्वाभाविक ढंग से हो जाता। लेकिन ऐसा नहीं किया गया। फिर भी कई सूबों में बुनियादी तालीम की संस्थाओं ने अपने पाठ्यक्रमों में कई प्रकार के समयानुकूल परिवर्तन किये हैं। कठिनाइयों के बावजूद उन्होंने गाँधीजी की नई तालीम का चिराग जलाए रखा है, और दिन-रात उसे प्रज्वलित रखने के लिए अथक परिश्रम कर रहे हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि वर्तमान बुनियादी शालाओं में और अधिक सुधार नहीं किये जा सकते। कोई भी संस्था या पद्धति सभी दृष्टियों से पूर्ण नहीं कही जा सकती; उसमें सुधार की हमेशा गुंजाइश रहती है। यदि शिक्षा मंत्रालय बुनियादी तालीम के वर्तमान ढाँचे में कुछ ठोस सुधार सुझाना चाहे तो उस पर अवश्य विचार किया जाएगा। किन्तु यदि कुछ रचनात्मक सुझावों के बजाय बुनियादी शिक्षा की टीका-टिप्पणी ही की जाती रहेगी तो फिर इसकी जिम्मेवारी सरकार की ही मानी जाएगी।

ऋषि विनोबा कई बार कह चुके हैं कि स्वराज्य मिलने के बाद नए झण्डे के साथ नई तालीम भी तुरन्त लागू कर देनी चाहिए थी। इस तालीम की बुनियाद 'योग, उद्योग और सहयोग' के सिद्धान्तों पर ही रखी जा सकती है। अक्टूबर १९७२ में सेवाग्राम में ही राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन ने इस ओर सारे देश का ध्यान पुन: दिलाया था। किन्तु अभी तक इन सिद्धान्तों पर गहराई से विचार नहीं किया गया है,

और न कोई अमली कदम ही उठाए गए हैं। इसी वजह से न तो शिक्षा के क्षेत्र में गुण-विकास हुआ है, और न पढे-लिखे नवयुवकों की बेकारी की समस्या हल हो सकी है।

माता रुक्मिणी :

गत् ११ अक्टूबर को ऋषि विनोवा की पूज्य माता रुक्मिणी की जन्म-शताब्दी थी। यह हम सभी जानते हैं कि पूज्य विनोवाजी का व्यक्तित्व बहुत अंशोमें उनकी माँ ने ही अपने सुसंस्कारों द्वारा ढाला था। यद्यपि वे आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के अनुसार साक्षर भी नहीं थीं, फिर भी उन्होंने जो कर्म, ज्ञान और भक्ति के संस्कार विनोवाजी को बचपन से दिये उन्हींके कारण आज ऋषि विनोवा देश और दुनिया को बहुमूल्य मार्गदर्शन दे रहे हैं।

हम 'नई तालीम' के इसी अंक में माता रुक्मिणी संबंधी पूज्य विनोवाजी के कुछ संस्मरण प्रकाशित कर रहे हैं। आशा है हमारे पाठक उन्हें ध्यान से पढ़कर लाभ उठाएँगे।

लघुता की गरिमा :

अक्सर यह समझा जाता है कि छोटे खेतों में उत्पादन कम होता है और रूस जैसे विशाल फार्मों में उत्पादन की मात्रा फी एकड़ अधिक होती है। किन्तु अब आँकड़ोंसे सिद्ध हो गया है कि यह धारणा बिलकुल गलत है। हाल ही में यह जानकारी मिली है कि हंगरी राष्ट्र में भी छोटे छोटे खेतों और बगीचों में देश की कुल उपज का काफी बड़ा भाग पैदा किया जाता है। वहाँ के शहरों के नौ लाख छोटे बगीचों में पूरे राष्ट्र की खेतों की उपज का ३६ फी सदी भाग उत्पन्न होता है, यद्यपि सामूहिक फार्मों की कुल जमीन की अपेक्षा उनका क्षेत्रफल केवल नौ फी सदी है। यह भी महत्वपूर्ण जानकारी मिली है कि इन छोटे खेतों और बगीचों में हंगरी का ४२ फी सदी दूध उपलब्ध होता है और लगभग ५० फी सदी फलों का भी उत्पादन किया जाता है।

हंगरी की सरकार ने यह तय किया है कि इन छोटे किसानों और बागवानों को विशेष सुविधाएँ प्रदान की जाएँ। यदि कोई छोटा किसान

एक से अधिक गाय रखे तो उसे कुछ खास रियायतें दी जाएँगी। अगर तरकारी पैदा करनेवाले किसान शासन या किसी सहकारी संस्था को ३ वर्ष के लिए अपना माल देने का ठेका लेने को तैयार हों तो उन्हें दाममें २० से ४० फी सदी अधिक भाव दिया जाएगा। इससे यह स्पष्ट है कि हंगरी जैसे साम्यवादी राष्ट्र में भी अब विशाल फार्मों के अनुभव से यह स्पष्ट हो गया है कि छोटे खेतों की अपेक्षा उनकी पैदावार काफी कम हुई है। इसीलिए पूर्वी योरोप के करीब सभी देशों में छोटे-छोटे किसानों को अधिक प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

हम आशा करते हैं कि इन अनुभवों से भारत में भी लाभ उठाया जाएगा और विभिन्न राज्य के छोटे किसानों की तरफ अधिक ध्यान दिया जाएगा। यदि हम लघुता की गरिमा को नहीं समझेंगे और गांधीजी की विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था पर अधिक जोर नहीं देंगे तो हमें भी कटु अनुभवों का सामना करना पड़ेगा और देश के विकास में अनावश्यक बाधाएँ खड़ी होंगी।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना :

सितम्बर के अन्त में राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा पाँचवी पंचवर्षीय योजना को अन्तिम रूप दे दिया गया। स्मरण रहे कि पाँचवी योजना एक अप्रैल, १९७४ को ही शुरू होने वाली थी। किन्तु कई कारणों से उसके ढाँचे को आखिरी रूप न दिया जा सका। इस प्रकार इस योजना के लगभग तीन वर्ष तो समाप्त हो चुके हैं और दो वर्ष ही शेष बचे हैं। हमारे विचार से पाँचवी योजना को इस तरह से अनिश्चित रखना उचित नहीं हुआ। पाँच वर्ष की अवधि में दुनिया के किसी भी देश की आर्थिक योजना के आँकड़ों मे परिस्थित्यनुसार परिवर्तन करना स्वाभाविक ही है। इसलिए राष्ट्रीय योजनाओं का वार्षिक मूल्यांकन और समीक्षा करना जरूरी हो जाता है। लेकिन उनके मूल ढाँचे को ही अनिश्चित रहने देना देश की आर्थिक प्रगति की रफ्तार को धीमा करना है। जो हो, देरी भले ही हुई हो किन्तु पाँचवी पंचवर्षीय योजना निश्चित कर दी गई है, यह अच्छा ही हुआ। ■

अब पाँचवीं योजना का कुल खर्च ६ खरब ६३ अरब रुपए होगा और योजना से वार्षिक विकास की दर ४.३७ प्रतिशत बढेगी। इसमें कृषि की दर ४ प्रतिशत और उद्योगों की दर ७.१ प्रतिशत रहेगी। मूल पाँचवीं योजना के प्रारूप में कुल खर्च ५ खरब ३६ अरब और ११ करोड रुपए होने वाला था। इस तरह अब हमारी पाँचवीं पंचवर्षीय योजना पर लगभग १६ हजार करोड रुपए अधिक खर्च किए जाएँगे। फिर भी सही माने में यह योजना पहले से कुछ छोटी ही है। उदाहरण के लिए मूल योजना के प्रारूप में धान्यों के उत्पादन का लक्ष्य १४ करोड टन का था। किन्तु परिवर्तित योजना का धान्य-उत्पादन का लक्ष्य केवल १२ करोड ५० लाख टन का रखा गया है। उसी प्रकार गन्ने का लक्ष्य मूल प्रारूप में एक करोड ७० लाख टन था, और अब यह आँकडा एक करोड ६५ लाख टन ही है। कोयले का उत्पादन पहले १३ करोड ५० लाख टन था, और अब केवल १२ करोड ४० लाख टन है। सीमेंट का उत्पादन मूल योजना में २ करोड ५० लाख टन था, किन्तु अब सिर्फ २ करोड टन का ही लक्ष्य रखा गया है। इसके अलावा अंतिम पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में सिंचाई बिजली और उद्योग के लिए तो प्रावधान बढा दिया गया है, किन्तु कृषि, परिवहन, शिक्षा, सामाजिक और सामुदायिक सेवाओं, और पर्वतीय तथा आदिवासी क्षेत्रों के लिए प्रावधानों में कमी कर दी गई है। फिर भी अगले दो वर्षों में ८ अरब रुपए के घाटे की व्यवस्था करनी पडी है। इस घाटे की व्यवस्था के बावजूद अनुमान है कि केन्द्र सरकार को अगले दो वर्षों में ९०० करोड रुपए और राज्य सरकारों को ७०० करोड रुपए, मुख्यतः नए करों द्वारा जुटाने होंगे। इस योजना में शुद्ध विदेशी सहायता ५८ अरब रुपयों की होगी सरकारी क्षेत्र की योजनाओं में लगभग ६ अरब रुपये के व्यय का अनुमान है, और निजी क्षेत्र के लिए करीब पौने तीन खरब रुपए तय किए गए हैं।

इस योजना को पूरा करने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा जनसहयोग की भी अपील की गई है। यह स्पष्ट ही है कि इस प्रकार की राष्ट्रीय योजनाएँ जनता के पूरे सहयोग के बिना सफल नहीं हो सकतीं।

किन्तु यह सहयोग प्राप्त करने के लिए देश मे योग्य वातावरण बनाना लाजिमी है। जब तक हम देश की गरीब जनता को यह आश्वासन नही दे सकते कि जो बेकार है उन्हे उत्पादक काम दिया जाएगा तब तक राष्ट्र में उत्साह के वातावरण का निर्माण नही हो सकता। पाँचवी योजना मे बेकारी और गरीबी दूर करने पर बहुत जोर अवश्य दिया गया है, लेकिन देश भर म खादी और ग्रामोद्योग के कार्यक्रम को व्यापक ढग से सचालित किए बिना हमारी बेकारी और अर्ध बेकारी दूर करना असम्भव होगा। गुजरात मे राष्ट्रपति शासन की अवधि में हमने इस प्रयोग को आजमाया था। अनुभव से यही पता लगा कि अम्बर-चर्खे और अन्य लघु उद्योगो का जाल बिछाए बिना ग्रामीण जनता को पूर्ण रोजगार देना मुमकिन नही हो सकता है। इस दृष्टि से हमें इस बात का आश्चर्य है कि भारत सरकार के बीस-सूत्री कार्यक्रम में हाथ करघे का तो जिक्र है, लेकिन खादी और ग्रामोद्योगो का नही। जैसा ऋषि विनोबा बार-बार समझाते है, यदि हमे भारत का तेजी से आर्थिक विकास करना है और सभी नागरिको को रोजी देनी है तो कृषि, गोसवर्धन खादी-ग्रामोद्योग और नई तालीम की समग्र योजना बनानी होगी। इसके बिना 'गरीबी हटाओ' के नारे का उद्देश्य प्राप्त नही हो सकेगा।

हम एक और बात की ओर अपने राष्ट्रीय नेताओ का विशेष ध्यान दिलाना चाहते है। आम जनता से बार-बार अपील की जाती है कि वह कठिन परिश्रम करे और स्वावलम्बी बने। लेकिन ससद के पिछले अधिवेशन ने यह निश्चय किया है कि लोक सभा और राज्य सभा के पुराने और नए सभी सदस्यो को रुपए ५०० तक की मासिक पेंशन दी जाएगी। अब समाचारपत्रों से पता लग रहा है कि इसी प्रकार की पेंशन का इन्तजाम विधान सभाओ द्वारा किया जाएगा। आन्ध्र प्रदेश की सरकार ने तो यह निश्चय जाहिर भी कर दिया है। यह स्वाभाविक ही है कि जो व्यवस्था ससद के सदस्यो के लिए की जाएगी वह राज्य विधान मडलो, जिला परिषदो और अन्त में ग्राम-सभाओ तक पहुँचेगी ही। इस तरह विभिन्न स्तरो पर जनता के प्रतिनिधि पेंशनदार बन रहे है। इस पेंशनवाद के जरिए देश की जनता के सहयोग का

किस प्रकार आवाहन किया जा सकेगा यह हमारी समझ में नहीं आ रहा है।

यह भी आवश्यक है कि छठी पंचवर्षीय योजना का प्रारूप तैयार करने के लिए अभी से व्यवस्थित कार्य शुरू हो जाना चाहिए। यदि ऐसा न हुआ तो छठी योजना बनाने में भी देर हो जाएगी और राष्ट्रीय सयोजन का काम बिलकुल अव्यवस्थित बन जाएगा।

✤

'भारतवर्ष ने जिस साधना को ग्रहण किया है, वह है विश्व ब्रह्माण्ड के साथ चित्त का योग, आत्मा का योग अर्थात् संपूर्ण योग। गीता में कहा गया है कि इंद्रियों को श्रेष्ठ वस्तु माना जाता है किन्तु मन इंद्रियों से श्रेष्ठ है, बुद्धि मन से श्रेष्ठ तर है और बुद्धि से भी श्रेष्ठ है स्वयं भगवान्।······इन्हीं सर्व श्रेष्ठ को निखिल के भीतर बोध के द्वारा अनुभव करना भारत की साधना है। अत: हमें केवल इंद्रियों की शिक्षा को ही नहीं केवल ज्ञान-शिक्षा को भी नहीं, बोध की शिक्षा को हमारे विद्यालयों में प्रथम स्थान देना होगा।······भारत वर्ष का सत्य है ज्ञान में अद्वैत तत्व, भाव में विश्वमैत्री और कर्म में योग-साधना।'

—कवींद्र रवींद्र

स्वावलम्बन 'गुलामी' नहीं !

महात्मा गांधी

[शिक्षा मंडल, वर्धा की रजत-जयंती के अवसर पर अक्टूबर १९३७ में महात्मा गांधी की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय शिक्षा परिषद् आयोजित की गई थी। इसी परिषद् में बुनियादी तालीम का जन्म हुआ। पहले दिन की चर्चा के बाद तारीख २२ अक्टूबर को गांधीजी ने जो भाषण दिया था वह यहाँ उद्धृत किया जा रहा है। एक प्रकार से नई तालीम का यही मूल स्रोत है।]

मैंने आज सुबह आपके सामने एक ऐसी चीज रखी है, जिसके जरिए हम अपने बालकों को दिलदार और दिलेर बना सकते हैं। सात साल तक स्कूलमें सिर्फ तकली ही चलाते रहने की बात मैंने नहीं कही। मेरी राय है कि शुरू साल, तकली से पहले, बालकों को थोड़ी धुलाई सिखाई जाए। फिर खेतों में जाकर कपास बीनना बताया जाए। इसीके साथ बालकों को कुछ खास बातें भी सिखाई जा सकती हैं, लेकिन पहले ही साल इनका बोझ बच्चों पर डालना ठीक न होगा। कपास बीनने और रुई धुनने के बाद बालक तकली चलाना सीखेंगे। फिर चर्खे का नम्बर आएगा। सूत की कताई के बाद चर्खा और तकली बनाने का काम भी हमारे सामने रहेगा। जब बालक चर्खा बनाना सीखेंगे, तो उन्हें बढ़ई, लुहार का काम भी सीखना पड़ेगा। आज हमारे गावों में जो कारीगर हैं उनके काम में हाथ की सफाई नजर नहीं आती। लुहार लोहा पीटने का काम करता जरूर है, लेकिन उसे तकुआ या तकली बनाने का इल्म नहीं। चर्खे के लिए तकुआ बिलकुल सीधा और सच्चा बनना चाहिए, वर्ना वह किसी काम का नहीं रहता। अगर इस चीज

को गाँव में बनाने का कोई प्रबन्ध हम कर सकते हैं, तो वह दूसरे साल की पढ़ाई में शामिल होगा। इस तरह सिलसिलेवार काम करने से आगे सफलता जरूर मिलेगी।

प्रोफेसर शाह कहते हैं कि जब तक हिंदुस्तान में विदेश से तैयार माल आता रहेगा तब तक हम अपने माल से उसका मुकाबला कैसे करेंगे? और हमारे देश के अन्दर जो लाखों-करोड़ों कारीगर काम कर रहे हैं, उनका क्या हाल होगा? पहली बात तो यह है कि आज इस तरह के मुकाबले का कोई अंदेशा है ही नहीं और अगर हो भी तो वह पहले मिलों के साथ हो सकता है और बाद में जहाँ तक कपड़े का सवाल है, चर्खा-संघ के साथ। चर्खा-संघ को आज इसकी कोई चिंता नहीं है। मिलों को भी कोई डर नहीं हो सकता क्योंकि उनका माल आज भी बाजार में सस्ता बिकता है। फिर इस सिलसिले में एक खास बात, जिसे हम भूल जाते हैं यह है कि मैंने जो चीज आपके सामने रखी है, वह खासकर गाँवों के लिए है। और जब हमारे मिनिस्टर मुल्क में इसके अनुकूल आबोहवा पैदा करेंगे, तो लोग ज्यादा दाम देकर भी हमारी चीजों को खरीदना पसन्द करेंगे। इस तरह हमारा माल बाजार में बिक सकेगा। और जहाँ तक कपड़े की बात है, मैं समझता हूँ कि हमारी सरकार को अपनी जरूरत का तमाम कपड़ा हमीं से खरीदना होगा, चाहे कुछ ज्यादा दाम देकर ही क्यों न खरीदना पड़े। उदाहरण के लिए यरवदा जेल के छापखाने को लीजिए। उसकी दर ज्यादा है, तब भी सरकार अपना काम वहीं कराती है और बाहर वालों के साथ मुकाबले का कोई सवाल पैदा नहीं होता। इसी तरह हमारा भी काम चलना चाहिए।

शुरू शुरू में देहाती मदरसों में बच्चे कुछ न कुछ बिगाड़ जरूर करेंगे, लेकिन अगर उस्ताद अच्छा रहा, तो वह देख लेगा कि वे कम से कम बिगाड़ते और ज्यादा से ज्यादा बनाते या पैदा करते हैं। यह सच है कि जो माल बाहर तैयार होता है, उतना सस्ता यह माल न हो सकेगा। बाहरी चीजें ज्यादा सस्ती होती हैं, लेकिन जैसे खद्दर में, वैसे इनमें भी

मुकाबले की कोई बात पैदा नही होती। जहाँ तक मै जानता हूँ, गाँवों में ऐसी कोई चीज नही है, जिसे मुकाबले का डर हो या उसका सामना करना पडे। कागज ही को ले लीजिए। गाँवों में यह धन्धा लगभग, मिट ही चुका था। इधर ग्राम-उद्योग-संघ की कोशिशों से फिर कहीं-कहीं जी उठा है। अब देखने में इस कागज के दाम कुछ ज्यादा ही दिखते है फिर भी लोग हिम्मत करके इसे खरीद ही रहे हैं। इस तरह गाँवों में हमारे बच्चों द्वारा जो चीजें बनेंगी, उन्हें भी लोग जरूर खरीदेंगे। जब बालक खुद कागज बनाना सीख जाएँगे, तो वे अपने हाथों बने कागज पर ही लिखेंगे और जब जनता को इसका पता चलेगा, तो वह भी इसी कागज का इस्तेमाल शुरू कर देगी। इस तरह हम किसी की राह में रोडे नही डालेंगे, बल्कि उनके रास्ते को और भी साफ और मजबूत कर देंगे।

यही बात गुड के लिए भी कही जा सकती है। हमारे देश में खजूर और ताड के इतने पेड है कि आज उनका कोई उपयोग नहीं हो रहा है। अगर हम बालकों को इनके रस से गुड बनाना सिखा दें, तो हजारों मन गुड हर साल तैयार कर सकते हैं। इसके कारण ईख से गुड बनाने वालोंके साथ होड का कोई सवाल खडा नही होता। जैसे कि आज ईख से गुड बनाने वालों को मिल वालो से कोई होड नही है इस तरह अगर हमारे लडको ने खजूर और ताड से गुड बनाना सीख लिया, तो गुड के व्यवसाय मे बडी भारी उन्नति हो सकती है, और इस काम में हमें स्टेट से भी मदद मिल सकती है।

अब मशीनरी के सवाल को लीजिए। जिनका यह कहना है कि हमे मशीनरी से तो काम लेना ही पडेगा किसी भी हालत में हम उससे बच नही सकते, उनसे मै यह कहना चाहता हूँ कि हमे मशीनरी की बिलकुल दरकार नहीं। जहाँ तक कपडे का सवाल है, हमे हाथ के बने गाढे के कपडे ही पहनने चाहिए। मिल की हमें कोई जरूरत नही। अपनी जरूरत का सारा कपडा हमे अपने गाँव में पैदा कर लेना चाहिए और हम इसे कर भी सकते है। मेरे ख्याल में हमें मशीनरी का गुलाम बनने

को कोई जरूरत नही। मुझे डर है कि जिस तरह बैलो के साथ रहकर हम बैल-से बन गए है, उसी तरह मशीनो के साथ रहकर मशीन भी बन गए है, और हाथकी कला एव कारीगरी को खो बैठे है। अगर आपका यह ख्याल हो कि मशीन तो अनिवार्य है, उसके बिना काम चल ही नही सकता, तो मै कहूँगा कि मैने जो तजवीज रखी है, वह आपके किसी काम की नही है। आप मशीनके जरिए हमारे गाँवो को जिन्दा रखने की बात सोच रहे है और लडको को उन्ही के मारफत कुछ तालीम देना चाहते है, मगर मेरे ख्याल में यह चीज गलत है और हिन्दुस्तान में किसी हालत में चल नही सकती। यह ३५ करोड लोगो को बेकार कर देने की बात है। अगर आपका यह ख्याल है कि मशीनरी रुक नहीं सकती, तो मै कहता हूँ, मेरी इस तजवीज को आप ठुकरा दीजिए, और जो दूसरी बेहतर तजवीज आपके ख्याल में हो, पेश कीजिए। मै आपका एहसानमन्द हूँगा।

जाकिर साहब ने कहा कि डेवी (Dewey) की 'प्रोजेक्ट' मेथड चल नही सकी। मेरे ख्याल में इसकी वजह यह रही कि उनका तरीका बहुत खर्चीला है, और वह बड़े पैमाने पर चल नही सकता। मेरी तजवीज इससे बिलकुल अलग है, और वह एक देहाती तजवीज है। उससे हम अपने लडको को बहुत कुछ लाभ पहुँचा सकते है। मै तो जो चीज हमारे यहाँ चल रही है, उसीमें नई जान फूँकने की बात कर रहा हूँ। लेकिन अगर आपको इसकी सफलता में सन्देह है, तो आप जरूर इसे छोड़ दे। मगर जो कुछ भी तय करें, सोच-समझ कर करें। इसीलिए मैने आप सबको यहाँ इकट्ठा किया है। इस पर आप खूब गौर कर लीजिए, और आपका विश्वास बैठता हो, तो इसे मजूर कीजिए, वर्ना जाने दीजिए। कहा गया है कि इस तजवीज के कारण स्कूलो में एक नई तरह की गुलामी के पैदा होने का डर है। मै इसे मानता हूँ। लेकिन यह बात तो हर अच्छी चीज के लिए कही जा सकती है, क्योकि अच्छी चीज भी जब बुरे हाथो में चली जाती है, तो बुरी बन जाती है। इसलिए मै नही चाहता कि मेरी चीज ऐसे लोगो के हाथ में पड़े, जिन्हें न इस पर श्रद्धा है, न एतबार है।

एक बात इस सिलसिले में मैं और साफ कर देना चाहता हूँ। मेरी तजवीज सिर्फ उद्योग सिखाने के लिए नही है। मैं तो उद्योग के द्वारा विद्यार्थियो को सभी विषयो का ज्ञान कराना चाहता हूँ। मेरी योजना में इतिहास,भूगोल, गणित, विज्ञान, भाषा, चित्रकला, संगीत आदि सबका समावेश होता है। लेकिन मेरी शर्त यह है कि इन सबका ज्ञान कोरा किताबी ज्ञान न होना चाहिए। ज्ञान जीवन-व्यापी होगा और वह उद्योगो द्वारा हासिल किया जाएगा। और यह सारा काम हमे एक निश्चित पाठ्यक्रम के अनुसार करना होगा।

डाक्टर भागवत ने नौ घंटे की बात सुझाई है। मैं इसे नही मानता, क्योकि मैं बालक पर अत्याचार करना नही चाहता। मैं तो आपसे सिर्फ पाँच घंटे चाहता हू। मुझे यकीन है कि अगर मदरसोमें लडको ने कुछ हुनर सीखा, तो वे घर पर भी उसका अभ्यास जरूर करेंगे, और अपनी योग्यता बढाने के यत्न में रहेगे। अगर सात साल का सलग हिसाब लगाया जाए, तो मेरे विचार मे शिक्षा अवश्य स्वावलम्बी हो सकती है। पहले साल मे हर एक विद्यार्थी रोज के दो पैसे भी कमा ले, तो दूसरे साल एक आना कमाएगा। यो हर साल उसकी उपार्जन शक्ति बढ़ती ही जाएगी। आगे चलकर लडके अपने घर पर भी मेहनत करेंगे और अपने सीखे हुए धन्धे को तरक्की पर पहुचाएँगे।

गाँवो में खेती-किसानी को इस शिक्षा का माध्यम बनाने की बात कही गई है। लेकिन शर्म इस बात की है कि आज इसका कोई सामान हमारे पास मौजूद नही। एग्रीकलचर या कृषि के विद्यालयो और कालेजोंमें लडको को जो तालीम दी जाती है, वह गाँव-वालो के किसी काम की नही होती। कृषि कालेजोसे निकले हुए हमारे नौजवान ग्रेजुएट गाँवो में बैठकर कोई उपयोगी काम नही कर सकते। ऐसे तीन ग्रेजुएट तो मेरे पास ही रहते है, और उनमें से दो शायद यहाँ बैठे भी है। आज इस काम मे वे मेरी कोई मदद नही कर सकते। इसका यह मतलब नही कि वे बिलकुल अयोग्य है। अपनी जगह पर तो वे काम करते ही है। मगर देहाती काम का उन्हे कोई तजरबा नही। वे खुद इस बात को

कबूल भी करते हैं। लेकिन इसमे उन बेचारों का क्या कसूर? उन्होंने अपने कागजों में जो कुछ सीखा गाँव के साथ उसका कोई ताल्लुक ही नहीं था। ऐसी हालत में हम इस चीज को तुरंत तालीम का जरिया कैसे बना सकते हैं?

गाँवों में जाकर हमें बहुत कुछ काम करना है। और इस काममें देहाती लड़के हमारी काफी मदद कर सकते हैं। आज भी वे खेतपर बहुत कुछ काम तो करते ही हैं। अगर मेरी इस तजवीज को आप लोगों ने मान लिया, और इस गाँवों में चलाने वाले अच्छे उस्ताद हमें मिल गए, तो गाँववालों को बहुत फायदा पहुँचेगा। अपने उस्ताद के साथ लड़के भी खेतों पर जाएँगे वहाँ निंदाई बुवाई, सफाई वगैरा में मदद करेंगे, और इस तरह रोज रोज काफी कसरत भी कर लिया करेंगे। फिर बनावटी कसरत के लिए उन्हें अलग से समय देने की जरूरत न रहेगी।

मेरा यह भी ख्याल है कि अगर यह तजवीज जैसी कि मैंने रखी है बहुत कुछ वैसी ही चली तो पहले साल में जरूर कुछ नुकसान रहेगा यह बात मैं अपने तजरबे से कहता हूँ। अभी जाकिर साहब ने कहा कि यह चीज स्वावलम्बी नहीं हो सकती और इसके कारण लड़कों में गुलामी फैलने का खतरा है। मेरा जवाब यह है कि गुलामी की कोई गुंजाइश इसमें नहीं हो सकती। हाँ अगर उस्ताद और इन्स्पेक्टर वगैरा सब के सब निकम्मे मिलें तो बात दूसरी है। इसके लिए हमारे मंत्रियों को खूब सजग रहना होगा ऊपर से नीचे तक सबको सजग रखना होगा।

मगर फिर भी मैं कहता हूँ कि आप मेरे दबाव में आकर कभी इसे मंजूर न करें। यह ठीक न होगा। आप देखते हैं कि मैं इस समय मृत्यु शैय्या पर पड़ा हुआ हूँ। ऐसे समय, मैं जबरदस्ती से कोई चीज मनवाना नहीं चाहता। आप इसे अच्छी तरह सोच समझ लीजिए और फिर चाहे मंजूर कीजिए चाहे नामंजूर। यह न हो कि अभी आप इसे मंजूर कर लें और फिर कुछ वक्त के बाद छोड़ बैठें।

मुद्दत के बारे में मेरा कोई आग्रह नहीं है। इसे आप चाहे ७ साल की रखिए, और जरूरी समझें तो ९ साल कर दीजिए। यह हमारे हाथ की बात है और इसमें कोई खास खतरा भी नहीं है।

प्रोफेसर शाह की एक बात को मैं बिलकुल सही मानता हूँ और मजूर करता हूँ। उन्होंने कहा है कि हर एक सरकार का यह फर्ज होना चाहिए कि वह अपने बेकारोंको काम दे और रोटी दे। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि बेकार को 'डोल' (Dole) दिया जाए, यानी घर बैठे खिलाया जाए। हम किसी को दान नहीं दे सकते, न देना हमारा फर्ज है। हाँ, काम देने का जिम्मा हमारा है। ईश्वर ने किसी को बैठे-बैठे खाने के लिए पैदा नहीं किया। उसने तो पैदा इसलिए किया है कि हम अपनी मेहनत की रोटी कमाएँ और खाएँ।

और, काम की हमारे देश में कमी न होनी चाहिए। जब ३० करोड जिन्दा मशीनें हमारे पास मौजूद हैं, तो बेजान मशीनों का, यानी यन्त्रों का, हम क्यों सहारा लें? मैं कहता हूँ, हम में से हर एक को रोज आठ घण्टे काम करना चाहिए। काम करने से कोई गुलाम नहीं बनता। जिस तरह घर में माँ-बाप का बताया काम करने से हम उनके गुलाम नहीं बन जाते, उसी तरह यहाँ भी गुलामी का कोई सवाल न उठना चाहिए। लेकिन अगर मशीनरी की ही बात सबको मजूर हो तो मेरा निवेदन है कि मैं मजबूर हूँ, क्योंकि उसके लायक कोई तजवीज मेरे पास नहीं है।

■

जिस के हृदय में से प्रेम की धारा निरन्तर बहा करती है वह जगत् का कल्याण करता है।

—महावीर

अपनी ताकत पर बढ़ना है !

डा० जाकिर हुसेन

(जनवरी १९४५ में हिन्दुस्तानी तालीमी संघ द्वारा आयोजित सेवाग्राम राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन हुआ था। उसकी अध्यक्षता डा जाकिर हुसेन ने की थी। सम्मेलन के सभापति की हैसियत से उन्होंने जो भाषण दिया था वह यहाँ पाठकों की जानकारी के लिए दिया जा रहा है। जो विचार डा जाकिर हुसेन ने उस समय व्यक्त किए थे वे आज भी नई तालीम की प्रगति के लिए आवश्यक प्रतीत होते हैं।)

इस काम को शुरू हुए सात साल हुए हैं। यह तो मैं नहीं कह सकता कि इन सात वर्षों में जो काम हुआ, वह सब अच्छा ही अच्छा है और हमें जितना करना था, वह-सब हमने कर लिया। पर यह तो जरूर हुआ है कि इन सात वर्षों में लोगों ने तालीम के इस नए तरीके को खूब ठोंक-बजा कर देखा है। इस पर बहुत कुछ लिखा है, बहुत कुछ बोले, हैं, इसकी अच्छाइयों के भी बहुत गीत गाए हैं और वे अच्छाइयाँ इसमें बताई हैं जो शायद इसमें न हों। और इसे जी खोलकर बुरा भी कहा है— इसमें वे बुराइयाँ देखी हैं और बताई हैं, जो शायद इसमें बिलकुल नहीं हैं। किसी ने हमारी बात को समझकर इसे अच्छा या बुरा जाना है और किसी ने इसे समझना जरूरी नहीं समझा—अपने मन से कुछ ठानकर कि ये लोग यह कहते या चाहते होंगे, इसकी अच्छाई या बुराई की है। इन सबसे इस वक्त सौदा चुकाना नहीं है। मैं तो इतनी बात जानता हूँ कि इन सात साल की बहसों और बातों से यह तो जरूर हुआ कि हमारे देश में ये तीन बातें सबने मान ही ली हैं। पहली बात तो यह कि देश के सब बच्चे बच्चियों के लिए कम से कम सात साल की तालीम का इन्तजाम होना चाहिए। यह तालीम सबके लिए लाजिमी हो और सबको मुफ्त दी जाए। जिस देश में तालीम को सब कामों के पीछे छोड़ते रहने का दस्तूर हो गया है जहाँ बड़े-बड़े

लोग यह पूछ सकते हैं कि सबके लिए तालीम क्यों हो, और सब यह देखकर भी आँखो पर ठीकरियाँ रख लेते हैं कि एक बच्चा मदरसे में जाता है तो दस-बारह मारे मारे फिरते हैं, जहाँ तालीम का काम करके बडी-बडी तनख्वाहें लेनेवाले देखते हैं कि अगर सौ बच्चे मदरसे में जाते हैं तो उनमें से दस-बीस मुश्किल से चौथे दर्जे में पहुँचते हैं, देखते हैं और तनख्वाह लिए जाते हैं और चुप रहते हैं, उस देश में इस बात को सबसे मनवा ना कोई छोटी बात नहीं।

दूसरी बात जो सबने मान ली है वह यह है कि यह सात साल की तालीम सबकी सब मातृभाषा में होनी चाहिए। जिस मुल्क में बहुत-से पढ़े लिखे लोग पिछले दिनों तक अंग्रेजी जबान जानने ही को तालीम कहते थे उसमें इस बात को यों मनवा लेना भी आसान काम नहीं था। तीसरी बात, जिन पर बहुत कुछ कहना-सुनना पडा, यह थी कि तालीम हाथ के काम के जरिए होनी चाहिए। इस पर लोग तो अब भी राजी नहीं हैं और जिस देश में हाथ से काम को बहुत-से बड़े लोग नीची चीज समझते हैं और हाथ से काम करनेवालों को अपने से नीचा जानते हैं, उसमें तालीम का काम करनेवालों में इतने आदमियों का यह मान लेना, जितनों ने माना है कि हाथ के काम को हमारी सात साल की तालीम में बीच की जगह देनी चाहिए कुछ मामूली बात नहीं है।

यह तो हमने मनवा लिया और हम इस पर खुश हों तो ठीक है। मगर काम को ठीक से करने की जरूरत अब भी है। काम को तालीम में बीच की जगह देना ठीक समझना समझाना है और इस रास्ते पर चलने वालों के लिए आसानियाँ पैदा करनी हैं। जो तजरबा हमें इन सात सालों में हुआ है उससे हमें बहुत कुछ सीखना है। इस तजरबे में हमें जो नाकामयाबियाँ हुई हैं, इनसे आगे के काम को मजबूत बनाना है।

इस तजरबे में एक मुश्किल हमें जो पडी वह इस वजह से पडी कि हमें शुरू से गवर्नमेंट की मदद लेकर अपने काम को आगे बढाना पडा। इसमें हमें धोखा हुआ। जिस सरकार को हम अपनी सरकार समझे थे, वह असल में अपनी न थी। असली काम अपने ही भरोसे पर करना

चाहिए। इस तरह काम बढ़ता तो बहुत आहिस्ता, मगर काम पक्का होता और इसकी जड़ें मजबूत होतीं। खैर, वह जो होना था हो गया। हमें आगे अपने काम को अपनी ताकत पर बढाना है। इसके हरेक सवाल को काम से सुलझाना है। और इसकी मुश्किल को अपनी मेहनत और सोच-विचार से सरल बनाना चाहिए।

और अब तो इस कान्फ्रेन्स में आप अपने काम को और भी फैला रहे हैं। हमने अपनी पहली स्कीम (योजना) सात से चौदह साल तक के लडके-लडकियों के लिए बनाई थी, इसलिए कि इस तालीम के बगैर तो कुछ हो ही नहीं सकता। मगर तालीम तो सारी जिन्दगी का काम है, जिन्दगी की पहली साँस से शुरू होती है और आखिरी साँस तक चलती है। अभी गांधीजीने कहा कि "हमको अब उपसागर से समुद्र में जाना है।" काम फैलेगा तो मुश्किलें भी बढेंगी। हमें आज बुनियादी तालीम के काम को जाँचना है, बुनियादी से पहले और बुनियादी से बाद की तालीम पर सोचना है। अब तक हमने इन दोनो पर कुछ ध्यान नहीं दिया था, इसलिए नहीं कि ये काम जरूरी नहीं थे, वरन् इसलिए कि हमारे हाथों में इस काम को करने की ताकत नहीं थी। आज भी हम कमजोर हैं, मगर कुछ काम करने से हमारी हिम्मत बढी है और हम आगे कदम बढाना चाहते हैं। बुनियादी से पहले की तालीम दुनिया के और देशों में भी अपने-अपने ढग से हो रही है, मगर ज्यादातर ऐसा है कि यह बस खास-खास गिरोहों के बच्चों के लिए है। हमारी आरजू है कि हम अपने देश के सब बच्चों के लिए इसका इन्तजाम करें। जी इससे कम पर नहीं मानता कि हिन्दुस्तान के हर बच्चे के लिए अच्छी से अच्छी तालीम का इन्तजाम हो जाए। हिम्मत से सब कुछ हो सकता है।

फिर सात साल की बुनियादी तालीम अगर सब बच्चों को मिल जाएगी तो इनमें से ज्यादा तो अपने अपने धन्धे में लग जाएँगे, मगर कुछ को तो और ऊँचे कामों के लिए आगे भी कुछ सीखना होगा। इनकी तालीम कैसी होगी? जो सात साल के आगे न जाएँगे, उनके लिए जिन्दगी के कठिन रास्ते पर सहारा देने और तेजी से कदम बढ़ाए जाने के लिए और क्या क्या करना होगा? सात साल की तालीम खतम

घरने पर लडके और लडकियाँ वैसे ही रहेंगे जैसे सात से चौदह साल तक थे? क्या सबको हाथ ही का काम अब भी आएगा? या सात साल एक साथ एक रस्ते पर चलकर आगे नए-नए रास्ते आएँगे और अलग-अलग इन्तजाम करना होगा? किसी के लिए हाथ के काम का, किसीके लिए साइंस का, किसी के लिए कला का, किसी के लिए कुछ, किसी के लिए कुछ। इन अलग अलग मदरसो में हम तालीम के काम के उसूल को चला सकेंगे? और चलाएँगे तो कैसे? फिर अब तक तालीम मुफ्त थी। क्या चौदह साल के बाद बस वही सीख सकेगा, जो बहुत-सा पैसा रखता हो या हम इसका इन्तजाम करेंगे कि जिन लडके-लडकियों में आगे सीखने से आगे बढने की उम्मीद लगती है, उनकी जेब चाहे खाली हो कौम उनकी तालीम का प्रबन्ध जैसे भी होगा करेगी? इन सब बातो पर और ऐसी और बहुत-सी बातो पर आपको इस कान्फ्रेंस में ध्यान देना होगा।

और फिर इन लाखो करोडो भाइयो को क्या हम भूल सकते हैं, जिन्हें कभी किसी मदरसे में जाना नसीब नही हुआ? हम भूल तो सकते हैं और भूले हुए भी हैं। लेकिन इन्हें भूलकर हम अपने मुल्क को सच्ची तालीम नही दे सकते। इनसे हमारे देशकी आबहवा बनती है। क्या इनके लिए खाली लिखना-पढना खाने का इन्तजाम कर देना ठीक होगा? मैं तो समझता हूँ कि बस इतना कर देना काफी न होगा। इन्हें भी तालीम देनी है और तालीम खाली लिखने पढने को नही कहते। लिखना-पढना न अच्छा है न बुरा। अच्छे में लगा तो अच्छा है, बुरे में लगा तो बुरा। हमें तो तालीम से इनकी जिन्दगी दुरुस्त करना है, इनके ध्यान को ठीक तरफ झुकाना है इन्हे बुराइयों से बेजार बनाना है और अच्छाइयो की लगन इनके दिल में लगानी है। मैंने कामो की कितनी लम्बी फेहरिस्त आपको सुना दी और काम भी कैसे काम— हरेक में मुश्किल के पहाड सामने दिखाई देते हैं। लेकिन जितनी मुश्किलें ज्यादा है हिम्मत को उतना ही बढाना चाहिए। हिम्मत और मेहनत से सब काम हल हो जाते हैं। मुझे तो पूरी उम्मीद है कि गाँधीजी की रहनुमाई में हम इन बडे बडे कामो को अच्छी तरह कर सकेंगे।

■

माता रुक्मिणी की स्मृति में

विनोबा

हमारी माँ पढ़ी-लिखी नहीं थी। उसको पढ़ना मैंने ही सिखाया। क्या पढ़ती थी वह? भक्तिमार्ग प्रदीप और गीताका अनुवाद। लेकिन माँ से जो शिक्षा मिली, वह मुझे जीवनभर काम आई। एक दिन उसने मुझे कहा, "विन्या! तुम वैराग्य का नाटक तो खूब करते हो लेकिन अगर मैं पुरुष होती, तो बताती असली वैराग्य क्या होता है।" मतलब स्त्री होने के कारण वैराग्य सधता नहीं। स्त्रियों की गुलामी का सूचन भी उसमें था, अगरचे घर में हमारे पिताजी की ओर से सबको पूर्ण स्वातंत्र्य दिया हुआ था। वह शिक्षित नहीं थी इसलिए यह सारा हो सका।

आजकल फोटो लेने का रिवाज है। हमारी माँ का एक भी फोटो नहीं। माँ को फोटो के लिए बैठने को कहा जाता था, तो वह कहती थी, "देह तो मिथ्या है, उसकी क्या फोटो लेता है। चित्त तो भगवान का होना चाहिए।"

माँ ४२ साल की उम्र में गई। माँ, तुकाराम महाराज के भजन बहुत पढ़ती थी। तुकाराम ४२ में गए थे, माँ भी ४२ में गई। पिताजी रामदास बहुत पढ़ते थे। रामदास ७३ में गए, पिताजी भी ७३ में गए।

माँ ३६ साल की थी, तब हमारे माता पिता, दोनों ने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया। माँ की प्रेरणा से। उसकी मृत्यु के समय मैं उसके पास था। तब उसने मुझे कहा था कि "मुझे पूरा समाधान है।" क्योंकि "एक तो तू बड़ा हो गया, अपने भाइयों को देखेगा। अब उसकी चिन्ता

मुझे नहीं। और दूसरी बड़ी बात, दो महीने पहले मुझे भगवान के दर्शन हुए।" दो महीने पहले वह डाकोरनाथ का दर्शन करके आई थी। डाकोर, वडोदा से चार घंटे के रास्ते पर है, पर बारह साल से वह वहाँ जा न सकी थी। घर के काम के कारण। उसके तीनों लड़के उसीकी प्रेरणा से अविवाहित रहे। अब उसने देश का काम किया, ऐसा माना जाएगा या नहीं? इसलिए स्त्रियों की स्वतंत्र शक्ति खड़ी करनी हो, तो ब्रह्मविद्या-ब्रह्मचर्य के सिवा दूसरी शक्ति नहीं।

बाबा की व्यक्तिनिष्ठा माता पर पूरी थी। पर घर छोड़ते समय माँ की आसक्ति रोक न सकी। बाबा घर छोड़कर निकला, उस समय तक हजारों ग्रन्थ पढ चुका था। हजारों ग्रन्थ देख लिए, लेकिन निष्ठा बैठी ज्ञानेश्वरी पर। जब बाबा घर छोड़कर गया, तब अपने साथ एक ही किताब ले गया था—ज्ञानेश्वरी। उसमे पहला ही वाक्य है—'ओम् नमो जी आद्या। वेद प्रतिपाद्या' (आद्य, वेद प्रतिपाद्य परमात्मा को नमस्कार), और फिर आगे आया, 'नाही श्रुतिपरौति माउली जगा, (श्रुति जैसी दूसरी माता नहीं)। माउली—माता जब गई, तब मै स्मशान नहीं गया था। मैंने कहा था कि उसकी अन्तिमक्रिया मै करूँगा, वहाँ जो विधि करना है, वह मै खुद करूँगा, ब्राह्मण के द्वारा नही होने दूंगा। पर वह मान्य नहीं हुआ, तो मै स्मशान में गया भी नहीं। मैंने उसी दिन से वेद पढना आरम्भ किया। ज्ञानेश्वरी माउली थी ही, लेकिन वेद-माउली भी आरम्भ हो गई।

हमारी माँ मामूली ससार-कार्य मे थी। दिनभर काम करती थी। लेकिन उसका चित्त दिनभर ईश्वर-भावना से भावित था। वह ससार में थी, लेकिन उसके चित्त मे, उसकी वाणी में ससार नहीं था। उसके मुख से मैंने कभी कटु शब्द नहीं सुना। सुबह उठी है तो नामस्मरण शुरू हुआ। चक्की पीसने बैठी तो भगवान के गीत शुरू हुए। वह जो गाने गाती थी वे सब भगवान के गाने होते थे। उन्हें वह अत्यन्त प्रेम से और भक्ति से गाती थी। उसकी आवाज बहुत मधुर थी। और उसकी विशेषता यह थी कि वह बिलकुल तन्मय होकर गाती थी। उसका स्नान,

रसोई सब चलता था तो अन्दर ही अन्दर कुछ न कुछ धुन चलती रहती थी। कई दफा यहाँ तक होता था कि वह रसोई में दुगुना नमक डाल देती थी। सबका भोजन होने के बाद वह भगवान की पूजा करती थी। और बाद में खाना खाती थी। मैं तो खाकर चला जाता। बाद में पिताजी खाना खाने बैठते तो कहते कि नमक ज्यादा पड़ा है। शाम को माँ मुझे पूछती कि, सब्जी में नमक ज्यादा था, तो तुमने कहा क्यों नहीं? मैं उससे कहता, नमक कभी ज्यादा हो जाता है तो तू ही पहले चखकर क्यों नहीं डालती? लेकिन भगवान को परोसे बिना कैसे चखना? उसको वह नहीं जँचता था।

भोजन के समय हमेशा थोड़ी आहुति देने का रिवाज है। एक दिन मैंने आहुति नहीं दी। माँ ने पूछा भूल गए? मैंने कहा, "भूला तो नहीं हूँ, लेकिन पाँच जगह की आहुति का कुल पाव तोला चावल होता है। यानी ३० दिनका करीब ७ तोला होगा। भारत में तीन करोड़ ब्राह्मण हैं। तो साल भर में ३ करोड़ सेर चावल बेकार जाएगा। और देश में इतने गरीब लोग हैं उस हालत में ३ करोड़ सेर चावल बरबाद करना उचित नहीं।' माँ ने कहा "ठीक है तुम विद्वान हो, जो भी गणित करोगे, ठीक ही होगा। लेकिन मेरा गणित दूसरा है। थोड़ा-सा चावल थाली के बाहर रखते हैं तो मक्खियाँ उस पर बैठती हैं तुम्हारे खाने पर नहीं बैठतीं। मक्खियों को खाने को मिल जाता है, भूतसेवा होती है।" माँ के कहने में जो खूबी थी, वह मेरे ध्यान में आ गई।

बचपन की याद आ रही है। मेरे हाथ में एक लकड़ी थी। मैं उससे मकान के खम्भे को पीट रहा था। माँ ने मुझे रोककर कहा, "उसे क्यों पीट रहे हो? वह भगवान की मूर्ति है। क्या जरूरत है उसे तकलीफ देने की?" मैं रुक गया। यह जो भावना है खम्भे को भी नाहक तकलीफ न देने की, वह भारत में सर्वत्र मिलेगी, क्योंकि हवा में वह चीज है। सब भूतों में भगवद् भावना रखें, यह बात बिलकुल बचपन से पढ़ाई जाती है।

बचपन में मुझे भूत का डर था। माँ ने कहा कि "भूत दिखे, तो लालटेन लेकर देखो, तो वह भाग जाएगा। वह तो कल्पनामात्र है। और परमात्मा की भक्ति करने वाले को भूत कभी दिखता नही।" माँ के इतना कहते ही मेरा भूत का डर खतम हो गया, क्योंकि माँ पर मेरी श्रद्धा थी।

एक दफा रात को मैंने दीवार पर मेरी बडी परछाईं देखी और डर कर माँ के पास भाग गया। माँ ने कहा, "घवड़ाने की जरूरत नही है, वह तो तेरा गुलाम है, तू जैसी आज्ञा करेगा वह वैसा ही करेगा। तू खडा रहेगा, तो वह भी खडा रहेगा। तू बैठेगा तो वह भी बैठेगा।" मैंने वैसा करके देखा। माँ की वात सही निकली। तब मेरे ध्यान में आया कि वह मेरा गुलाम है। इसमे केवल श्रद्धा का नही, बुद्धि का भी उपयोग किया गया। विचार करने पर बात जँच जाती है, तो विचार से उसे दुहराते जाना चाहिए और श्रद्धा से उसे मजबूत बनाना चाहिए।

एक बार माँ ने वडी मार्के की बात बता दी। वह कहती थी, "तुझे कितना खाना है, वह तेरे नाम पर लिखा हुआ है। कम करके खाएगा तो ज्यादा दिन चलेगा। ज्यादा ही खाता चला जाएगा तो जल्दी खत्म हो जाएगा।" बडा विलक्षण तत्वज्ञान, मानों उपनिषद् का वाक्य ही कह दिया। तो वह दृष्टि माँ ने दी।

माँ के मनमे पिताजी के प्रति बहुत आदर था, फिर भी वह मुझे ज्यादा मानती थी। एक बार माँ ने भगवान को एक लाख चावल चढाने का सकल्प किया। रोज चावल के दाने गिन-गिन कर चढाती। पिताजी ने उसे चावल के दाने गिनते हुए देखा तो कहने लगे, "यह तुम क्या कर रही हो? उससे तो यह करो कि एक तोला चावल नाप लो, उसमे कितने दाने आते है वह गिन लो और उस हिसाब से लाख दाने जितने तोले में आएँ उतना तोला चावल ले लो। चाहे तो आधा तोला और अधिक ले लो, ताकि गिनती में कही कमी न रह जाए।' इस पर माँ कुछ बोली नही। उसे जवाब नही सूझा। शाम को मै घर आया तब मुझसे उसने पूछा— "विन्या, तुम्हारे पिताजी ने ऐसी बात कही, इसमें

क्या रहस्य है, मुझे बताओ।" मैंने कहा— "तुम जो चावल के लाख दाने भगवान को चढा रही हो, वह गणित-हिसाब का काम नही है। वह तो भक्ति है। वह सन्तो और ईश्वर के स्मरण के लिए है। इसलिए एक-एक दाना गिनना ही चाहिए।" उसे एकदम सन्तोष हुआ और पिताजी को उसने वैसा ही जवाब दिया।

माँ परम भक्त थी। पूजा करते समय उसकी आँखो से जो आँसू बहते थे, बाबा वह रोज देखता था। हमारे पित जी भी योगी थी। दोनो का परिणाम यह हुआ कि उनके तीनो बच्चो को ब्रह्मचर्य की प्रेरणा मिली। अगर माता की भक्ति और पिता का योग नही होता तो ऐसा नही बनता। माँ अकसर कहा करती, "लडका उत्तम गृहस्थ होता है तो सात पीढियो का उद्धार होता है। अगर ब्रह्मचारी रहता है तो ४२ पीढियो का उद्धार होता है।" इसलिये बाबा अपने अनुभव से ही कह सकता है कि समाज को ऊँचा बढाने की शक्ति मातृत्व मे है। इसलिए उसका विकास जरूरी है।

❦

जो शिक्षा देश के करोडो नगे भूखे लोगो का ख्याल नहीं करती और उनकी स्थिति में परिवर्तन करने के लिए युवा को प्रेरित नही करती वह राष्ट्रीय शिक्षा हर्गिज नही है। समाज का नैतिक स्तर ऊपर उठाना और करोडो के लिए रोजी का प्रबन्ध करना सही नव निर्माण कार्य है। पुरुषार्थ, शब्द में नही कर्म में है। शिक्षा जब तक श्रमाधारित नही होगी, तबतक मनुष्य स्वावलम्बी नही बन सकेगा।

—महात्मा गाधी

"मेरे तो गिरधर गोपाल"

श्रीमन्नारायण

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने एक बार कहा था— "मेरी गहरी से गहरी दो मनोकामनाएँ हैं— एक अस्पृश्यता-निवारण और दूसरी गो-सेवा। इनकी सिद्धि मे ही मुझे मोक्ष दिखाई देता है।" अस्पृश्यता के उन्मूलन के लिए बापू ने अपने जीवन-काल में अथक प्रयत्न किए, और एक-दो बार जान की बाजी भी लगाई। उसका काफी प्रभाव भी हुआ और भारतीय संविधान में छुआछूत को गैर-कानूनी जाहिर किया गया। किन्तु इस ओर अभी काफी कार्य करना शेष है।

गोवध-बन्दी की दिशा में भी आजादी प्राप्त होने के पश्चात् कई राज्यो ने कदम उठाए और संविधान की ४८ धारा के अनुसार शासन ने कुछ योजनाएँ भी बनाएँ। किन्तु हम सभीको बहुत सन्तोष है कि ऋषि विनोबा के महान सकल्प के कारण अब लगभग सभी राज्यो में सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के अनुरूप कानून बनाने का निर्णय घोषित कर दिया गया है। हमे पूरी आशा है कि इन कानूनों को शीघ्र पारित कर उनके क्रियान्वयन की समुचित व्यवस्था कर दी जाएगी।

किन्तु सिर्फ कानून द्वारा गोसवर्धन का ध्येय पूरा नही किया जा सकेगा। गाँधीजी ने हमें बार-बार समझाया था "कानून बनाकर गोवध बन्द करने से गोरक्षा नही हो जाती, वह तो गोरक्षा के काम का छोटे से छोटा भाग है।" सच्ची और स्थाई गोरक्षा तो कई प्रकार के ठोस रचनात्मक कार्यक्रम द्वारा ही की जा सकेगी। इसके लिए व्यापक जन-शिक्षण बहुत जरूरी है।

* * * *

भगवान् कृष्ण को गोपाल, गोविन्द, गिरिधर के नाम से पुकारा जाता है। उन्होंने भारत के ग्रामीण अर्थशास्त्र को अपने सामूहिक जीवन

में अपनाया और उसका व्यापक प्रचार किया। गायों की प्रेमपूर्वक किन्तु व्यवस्थित ढग से सेवा की, गाँवों में गोरस व मक्खन का विपुल उत्पादन करवाया और मिलकर उसका उपयोग किया। विनोबा ने हाल ही में 'मैया मैं नहि माखन खायो!' का एक मौलिक अर्थ समझाया। कृष्ण ने यशोदा माँ से कहा कि मैंने माखन नही खाया याने मैंने अकेले नही खाया, समाज ने मिलकर उसे खाया और आनन्द मनाया। भारतीय सस्कृति को यह भगवान् कृष्ण की अमूल्य देन है। महाराष्ट्र में इसी तरह जन्माष्टमी के दिन 'गोपाल काळा' का उत्सव मनाया जाता है जिसमें बाल गोपाल अपना-अपना भोजन घर से लाते है और उसे आपसमें मिलाकर स्वाद से खाते है।

माँ यशोदा कृष्ण से डाँट कर कहती थी— माखन तो हमें मथुरा में बेचना है और पैसे कमाना है।' कृष्ण उत्तर देते— माँ मथुरा में पैसा है तो कस भी है। मक्खन खाकर हम बलवान बनग तो कस पर विजय भी पाएँगे। सिर्फ पैसे लाकर क्या बनेगा? यह था कृष्ण का भारतीय अर्थशास्त्र। विनोबाजी भी इन दिनो नारा लगाते है— 'मक्खन खाओ, कपडा बनाओ।' अर्थात गाँवो को अन्न वस्त्र आदि के उत्पादन द्वारा स्वावलम्बी और शक्तिशाली बनाओ। काँचन मुक्ति का उनका बुनियादी विचार ही हमारे राष्ट्रीय जीवन को मजबूत व स्वाश्रयी बना सकता है।

* * * *

मैं कई वर्ष पहले जापान की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का अध्ययन करने जापान गया था। वहाँ के देहातों में काफी विस्तार से भ्रमण किया। जब मैं वहाँ करीब पच्चीस साल पहले गया था उस समय जापान में गायें थी ही नही। वहाँ के लोग दूध का बहुत कम प्रयोग करते थे। इस बार मैंने देखा कि हर किसान के पास दो चार सुन्दर गायें है जिनका वे दूध पीते है और उनसे जोतने का काम भी लेते है। मैंने किसानासे पूछा — 'पहले तो आप लोग यत्रा का अधिक उपयोग करते थे, ट्रेक्टर और पावर टिलर सभी खतो में चलत हुए दिखलाई देते थे। अब आपने ये गायें क्यो रखी है?' जापानी कृषक ने मुस्करा कर उत्तर

दिया —' साहब सिर्फ कृत्रिम खाद और मशीनों का इस्तेमाल करने से हमारी हजारों एकड़ जमीन रेगिस्तान बन गई है। जापान में कहावत है—'नकली खाद पिता के लिए अच्छी होती है लेकिन पुत्रों के लिए बहुत बुरी।' उसके प्रयोग से कुछ साल तक तो फसलें बहुत अच्छी होती हैं। फिर उनका उत्पादन तेजी से घटने लगता है। इसलिए अब हम रासायनिक खाद में गोबर का कम्पोस्ट मिलाकर खेतों में डालते हैं।" और फिर किसान कहने लगे— 'मशीनें न तो दूध देती है और न खाद। इसीलिए हमने गायों का पालन शुरू किया है। उनसे हमें बहुत लाभ हो रहा है।'

जापानी किसानों ने एक और मजेदार बात बतलाई। उन्होंने कहा— "पहले हम सोन खाद का बहुत इस्तेमाल करते थे। अनुभव से हमें पता चला कि मनुष्य मल के उपयोग के कारण शाक भाजी में कीटाणु पैदा हो जाते थे और उनकी वजह से लोगों के पेट में कई तरह की बीमारियाँ होने लगीं। इसलिए सोन खाद द्वारा पैदा की गई तरकारियों व फलों की माँग तेजी से घट गई। अब हम गाय के गोबर की खाद इस्तेमाल करते हैं। उससे कीटाणु मर जाते हैं और फल सब्जी की माँग भी बढ़ रही है।"

कुछ महीने पहले जर्मनी के कुछ डाक्टर और वैज्ञानिक भारत आए थे। वे समझना चाहते थे कि हिन्दुस्तान की जनता गाय के ही गोबर का क्यों उपयोग करती है और उसीसे अपने घर को लीपना क्यों पसन्द करती है। इस कार्य के लिए भैंस का गोबर काम में नहीं लाया जाता। अतः गाय के गोबर का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करने के लिए वे अपने साथ कई थैले गोबर भरकर जर्मनी ले गए हैं। गाय के दूध में क्या विशेष गुण व पोषक तत्व हैं इसकी भी जानकारी प्राप्त की जा रही है।

स्विटजरलैंड में भी किसानों द्वारा गायों का बड़ी कुशलता से पालन पोषण किया जाता है। गायों का उतना ही दूध गाँवों के बाहर बेचा जा सकता है जितना गाँव की जनता की आवश्यकता-पूर्ति के बाद बचता है। पहले गाँव के बच्चे व प्रौढ़ दूध पीएँगे जो दूध बचेगा वह

सहकारी समिति द्वारा शहर मे बेचा जाएगा। भारत के ग्रामीण-क्षेत्रमें तो दूध को बेचना पाप समझा जाता रहा है। आज भी राजस्थान के गाँवोंमे दूध और पूत (पुत्र) को बेचना एक-समान बुरा माना जाता है। लेकिन डेयरियो के आसपास के गाँवोंमे तो आजकल लगभग सभी दूध रुपए के लालच में बेच दिया जाता है, और ग्रामीण बच्चों व जवानों को दूध के पोषण से वंचित रहना पडता है। यह कृष्ण भगवान का अर्थशास्त्र नही है। इसी वजह से राष्ट्र का स्वास्थ गिरता जा रहा है। दूध के स्थान पर चाय और मदिरा की फैशन फैलती जाती है। कितना भयानक है यह नया अर्थशास्त्र !

* * * *

अकसर यह पूछा जाता है कि हमारे ऋषि-मुनि और वैद्य-हकीम भी गाय के दूध के प्रयोग को इतना महत्व क्यो देते है? यह तो स्पष्ट ही है कि अगर हम सही ढग से देश मे गोपालन को सफल बनाना चाहते है तो उन चीजों का उपयोग करना चाहिए जो गाय हमे देती है। यदि हम गाय के दूध, घी आदि का इस्तेमाल नही करेगे तो गाय का पालन-पोषण कौन करेगा? हम गाय का सिर्फ पूजन करे, और चाय मे स्वाद के लिए भैंस के दूध का प्रयोग करे तो फिर हमारी गायें किस प्रकार जिंदा रह सकती है? और अगर गायका ठीक तरह से पालन नही होगा तो अच्छे बैल कहाँ से आएँगे? हाँ, अगर भैंसा खेती के काममें अच्छी तरह उपयोग में आ सकता तब तो दूसरी बात थी। कुछ धान के क्षेत्रों को छोड़कर भारत में भैंसा कृषि के योग्य साबित नही हुआ है और न भविष्य में हो सकेगा। हमारे देश मे गाय को सदियो से पूजनीय माना गया है। अरब देशो के रेगिस्तानी क्षेत्रो मे ऊँट बहुत उपयोगी साबित हुआ है। इसलिए वहाँ उसका कत्ल नही किया जाता। इग्लैण्ड और यूरोप में खेती के लिए अधिकतर घोड़े का इस्तेमाल किया जाता है। लेकिन भारत में तो गाय ही ऐसा पशु है जो सभी दृष्टि से हमारा मित्र, सखा और हितैषी है। अगर हम उसके दूध, घी वगैरह का शौक से इस्तेमाल नहीं करेगे तो हम अपने ही स्वार्थ को ठेस पहुँचाएँगे।

* * * *

मेरे पिताजी अक्सर कहा करते थे : 'जो जिसका दूध पियेगा उसका रूप-रंग और अक्ल उसी तरह की होगी। माँ के दूध का प्रभाव बच्चे पर तुरन्त होता है। अगर माँ को ज्वर और सर्दी-जुकाम है तो बच्चे की भी तबियत तुरन्त खराब हो जाएगी। इसी तरह जो भैंस का दूध पियेगा उसकी बुद्धि भैंस जैसी बनेगी, और जो गाय का दूध इस्तेमाल करेगा वह गाय जैसा चपल, सजग और सावधान रहेगा।" अनुभव से भी हम यही देखते हैं कि जो पहलवान अधिक चर्बीदार भैंस का दूध पीते हैं उनका शरीर तो मोटा-ताजा और मजबूत बन जाता है, लेकिन उनकी अक्ल भी मोटी हो जाती है। जब मैं प्रयाग विश्वविद्यालय का विद्यार्थी था तब सन् १९३० में जगत् विख्यात गामा पहलवान युनिवर्सिटी मे भाषण देने आया था। उसने कहा : "मैं तो पहलवान हूँ, इसलिए पढ़े-लिखों की तरह मैं कोई तकरीर नहीं कर सकता। मेरा शरीर तो ताकतवर है, लेकिन मेरा सिर बहुत छोटा है।" यह कहकर उसने अपनी टोपी निकाल कर छोटा-सा सिर दिखाया। यही हाल सभी पहलवान और दूसरे लोगों का है जो ज्यादातर भैंस का ही दूध पीते हैं। गाय के दूध मे घृतांश कम होता है, लेकिन केरोटो जैसे कई ऐसे तत्व होते हैं जो भैंस के दूध में नहीं पाए जाते। ये तत्व पोषक और प्रेरक होते ह जो हमारे जीवन को स्फूर्तिदायक और बुद्धिशाली बनाते है।

सरकारी डेयरियोमे अक्सर फॅट अधिक होने के कारण भैंस के दूध के दाम अधिक दिए जाते हैं, और गाय के दूध के कम। यह भी बहुत गलत नीति है। कई राज्यो में अब गाय और भैंस के दूध का एक ही मूल्य दिया जा रहा है, क्योंकि दोनों के गुण अलग-अलग हैं। यही सही तरीका है और हम आशा करते हैं कि सभी राज्य इसी नीति को अपनाएँगे ताकि गोपालन को समुचित प्रोत्साहन मिल सके।

हमारी वर्तमान गो-प्रजनन नीति भी दोषपूर्ण है। इस समय क्रॉसब्रीडिंग की हवा सारे देश मे तेजी से बह रही है। जगह-जगह गो-शालाओं में विदेशों से लाये हुए साधनद्वारा कृत्रिम गर्भाधान की व्यवस्था

की गई है। हमने कई गोशालाओं में देखा है कि ये सब गायें दूध तो बहुत देती हैं, लेकिन उनमें चपलता और जीवन शक्ति बहुत कम है। जरा-सी कोई बीमारी आई कि ये चटपट गिरकर मर जाती हैं। बीमारी को सहन करने की उनमें ताकत ही नहीं रह जाती और फिर उनके बछड़े तो खेती के लिए बिलकुल अयोग्य साबित होते हैं। कसाई को भेजने के सिवाय उनका कोई उपयोग नहीं रह जाता। इसका परिणाम यह होता है कि आसपास के गांवों में बैलों की कमी होती है। बंगलौर शहर के नजदीक के गाँवोंमें मैंने पाया कि एक अच्छी बैलजोड़ी की कीमत आजकल करीब ६,००० रुपए है, और किसानों को खेती के लिए अच्छे तथा सस्ते बैल प्राप्त नहीं हो रहे हैं। यह तो हमारी गलत और संकुचित प्रजनन-नीति का ही नतीजा है न? हमें यह भली भांति समझ लेना होगा कि भारत में गोपालन तभी सफल हो सकता है जब गायोंमें दूध की वृद्धि हो और साथ ही साथ खेती के लिए अच्छे बैल भी तैयार किए जा सकें। दूसरे शब्दों में, हमें एकांगी नहीं, सर्वांगीण गाय का विकास करना होगा। हम आशा करते हैं कि राज्य सरकारें इस ओर विशेष ध्यान देंगी ताकि अधिक दूध का उत्पादन करनेके लालच में हमारी खेती को गहरा धक्का न पहुंचे।

कृष्ण भगवान केवल एक कुशल गोपालक ही नहीं थे, वे एक चतुर और दूरदर्शी सयोजक भी थे। इन्द्र के कोप को सहन करने के लिए गोवर्द्धन पर्वत को एक उंगली पर उठा लेने की कथा कोरी कल्पना व काव्य नहीं है। काफी वर्ष पहले मैं उत्तर प्रदेश के वन विभाग की ओर से आयोजित एक कार्यक्रम में भाग लेने के लिए आगरा गया था। उस समय मैं योजना कमीशन का सदस्य था। आगरा के पास जमुना नदी के किनारे भूमि-संरक्षण का जो कार्य वन-विभाग द्वारा किया गया है उसका निरीक्षण करने का अवसर भी मुझे मिला। यह भी सुझाया गया कि मैं दिल्ली वापस आते समय मथुरा के पास गोवर्द्धन पर्वत पर जो वन लगाया गया है उसे भी देखूं। लगभग पचास वर्ष पूर्व जब मैं आगरा कालेज का विद्यार्थी था तब एक बार गोवर्द्धन पर्वत देखने गया था और उसकी धुंधली-सी स्मृति मनपर छाई हुई थी। इसलिए इस प्रस्ताव को मैंने

सहर्ष स्वीकार किया और दूसरे दिन सुबह हम मथुरा से गोवर्द्धन पर्वत की ओर रवाना हुए। वन-विभाग के अधिकारी भी मेरे साथ थे। उन्होने बडी दिलचस्पी के साथ मुझे बताया कि कुछ साल पहले गोवर्द्धन पर्वत बिलकुल रूखा-सूखा था और उसपर कही भी हरियाली न थी। अब इस पहाड पर कई प्रकार के पेड लगाए गए है, जिनके कारण यह स्थान काफी हरा-भरा हो गया है। बहुत वर्षों बाद गोवर्द्धन पर्वत के पुन दर्शन करके मुझे आनन्द और सन्तोष होना स्वाभाविक था।

वन अधिकारी से पूछने पर पता लगा कि गोवर्द्धन पर्वत लगभग सात मील लम्बा है और ३५० फुट चौडा।

' इस पर्वत का इतिहास क्या है " मैने वन-विभाग के अधिकारियो से पूछा।

' कुछ लोगो का ख्याल है कि यह पर्वत अरावली श्रेणी का एक हिस्सा है।" उन्होने उत्तर दिया।

"क्या इसके आसपास और भी कई पहाड है ?"

'जी नही इसके नजदीक और कोई पहाड नही है।"

फिर एक अधिकारी ने धीरे से कहा, "कुछ लोगो का यह भी ख्याल है कि यह गोवर्द्धन पर्वत किसी जमाने मे विशेष रूप से किसी राजा द्वारा बनवाया गया था।"

' किसलिए " मैने पूछा।

उन्होने उत्तर दिया, "मथुरा की ओर से इस तरफ जमीन काफी ढालू है। जिस वर्ष अधिक बारिश हो जाती है तब जमीन, ढालू होने की वजह से पानी बहकर इस ओर आ जाता है। इस पहाड के दूसरी ओर जो गाँव है वे तो इस पानी के बहाव से या बाढ से बच जाते है, लेकिन आसपास के दूसरे गाँव म बहुत नुकसान हो जाता है, और फसल नष्ट हो जाती है। आमतौर पर बाढ की वजह से चारे के लिए भी कोई घास नही होती। किंतु इस पर्वत के कारण अब गायो के चरने को कुछ सुविधा होने लगी है।"

बातचीत करते करते यह भी पता लगा कि इस पर्वत की रचना में अधिकतर पत्थर के टुकडे ही हैं और बीच बीच में मिटटी भरी हुई है। स्थानीय अधिकारी से मैंने जानना चाहा कि इस पर्वत के आसपास कुछ कुएँ भी हैं या नही? मालूम हुआ कि पर्वत के नजदीक कोई कुआँ नही है। आठ दस फुट नीचे खोदने पर काफी पत्थर निकलते है। कुछ वर्ष पहले एक ट्यूब-वेल खोदने की कोशिश की गई थी लेकिन वह भी विफल रही। वहाँ से कुछ दूरी पर एक दो कुएँ हैं जहाँ से लोग पीने आदि के लिए पानी लेते है।

इस तरह वहाँ लगभग आधा घटा रुकने के बाद मैं मथुरा की ओर वापस चल पडा। रास्ते में मोटर से मैंने फिर गोवर्द्धन पर्वत की ओर ध्यान से देखा और काफी देर तक सोचता रहा कि कृष्ण भगवान ने इस पर्वत को उगली पर उठाया था इसका क्या अर्थ हो सकता है? सोचते सोचते अचानक ध्यान मे आया कि हो न हो यह कृष्ण द्वारा आयोजित श्रमदान का एक प्राचीन व मूर्तिमत दृष्टान्त है। हजारो वर्ष पहले इस क्षेत्र की जमीन ढालू होने की वजह से बार बार बाढ आती रही होगी और प्रतिवर्ष कई गाँव में काफी बरबादी होती रही होगी। कृष्ण भगवान् तो एक कुशल कर्मयोगी थे। इसलिए उन्होंने इस समस्या का एक व्यावहारिक हल ढूंढ निकाला होगा और आसपास के गाँव की जनता को आह्वान दिया होगा कि श्रमदान द्वारा इस स्थान पर एक लम्बा बाँध या पहाड खडा किया जाए जो बाढ को रोकने में समर्थ हो। उनकी उगली के इशारे पर ही सैकडो हजारो ग्रामवासियो ने इस योजना को पसन्द करके उसे कार्यान्वित करने में हाथ बँटाया होगा। प्रत्येक कुटुम्ब ने उस क्षेत्र से कुछ पत्थर खोद खोदकर इस पर्वत के निर्माण में सहायता की होगी। इसलिए प्राचीन कथा मशहूर है कि कृष्ण भगवान ने अपनी उगली से गोवर्द्धन पर्वत उठाया और सभी वाल-गोपालो ने उसे उठाने में अपने अपने हाथो का टेका दिया। इन्द्र के कोप का यही अर्थ हो सकता है कि अधिक वर्षा के कारण उस ओर बाढ आ जाती थी और उन ग्रामो को बरबाद करती थी। गोवर्द्धन पर्वत को उठाने का यही अर्थ ध्यान म आया कि यह पहाड

श्रमदान द्वारा जमीन पर उठाया गया, उसी तरह जैसे कारीगरों द्वारा एक दीवार उठाई जाती है।

यह भी ध्यान में आया कि इस पर्वत को 'गोवर्द्धन' का नाम इसलिए दिया गया होगा कि उससे बाढ़ की रोकथाम के अलावा उस पर गायों के चरने का अच्छा प्रबन्ध हो गया होगा और इस प्रकार गोवंश की वृद्धि हुई होगी। मेरे मन में यह स्पष्ट हो गया कि कृष्ण ने इस पर्वत को एक बहुउद्देशीय 'प्रोजेक्ट' के रूप में ही बनाया होगा।

इस प्रकार गोवर्द्धन पर्वत सामूहिक श्रमदान का एक उत्तम नमूना है। भगवान कृष्ण ने गोसंवर्धन की दृष्टि से इस पर्वत का निर्माण करके बड़ी सूझ-बूझ का परिचय दिया। गोवर्द्धन के द्वारा वहाँ के ग्रामीण जीवन का स्थाई कल्याण भी हुआ। इसीलिए भक्त शिरोमणि मीरा ने आनन्द-विभोर होकर गाया था—

'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई।'

आज मानवता के वस्त्र बिलकुल चिथड़े चिथड़े हो गए हैं इसलिए जरूरी है कि उसे कोई नया परिधान दिया जाए। प्रत्येक मानव को उस स्थिति में पहुँचना है कि जहाँ वह प्रत्यक्ष अन्य मनुष्य को अपना ही अंश मानने लगे। इस तरह के मानस से सवलित सभी मनुष्य सच्चे मानव बन जाएँगे।

—अरविन्द

हमारे देश में शिक्षा की वर्तमान स्थिति

वजुभाई पटेल

कुछ समय पहले युनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन की रिपोर्ट पर चर्चा करते हुए केन्द्रीय मन्त्री प्रो नूरुल हसन ने लोक सभा में कहा कि हमारी शिक्षा प्रणाली में कोई भी त्रुटि नहीं है, परन्तु परीक्षा-प्रणाली तथा कुछ अन्य पहलुओं में कुछ बदल करने की आवश्यकता है।

मेरे विचार से यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है। वास्तव में हमारी शिक्षा-प्रणाली बिलकुल अनुचित है। शिक्षा शास्त्रियों की भी यही राय है और हमारे देश के महान नेता गांधी और टैगोर ने भी यही कहा है। जो शिक्षा प्रणाली ब्रिटिश शासन ने स्वयं की शासन व्यवस्था के लिए बनाई थी वही छुट-पुट परिवर्तन के साथ चल रही है। हमारी प्रधान-मन्त्री तथा अन्य लोगों ने भी कहा है कि देश के विकास के लिए यह शिक्षा-प्रणाली उचित नहीं है। शिक्षा के क्षेत्र में जो स्थिति है। उस पर यदि विचार करें तो तीन खास बातें हैं जिनपर तुरन्त विचार किया जाना चाहिए— जनता तथा सरकार दोनों के द्वारा

(१) प्रौढ़ शिक्षा के लिए हम किस प्रकार जनता में जाग्रति तथा अनुमोदन उत्पन्न कर सकते हैं।

(२) विद्यालयों की शिक्षा को हम किस प्रकार कार्योन्मुख तथा लोगों की आवश्यकताओं के अनुकूल बना सकेंगे।

(३) उच्च शिक्षा देश की बढ़ती हुई आवश्यकताओं से सबंधित किस प्रकार बनाई जा सकती है।

जहाँ तक हमें जानकारी है उपर्युक्त तीन मुद्दों पर राज्य सरकार अथवा केन्द्र सरकार किसी ने भी कोई नीति निर्धारित नहीं की है। सारे देश में अध्यापकों, अभिभावकों तथा छात्रों ने इसके विरुद्ध उचित आलोचना भी की है, मगर अभी तक परिणाम कुछ भी नहीं निकला।

प्रौढ शिक्षा के क्षेत्र में देश की कुछ संस्थाओं ने स्वयस्फूर्तकार्य किया है और कर रही है। परन्तु खेद है कि हाल ही में प्रौढ शिक्षा सचिवालय की विज्ञप्ति के अनुसार सारे देश में ऐसी संस्थाएँ केवल

८६ हैं जिन में से कुछ स्थानीय क्षेत्रों में काम कर रही हैं और बहुत कम राष्ट्रीय पैमाने पर। यह सचमुच बड़ी दुःखभरी स्थिति है। स्वतंत्रता के २९ वर्षों के पश्चात् भी हमारा देश प्रौढ शिक्षा की समस्या को किसी सन्तोषपूर्ण ढंग से सुलझा नहीं सका है। इसका कारण यह है कि सरकार ने इस विषय में कोई विशेष नीति ही निर्धारित नहीं की है। सरकार उच्च शिक्षा को तो बहुत बढ़ावा देती है, परन्तु प्रौढ शिक्षा को उसकी बराबरी का स्थान देने के लिए तैयार नहीं है। वास्तव में तो उच्च शिक्षा तथा प्रौढ शिक्षा दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए किसी निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचना अत्यन्त आवश्यक है तथा इसके लिए राज्य और केन्द्र सरकारों को इस विषय में अपनी नीति निर्धारित करनी चाहिए। इस नीति को यदि गम्भीरतापूर्वक अमल में लाया जाए तो निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचना कठिन न होगा।

माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षा में तो सुधार किए जा रहे हैं उनसे स्पष्ट पता लगता है कि उनकी योजना बनाने में और उन्हें कार्यान्वित करने में कल्पना शक्ति को बहुत कम काम में लाया जा रहा है। १०+२ की शिक्षा-प्रणाली प्रारम्भ करने से पूर्व माध्यमिक शिक्षा को कार्योन्मुख शिक्षा (Functional) प्रदान करने वाली बनाना था तथा विभिन्न प्रकार के तथा विभिन्न अवधि में पूरे होने वाले व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए थी। कदाचित् केन्द्र तथा राज्य सरकारों ने इस सचाई को, इस आवश्यकता को नहीं समझा। माध्यमिक शिक्षा में कार्योन्मुख शिक्षा प्रदान करने की योजना बनाने के बजाय उन्होंने ऐसी नीति अपनाई कि माध्यमिक शिक्षा से उद्योग की शिक्षा हटाकर उसे उच्च माध्यमिक शिक्षा (+२) में रखा जाए। इस नीति के भयानक परिणाम हम स्वयं देख रहे हैं। पहले १० वर्षों में तो उद्योग की शिक्षा है ही नहीं, परन्तु जो दसवीं कक्षा की परीक्षा पास करते हैं वे ११ वीं तथा १२ वीं कक्षा में ऐसी पढ़ाई करते हैं मानो वह स्कूल की पढ़ाई का ही एक अंश हो और विश्वविद्यालयीन शिक्षा की तैयारी हो। सारे विद्यार्थी विभिन्न शास्त्रों के अध्ययन में लग जाते हैं। इसी कारण विश्वविद्यालयों में भीड़ भयानक रूप में बढ़ती जा रही

है। माध्यमिक शिक्षा की अंतिम परीक्षा में अनुत्तीर्ण छात्र किसी भी प्राथमिक कौशल्य में प्रशिक्षित नही होते हैं, इसलिए जीवन में किसी व्यवसाय को नही अपना पाते। उन्हें कोई व्यवसाय नही मिलता इसलिए स्कूल छोडने वाले ५०% छात्र जीवन में नैराश्य के शिकार होते हैं।

भविष्य में यदि उच्च माध्यमिक शिक्षा में व्यवसायिक शिक्षा की व्यवस्था की भी गई तो बहुत से विद्यार्थी उसमें ठीक नही बैठेंगे जब तक कि विद्यालय की शिक्षा में प्राथमिक कौशल्य का प्रशिक्षण न दिया जाए। एक ही वास्तविक और तर्कसगत उपाय है, जिसे कोठारी कमीशन ने भी माना है, और वह है माध्यमिक शिक्षा में व्यवसायीकरण (Vocationalisation) की व्यवस्था करना।

उच्च शिक्षा में परीक्षा प्रणाली के सुधार की बात १९६१ से की जा रही है। राधाकृष्ण कमीशन ने इसके लिए प्रेरणा दी जब कि उन्होंने कहा, "यदि उच्च शिक्षा मे सुधार करने की बात आप सोचें तो वह होगी परीक्षा-पद्धति में सुधार की बात।" माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक शिक्षा में कोई अर्थपूर्ण सुधार तो किया ही नहीं गया है ("प्रश्न बैंक" के रूप में किया जाने वाला सुधार— यदि सुधार कहा जा सके तो— हास्यास्पद है), बल्कि पूर्व माध्यमिक शिक्षा मे भी कोई सुधार किए ही नही जा रहे है, इसलिए कि उच्च शिक्षा में धन की अधिक आवश्यकता है।

किन्ही विश्वविद्यालयो में कुछ इक्के-दुक्के व्यवसाय तथा अनेक कला सबधी संस्थाओ के खोलने या निरन्तर शिक्षा प्रदान करने वाली एक सस्था स्थापित कर देने ही से अथवा एन एस एस को विश्वविद्यालयीन पाठयक्रम में शामिल कर लेने मात्र से ही शिक्षा में सुधार नही होंगे। इन सबसे बहुत कम प्रतिशत विद्यार्थी लाभ उठा पाएंगे। बहुतोको केवल किताबी ज्ञान ही प्राप्त होगा। हमारे देश में शिक्षा की यह बडी खेदपूर्ण स्थिति है।

देश में शिक्षा-क्षेत्र में आमूल् परिवर्तन की आवश्यकता है। यह तभी सम्भव होगा जब केन्द्र सरकार इसे राष्ट्र के विकास के लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण मुद्दा माने।

१०+२+३ की नई शिक्षा प्रणाली
— एक समीक्षा —

बन्सीधर श्रीवास्तव

१०+२+३ की शिक्षा प्रणाली शिक्षा का एक नया ढाँचा मात्र नहीं है, यह शिक्षा की नई सकल्पना भी है। शिक्षा की इस नई सकल्पना में सात या आठ वर्ष तक की अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा के स्थान पर दस वर्ष तक की सामान्य शिक्षा की योजना है, जिस स्तर पर किसी प्रकार का विशेषीकरण (स्पेशलाइजेशन) नहीं होगा। शिक्षा प्रणाली की इस नई सकल्पना में दस वर्ष की शिक्षा में बाद के +२ के स्तर पर माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण की सकल्पना है। और इसके बाद तीन वर्ष का समय प्रथम स्नातक की उपाधि के लिए निश्चित किया गया है।

इस नई शिक्षा प्रणाली की सकल्पना में कार्य-अनुभव का अत्यधिक महत्व है। कार्य-अनुभव इस प्रणाली का अपरिहार्य अंश है, क्योंकि कार्य-अनुभव की दृढ नींव पर ही आगे की +२ स्तर की माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण का महल खडा किया जा सकता है। कार्य-अनुभव इस प्रणाली की रीढ है— होना चाहिए। कार्य-अनुभव के विषय में व्यावहारिक स्तर पर काफी चर्चा हुई है। शिक्षा आयोग ने कहा था कि कार्य-अनुभव का दर्शन बेसिक शिक्षा के शिल्प के दर्शन के समान है। शिक्षा को उत्पादक बनाने और मनुष्य के प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण से जोडने का काम यह भी उसी तरह करेगा जैसा बुनियादी शिक्षा में शिल्प करता था। केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय ने कार्य-अनुभव पर जो पुस्तिका प्रकाशित की थी उसमें कार्य-अनुभव की एक परिभाषा इस प्रकार दी गई है — "रचनात्मक और उत्पादक

कार्य कलापों द्वारा ज्ञान और हुनर का इस प्रकार समन्वय करना जिसके परिणामस्वरूप छात्रों में ऐसी वस्तुएँ-उत्पादन की क्षमता आ जाए जिनका बाजार में मूल्य हो।" कार्य-अनुभव की सरचना के दो प्रमुख लक्षण है— एक है रचनात्मक और उत्पादक काम और दूसरा है उस काम द्वारा तैयार की हुई वस्तु का बाजार में मूल्य।" डा रहीस अहमद जो इस समय राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण समिति के निदेशक है, कार्य अनुभव के विषय में कहते है— 'कार्य-अनुभव इस नई प्रणाली का अभिन्न अग है। वह सम्पूर्ण शैक्षिक "टोटल लर्निंग एक्सपीरिएन्स है। सम्पूर्ण शैक्षिक अनुभवी बनने के लिए यह आवश्यक है कि कार्य अनुभव पाठ्यक्रम का एक विषय मात्र न रहकर समग्र पाठ्यक्रम को कार्योन्मुख बनाए। ऐसा होगा तभी उससे छात्रों की उत्पादन शक्ति का विकास होगा और उनमें शारीरिक श्रम के प्रति अभिरुचि का निर्माण होगा।

और अभी हाल में +२ के प्रस्तावित पाठ्यक्रम के प्रारूप के सम्बन्ध में बोलते हुए राज्य के शिक्षा मंत्रियों को अपने एक परिपत्र में केन्द्रीय शिक्षा मंत्री श्री नूरुल हसन ने कार्य-अनुभव के विषय में कहा है— "कार्य-अनुभव का इस नई प्रणाली में बहुत महत्व है। कार्य-अनुभव काम के द्वारा सीखना है। इसमें छात्रों में उन गुण और कौशलों का विकास होता है जिससे उनमें आज के विज्ञान और टेकनालाजी के युग में जीवन जीने की कला आती है। कार्य-अनुभव व्यावसायिक शिक्षा से निकट का सम्बन्ध है यानी शिक्षा को उत्पादकता से जोडना। अगर हमने नए पाठ्यक्रम को कार्यान्वित करते समय इस बात को ध्यान में रखा तो इससे स्कूल के लिए साधन की उपलब्धि में वृद्धि होगी और प्रधान मंत्री के नए आर्थिक कायक्रम में सहायता भी मिलेगी। फिर ६ मार्च, १९७६ को लगभग ३०० शिक्षा शास्त्रियों को सम्बोधित करते हुए (जो दस वर्ष के नए पाठ्यक्रम पर विचार करने के लिए एकत्र हुए थे) उन्होंने कहा— '१०+२+३ की नई शिक्षा योजना में कार्य अनुभव अथवा काम की शिक्षा को जिस तरह बुना गया है और दस वर्ष के बाद की आगे की दो वर्ष की माध्यमिक व्यावसायिक शिक्षा

और सामान्य शिक्षा (एकादमिक) के साथ जिस तरह उसका समन्वय किया गया है उसका अगर ठीक से कार्यान्वित किया गया तो निश्चय ही एक समन्वित व्यक्तित्व का विकास होगा लेकिन तब जब रक्षित स्वास्थ्य इस योजना के साथ धोखाधडी न करें (टेम्पर न करें) ।

कार्य-अनुभव के सम्बन्ध में ऊपर जो बातें कही गई हैं उनकी ओर विशेषत कन्द्रीय शिक्षा मत्री के इस कथन की पृष्ठभूमि में हम एक नजर उस पाठ्यक्रम पर डालेंगे, जिसे केन्द्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण समिति ने तैयार किया है और जिसे नमूने के तौर पर लगभग सभी राज्यो म स्वीकार कर लिया है। पाठ्यक्रम निम्न प्रकार है —

कक्षा १ और २

१ एक भाषा २ गणित, ३ परिसर का अध्ययन (वैज्ञानिक और सामाजिक), ४ कार्य-अनुभव और कला, ५ स्वास्थ्य शिक्षा और खल कूद।

कक्षा ३, ४ और ५

१ एक भाषा २ गणित, ३ परिसर का अध्ययन (सामाजिक), ४ परिसर का अध्ययन (वज्ञानिक), ५ कार्य अनुभव और कला, ६ स्वास्थ्य शिक्षा और खल-कूद।

कक्षा ६ ७, और ८

१ प्रथम भाषा चलती रहेगी, परन्तु उसके साथ एक और भाषा हिन्दी या अंग्रेजी। २ गणित (बीजगणित और ज्यामिति के साथ), ३ सामाजिक विज्ञान (इतिहास भूगोल, नागरिक शास्त्र अर्थशास्त्र), ४ विज्ञान (भौतिक और जीव विज्ञान के तत्व) ५ कलाएँ, ६ कार्य अनुभव, ७ शारीरिक शिक्षा और स्वास्थ्य शिक्षा एव खलकूद।

कक्षा ९ और १०

१ भाषा (दो भाषाओ के साथ एक तीसरी भाषा-अंग्रजी अथवा कोई क्षेत्रीय भाषा) २ गणित (बीजगणित और ज्यामिति

के साथ), ३. समाज विज्ञान (इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र और अर्थशास्त्र के तत्व)। ४ कलाएं, ५ कार्य-अनुभव, ६ शारीरिक शिक्षा (स्वास्थ्य शिक्षा और खेलकूद)।

इसके बाद पाठ्यक्रम का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है कि इस पाठ्यक्रम को देखने से यह आभास होगा कि पाठ्य विषयों की संख्या बहुत बढ़ गई है, परन्तु वास्तव में कलाओं, कार्य-अनुभव, शारीरिक शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा और खेलकूद को विषय नहीं मानना चाहिए। अतः यह कहना स्पष्टतः इन विषयों का अवमूल्यन है।

शिक्षण-अवधि

इस पाठ्यक्रम में सुझाव दिया गया है कि सालभर में काम के कम से कम २४० दिन हों इसमें से २२० दिन तक पढ़ाई लिखाई का और २० दिन तक स्कूल कैम्प और समाज सेवा आदि का काम हो।

समय का वितरण

कक्षा १ और २ मे भाषा के लिए २५, गणित के लिए १०, परिसर के अध्ययन के लिए १५, कार्य-अनुभव और कला के लिए २५ और स्वास्थ्य शिक्षा एवं खेलकूद के लिए २५ % समय दिया जाए।

कक्षा ३ से ५ तक गणित के लिए ५, परिसर के अध्ययन के लिए ५ % बढ़ा दिया गया है, परन्तु कार्य-अनुभव और कला तथा स्वास्थ्य शिक्षा और खेलकूद के लिए ५% समय घटा दिया गया है।

कक्षा ६ से १० तक— यहाँ समय का प्रतिशत न देकर यह सुझाया गया है कि प्रति सप्ताह में कम से कम ४८ पीरियड हों जिनमें प्रत्येक ३० से ४० मिनट तक की अवधि के हों।

कक्षा ६ से ८ तक समय का वितरण

प्रथम भाषा—८, द्वितीय भाषा—५, गणित—७, विज्ञान (जीव और भौतिक)—७, सामान्य विज्ञान (इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र और अर्थशास्त्र)—६, कलाएँ—४, कार्य अनुभव—५, शारीरिक स्वास्थ्य शिक्षा और खेलकूद—६।

कक्षा ९ और १० (उच्च माध्यमिक स्तर)

प्रथम भाषा–६, द्वितीय भाषा–५, तृतीय भाषा–७, गणित–७, विज्ञान–७, सामाजिक विज्ञान–७, कला–३, कार्य-अनुभव–५, शारीरिक और स्वास्थ्य शिक्षा एवं खेलकूद–६।

ऊपर के इस वितरण को देखने से यह स्पष्ट होता है कि पहली कक्षाओं की अपेक्षा कार्य-अनुभव और कला के लिए एवं शारीरिक शिक्षा के लिए एक तिहाई से कुछ कम ही समय लिया गया है। पहली कक्षाओं की अपेक्षा यह कम है। यह इसलिए किया गया है कि विज्ञान, समाज विज्ञान, और गणित के लिए लगभग ५०%समय दे दिया गया है। केवल कार्य अनुभव के लिए तो १०%से भी कम समय दिया गया है। बुनियादी शिक्षा में गांधीजी ने शिल्प के वैज्ञानिक शिक्षण के लिए लगभग ५०% समय रखा था और जब कुछ कारणों से किन्हीं राज्यों में यह समय कम किया गया तो भी शिल्प के लिए लगभग १२ पीरिएड प्रति सप्ताह यानी २५% से कम समय नहीं दिया गया। कारण केवल यह था कि इस से कम समय में किसी भी हाथ के उत्पादक काम का वैज्ञानिक शिक्षण सम्भव नहीं है। उत्पादक काम के साथ खिलवाड़ करने से तो काम न करना अच्छा है।

अतः मुझे यह कहने में संकोच नहीं है कि १० वर्ष के पाठ्यक्रम में जो रूपरेखा प्रस्तुत की गई है, उसमें कार्य अनुभव के महत्व का स्पष्टतः अवमूल्यन हुआ है। जिस कार्य-अनुभव को इस नई प्रणाली की दृढ़ रीढ़ कहा गया है उसके लिए कक्षा ६ से कक्षा १० तक की अवधि में, जब बालक में हुनर सीखने की सर्वाधिक क्षमता होती है, और स्थायित्व की प्रवृत्ति दृढ़ होती है, तो १० प्रतिशत से भी कम समय देना उत्पादक काम के साथ खिलवाड़ करना है। (शायद यही इस नए पाठ्यक्रम के साथ टेम्पर करना है, जिसकी आशंका केन्द्रीय मंत्री ने व्यक्त की है)। डा. जाकिर हुसैन ने जब देखा कि कुछ कारणों से भारत सरकार ६ से १४ वर्ष तक की प्रारम्भिक शिक्षा को, संविधान के निर्देश के बावजूद, अनिवार्य नहीं बना पा रही है तो उन्होंने कहा था कि 'अगर सरकार

के पास ५ वर्ष तक शिक्षा को ही अनिवार्य बनाने का साधन है, ८ वर्ष तक का नहीं, तो मैं चाहूँगा कि यह शिक्षा कक्षा ४ से ८ तक की हो, क्योंकि इस अवस्था में सीखा हुआ ज्ञान और हुनर दोनों ही अधिक स्थाई होता है। जाकिर साहब शिक्षाविद थे— शिक्षाशास्त्री थे— और उनके स्वर में मनोविज्ञान का बल था। नहीं मालूम पड़ता कि १० वर्ष की शिक्षा के लिए इस पाठ्यक्रम को बनाने वालों ने किस व्यावसायिक मनोविज्ञान और अनुभव के आधार पर पहली पाँच कक्षाओं में कक्षा १ और २ में २५%, कक्षा ३ से ५ तक २०% और कक्षा ६ से १० तक अधिक समय को घटाकर १०% कर दिया है। पहली कक्षाओं में २५% समय देना ठीक है, क्योंकि कार्य के प्रति रुचि का सृजन इसी अवस्था में होता है, परन्तु ज्यों ज्यों छात्र की अवस्था बढ़ती जाती है उसे उस कार्य को अधिक वैज्ञानिक ढंग से करना जानना चाहिए और अधिक सतत अभ्यास भी करना चाहिए। कार्य जीवन पद्धति तभी बनती है, जब उसे पूरी गंभीरता के साथ किया जाए और उत्पादक काम के लिए वैज्ञानिकता और संजीदगी की एक मात्र कसौटी उत्पादकता ही है।

अभी हाल में भुवनेश्वर (उड़ीसा) में बोर्ड आफ सेक्रेटरीज की बैठक इस नई शिक्षा योजना पर विचार करने के लिए हुई थी। बैठक में साफ-साफ कहा गया है कि जो कार्य-अनुभव इस नए पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग होगा वह उत्पादक काम होगा। जाहिर है कि किसी भी उत्पादक काम का वैज्ञानिक शिक्षण और अभ्यास इतने कम समय में— जितना कम समय पाठ्यक्रम में ६ से १० तक के लिए कार्य-अनुभव को दिया गया है—नहीं हो सकता है। यह भी समझ लेना चाहिए कि यदि इस अवधि में उत्पादक काम के लिए रुचि उत्पन्न नहीं हुई और उसका पर्याप्त अभ्यास नहीं हुआ तो + २ के स्तर पर माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण विडंबना होगा। विडम्बना ही नहीं असम्भव होगा।

१० वर्ष के इस पाठ्यक्रम को देखने से एक और बात जो बहुत स्पष्ट होकर उभर आती है, वह है विज्ञान के शिक्षण पर अत्यधिक बल।

यह सही है कि आज के विज्ञान और टेकनालाजी के युग में कोईभी हाथ का काम तब तक उत्पादक नही हो सकता जब तक उसे विज्ञान और टेक्नालाजी का सहारा न मिले। परन्तु किसी भी हाथ के काम को वैज्ञानिक ढग से आज की टेक्नालाजी के सूत्रो के आधार पर करने की क्षमता के विकास मे और परिशुद्ध विज्ञान (प्यूर साइन्स) के सूत्रो के रटने और विज्ञान के शास्त्रीय ज्ञान की प्राप्ति में अन्तर है। अभी कुछ ही दिन पहले की बी बी सी (इगलैण्ड) के एक ब्राडकास्ट में किसी विद्वान् वक्ता ने कहा था— "इगलैण्ड का दुर्भाग्य यह रहा है कि जहाँ हमने विज्ञान के शिक्षण पर बल दिया है वहाँ इजीनियरिंग और इजीनियर की अवहेलना की है। वास्तव मे आज विज्ञान की जो और उपलब्धियां हैं, चन्द्रमा पर पहुँचने का काम हो, अथवा अणु बम विस्फोट की कला हो, वह टेक्नालोजी और इजीनिरिंग की अधिक देन है, परिशुद्ध विज्ञान की बहुत कम। एक में कार्यकी प्रमुखता है और उसकी टेकनालाजी उस काम को अधिक उत्पादक बनाने में सहायक है। और दूसरे में सामान्य विज्ञान अथवा सामाजिक विज्ञान का अध्ययन कोरा किताबी ज्ञान की श्रेणी में जाता है, जिसके विरुद्ध बुनियादी शिक्षा एक विद्रोह थी और जिस के खिलाफ ही यह १०+२+३ की शिक्षा प्रणाली भी एक प्रयास है। इस पाठ्यक्रम में हुआ यह है कि कार्य अनुभव अथवा हाथ के काम का उत्पादक पहलू शास्त्रीय विज्ञान के समुद्र में डूब गया है। आज उत्तर प्रदेश में (और शायद यही दूसरे प्रदेशो में भी होगा) तीन चार-हजार विज्ञान के शिक्षक तैयार करने की योजना बनाई जा रही है। तीन चार हजार वैज्ञानिक टेक्निकल शिल्प-शिक्षक तैयार करने की नही। परिणाम यही होगा कि १० वर्ष की यह नई प्रणाली भी किताबी शिक्षा बनकर रह जाएगी और+२ के स्तर की शिक्षा का सही माने में व्यवसायीकरण नही हो सकेगा।"

माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण

१०+२+३ प्रणाली का सर्वाधिक महत्व का सबसे क्रान्तिकारी स्तर+२ का ही स्तर है क्योंकि इसी स्तर पर माध्यमिक शिक्षा का

व्यवसायीकरण होगा,जो एक नया कदम होगा। १०वर्ष की समान सामान्य शिक्षा के बाद दो वर्ष तक की एक व्यवसाय की शिक्षा भी अनिवार्यत सबके लिए समान होती तो हम निश्चय ही इस कदम को क्रान्तिकारी कहते और इससे उस लक्ष्य की भी पूर्ति होती जिसे सामने रखकर माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरणकी योजना बनाई गई थी, यानी सबको अपने पैरो पर खडे होने के लिए एक हुनर दे देना और आँख बन्द कर विश्व-विद्यालयो की ओर भागने की भीड को रोकना। लेकिन केन्द्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद द्वारा प्रस्तुत + २ के ड्राफ्ट पाठ्यक्रम को देखने से यह सम्भव नही मालूम होता। यह सम्भव तभी होता जब +२ की व्यवसाय पूरक शिक्षा १०वर्ष की कार्य अनुभव मूलक शिक्षा की अन्तिम परिणित के रूप में आती— उस रूप में आती जिसे हम अंग्रजी में अन्तिम प्राकृतिक पुष्पीकरण (नेचरल फ्लावरिंग) कहते है। परन्तु यह हुआ नही है। इस ड्राफ्ट पाठ्यक्रम के प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार है — (अब ड्राफ्ट बोर्ड परिवर्तन के साथ स्वीकृत हो चुका है मात्र जिन तत्व को सभी नीचे की गई है उसमे कोई परिवर्तन नही हुआ है।)

१ २ +१ के उच्चतर माध्यमिक के स्तर पर विशेषीकरण प्रारम्भ हो जाएगा।

२ इस स्तर पर दो धाराएँ होगी एक एकादमिक और दूसरी व्यावसायिक जिसमें नाना प्रकार के व्यवसायो का आयोजन होगा।

३ यह छात्रो और अभिभावको दोनो को समझ लेना चाहिए कि व्यावसायिक धारा किसी भी प्रकार एकादमिक धारा से हीन नही होगी। व्यावसायिक धारा सामान्यत टर्मिनल होगी। (१ ३)

४ शास्त्रीय धारा भी टर्मिनल होगी परन्तु वह उच्च शिक्षा के लिये 'फीडर' भी होगी। (१+३)

५ इन दोनों धाराओ का पैटर्न और समय का वितरण निम्न प्रकार होगा —

(क) भाषा २५ प्रतिशत समय सभी धाराओ के लिए सामान्य अध्ययन
(सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक आदि)

(शेष पृष्ठ ९५ पर)

सेवाग्राम आश्रम के अंचलसे

सितम्बर ७६

यद्यपि इस माहमें वर्षा कम हुई, फिर भी खेती की फसले अभी अच्छी है, ज्वार, बाजरे के खेत लहलहाते दिखाई देते हैं। कपास की फसल भी अच्छी है। इस वर्ष वर्षा कम होने के कारण धान की फसल समाधानकारक नही है। सीड प्रोग्राम की फसलें भी अच्छी हैं।

आश्रम की प्रात और सायं प्रार्थना की औसत हाजरी क्रमश अब १३ और २० रही। सुबह की प्रार्थना में बापू का अनासक्ति योग-पाठ तथा साय प्रार्थना में अभग व्रत का सार्थ पाठ और रामायण पाठ नित्य होता रहा।

स्मारक कुटिया की सफाई तथा लिपाई प्रतिदिन होती रही। फीके पड जाने के कारण आश्रम के मार्ग-दर्शक फलकोंका पुनर्लेखन किया गया।

आश्रमवासियो में से श्रीमती निर्मला गांधी स्वास्थ्य सुधार के लिए उरली कांचन निसर्गोपचार केन्द्र में उपचार ले रही हैं। सेवाग्राम मेडिकल कालेज के डाक्टरो द्वारा श्री बलवत सिंहजी का उपचार जारी है और उनकी प्रकृति मे सुधार हो रहा है।

इस माह में कुल १७२३ दर्शनार्थी आश्रम-दर्शन के लिए आए। विशेष मेहमानो में डेप्यु अ य जी महाराष्ट्र तथा कॅथॉलिक चर्च दुर्ग, के श्री सादीक अली सचालक उल्लेखनीय थे। तथा अन्य देशो के कुल ७ भाई बहनों ने आश्रम जीवन का अनुभव लिया।

प्रतिदिन प्रात प्रार्थना के पश्चात् योगासन वर्ग का सगठन बापू कुटी के उत्तरी बरामदे में किया जाता है, वह नियमित चला। गोंदा के भाई श्री मोटे जी द्वारा आश्रम में 'गीताई सगीत' का सुश्राव्य और सुबोध कार्यक्रम हुआ। ११ सितम्बर को भू-जयंती के उपलक्ष्य में गो-सम्मेलन तथा गो-पालक मिलन का एक सुन्दर कार्यक्रम हुआ। सेवाग्राम के १६ गो-पालक अपनी गाएँ सजाधजाकर लाए और इस प्रकार

उन्होंने कार्यक्रम में अपना योगदान दिया। वर्धा के श्री लक्ष्मणसिंहजी यादव इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे। कार्यक्रम आकर्षक तथा बोधप्रद रहा।

प्रति रविवार को सामुदायिक सफाई का कार्यक्रम नियमित रूपसे होता रहा। इस माहमें गोशाला की जमीन समतल करने का कार्य उठाया गया था। स्व धम्मानदजी कोसम्बीजी की जन्म शताब्दी कार्यक्रम के उपलक्ष्य में ग्रामवासियों के साथ बैठकर योजना भी बनाई गई।

आश्रम प्रतिष्ठान परिसर के मकान काफी पुराने होने के कारण अधिकाश की दुरुस्ती की गई। सडास की सुविधा पानीकी सुविधा का ध्यान रखते हुए बिजली खर्च पर नियंत्रण का भरसक प्रयास किया गया।

अनेक सस्थाओं के प्रतिनिधियो ने मगन सग्रहालय म देवेन्द्र भाई के नेतृत्व में २-१०-७६ से ११-१०-७६ तक गांधी जयती के कार्यक्रम चलाए जाने की एक योजना बनाई। इसके अतर्गत दिनांक ३-१०-७६ को भक्ति सगीत का एक कार्यक्रम किया गया।

अक्टूबर १९७६

चर्खा जयन्ती उत्सव

२ अक्टूबर को पूज्य महात्मा गांधी जी के जन्म दिवस, चर्खा जयती के उपलक्ष्यमें, वर्धा तथा सेवाग्राम की भिन्न भिन्न सस्थाओंमें भिन्न भिन्न विधायक कार्यक्रम मनाए गए। सेवाग्राम आश्रम में प्रात ६ बजे तथा साय ६ बजे सर्व धर्म प्रार्थनाओं का आयोजन किया गया। सुबह ६ बजे से साय ६ बजे तक अखड सूत्रयज्ञ चला। जिसमें दो किसान चर्खे और एक अबर चर्खा सतत १२ घटे चलते रहे। १ किसान चर्खा महिला मडल द्वारा भी चलाया गया, साय ५-३० से ६ बजे तक सामूहिक कताई तथा गांधी उक्ति वाचनका कार्यक्रम रहा। रात में ८ से ९ बजे तक बापू कुटी में सर्व भावीय सगीतका कार्यक्रम

रहा। २ अक्टूबर से ११ अक्टूबर तक वर्धा जयती के जो भिन्न-भिन्न कार्यक्रम चले उनमे तीन अक्टूबर के दिन वर्धा सेवाग्राम की सस्थाओका सर्वभाषीय भक्ति सगीत का कार्यक्रम अपराह्न ४ से ६ बजे तक आश्रम प्रर्थना भूमिपर सपन्न हुआ। कुल १२५ लोग उपस्थित थे। सेवाग्राम भजन मडली, सेवाग्राम महिला मडल, सेवाग्राम बालवाडी कस्तूरबा विद्या मदिर, सेवाग्राम, खादी ग्रामोद्योग विद्यालय वर्धा, गाधी निधि उप कार्यालय वर्धा, गाँधी लेप्रसी फाउडेशन वर्धा इन सस्थाओके प्रतिनिधियो ने इस कार्यक्रम मे सक्रिय भाग लिया।

धम्मानद कोसबी जन्म शताब्दि उत्सव

दिनांक ६-१०-७६ को सेवाग्राम आश्रम और बौद्ध महासभा सेवाग्राम द्वारा धम्मानद कोसबी जन्म शताब्दि महोत्सव सपन्न हुआ। सेवाग्राम बुद्ध मदिर से प्रार्थना-यात्रा प्रारम्भ हुई। आश्रम के आखरी निवासमें धम्मानदजी के प्रयाण-स्थान पर पुष्पाजलि अर्पित की गई। बापू कुटी प्रागणमें बोधि वृक्ष के नीचे श्री अण्णा साहेब सहस्रबुद्धेजी की अध्यक्षता में पवनार आश्रम के श्री रणजीत भाई का सुबोध भाषण हुआ। प्रथम आश्रमवासी श्री बलवत सिंहजी ने भी अपने सस्मरण सभा के सामने प्रगट किए। यहाँ से प्रार्थना-यात्रा समाधि स्थान पर गई। साय ६ बजे वहाँ सामुदायिक प्रार्थना हुई। प्रार्थना के पश्चात् नागपुर के अतिथि श्री निकमजी का भाषण हुआ। प्रसाद वितरण के बाद प्रार्थना यात्रा सेवाग्राम बुद्ध मदिर में विसर्जित हुई। रात के ८ बजे सेवाग्राम तथा वर्धा नागपुर से आए हुए मेहमानो के प्रसगोचित भाषण हुए।

श्री जयप्रकाशजी का जन्म दिवस

दिनाक १०-१०-७६ को तिथि के अनुसार श्री जयप्रकाशजी का जन्म दिवस है। इसके उपलक्ष्य में आश्रम में साय प्रार्थना के बाद श्री जयप्रकाशजी के दीर्घायुरारोग्य के लिए मौन चिंतन द्वारा प्रार्थना की गई।

११-१०-७६ को प्रात ७ बजे तुलसी पूजन से इस कार्यक्रम का आरम्भ हुआ। माता कस्तूरबा तुलसी वृन्दावन के तुलसी पडकी पूजा महिला मडल द्वारा की गई और समयोचित भक्ति गीत गाया गया। इसके पश्चात गीताई के १२ वें तथा १५ वें अध्याय का पठन किया गया। इसके बाद कार्यकर्ता परिवाराने गो माताका पूजन किय और गोग्रास खिलाया। प्रसाद वि रण के पश्चात् कार्यक्रम समाप्त हुआ।

इस माहमें आश्रम दर्शन क लिए पजाब क मुख्य मत्री श्री बेअतसिंग दिनाक १७-१०-७६ को पधार। श्री पी क सन, मवनक कलकत्ता गाधी आश्रम दिनाक १६-१०-७६ को पधार।

इस माह में २५-१०-७६ तक भारतीय १६३१ और विदशी २ कुल १६३३ दर्शनार्थियो की उपस्थिति रही।

खेती के भाई बहन और मजदूर लोगो की सामूहिक प्रार्थना का कार्यक्रम व्यवस्थित चल रहा है प्रारम्भ में १० मिनिट क लिए इनका जीवन शिक्षण वर्ग भी लिया जाता हैं।

■

(पृष्ठ ९१ का शेषांश)

(ख) विज्ञान सामाजिक विज्ञान,
ह्यूमेनिटीज जिनमें साहित्य भी शामिल है —
७५ प्रतिशत एकादमिक धारा के लिए।

(ग) बुनियादी विज्ञान। सम्बन्धित व्यवसाय का सामाजिक आर्थिक पहलू
—व्यावसायिक धारा का २५% समय।

(घ) व्यावसायिक अध्ययन और प्रशिक्षण अप्रन्टिसशिप मिलाकर
व्यावसायिक धारा का ५० प्रतिशत

(क्रमश)

नयी तालीम अक्टूबर-नवम्बर '७६
रजि० सं० WDA/1 लायसेंस नं० ५

मुद्रक [illegible] राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा

नयी तालीम

नई तालीम और लोक-शिक्षण

सब धर्मों का सार

"सह वीर्यं करवावहै"

अनौपचारिक–शिक्षा

"करुणा परमोधर्मः"

राजकीय पक्ष और शैक्षिक-कार्यक्रम

अखिल भारत नयी तालीम समिति

सेवाग्राम

वर्ष : २५] फरवरी–मार्च, १९७७ [अंक : ४

प्रतीक थे। ३ फरवरी की शाम को हमें राष्ट्रपति भवन में उनसे देश की परिस्थिति के बारे में बातचीत करने का अवसर मिला था। हमें इस बात का स्वप्न में भी अन्दाज नही हुआ कि यह आखिरी मुलाकात होगी। हमने पाया कि उनके विचार बहुत तटस्थ व संतुलित थे। वे चाहते थे कि लोकसभा के चुनाव बहुत शान्त व सद्भावना के वातावरण में सम्पन्न हो।

अत सभी राजनीतिक पक्षो का कर्तव्य हो जाता है कि मार्च में होने वाले चुनावो की अवधि में आचार-सहिता का ईमानदारी से पालन किया जाए। सत्तारूढ दल या विरोधी पक्ष कोई ऐसा कार्य न करे जो अनुचित और अशोभनीय हो। इस समय भारत दुनिया का सबसे विशाल जनतंत्र है। आगामी चुनाव में हमें यह भी साबित करना है कि हमारे लोकतंत्र का आधार मजबूत और सुस्थिर है।

यह स्पष्ट है कि लोकसभा का यह चुनाव स्वतंत्र भारत के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण है। इसका परिणाम राष्ट्र के भविष्य को निश्चित करेगा। इसलिए प्रत्येक नागरिक का यह फर्ज हो जाता है है कि वह बिना किसी भय या प्रलोभन के सभी पहलुओ का गम्भीरता से विचार कर अपना मत अवश्य दे। आम जनता के विवेक और समझदारी में हमारी अटल श्रद्धा है।

स्वर्गीय वंशीधरजी श्रीवास्तव

पाठको को यह जानकर बहुत दुख होगा कि जनवरी मास में श्री वशीधरजी श्रीवास्तव का हृदय-गति के अचानक रुक जाने से इलाहबाद में स्वर्गवास हो गया। वे नई तालीम के बहुत वर्षों तक आधार-स्तम्भ रहे और उन्होने विभिन्न प्रदेशो में बुनियादी शिक्षा को आगे बढाने में अथक प्रयत्न किया। श्री वशीधरजी अखिल भारत नई तालीम समिति के सदस्य रहे और 'नई तालीम' पत्रिका के सम्पादक मडल के सदस्य भी। आचार्य कुल के तो वे प्रारम्भ से ही सयोजक थे और देश के विभिन्न भागोंमें उसे सगठित करने में उन्होंने भरसक प्रयत्न किए। नई तालीम सम्मेलन के सेवापुरी अधिवेशन में उन्होने सक्रिय हिस्सा

लिया और १०+२+३ की नई प्रणाली के सबंध में उन्होंने अपने अध्ययनपूर्ण विचार प्रगट भी किए। अनौपचारिक शिक्षा के बारे में भी अपने देहावसान के कुछ दिन पहले ही उन्होंने मेरे पास एक लेख भेजा था जो इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित किया जा रहा है।

श्री वंशीधरजी कई वर्षों से श्वास रोग से पीड़ित थे और उसके कारण काफी अस्वस्थ भी रहे। सेवापुरी सम्मेलन में उन्होंने मुझसे कई बार कहा कि शायद वे आखिरी बार सम्मेलन मे अपने विचार व्यक्त कर सकेंगे। लेकिन मुझे यह जरा भी कल्पना न थी कि वे इतने जल्द हमसे सदा के लिए विदा ले लेंगे। अखिल भारत नई तालीम समिति की ओर से हम श्री वंशीधरजी के परिवार के सदस्यों के प्रति अपनी हार्दिक संवेदना प्रगट करते हैं। श्री वंशीधरजी की शिक्षा-सुधार संबंधी चिन्ता व तड़पन हमें हमेशा याद रहेगा। वे वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से बहुत ही असन्तुष्ट थे और उन्हें दिन-रात यही फिक्र थी कि देश के विद्यार्थियों का भविष्य किस प्रकार सुधारा जा सकेगा। 'नई तालीम' में हम उनके विचार नियमित प्रकाशित करते रहे हैं। आशा है पाठकगण उनके लेखों का सदुपयोग करते रहेंगे।

रचनात्मक कार्यकर्ता और राजनीति :

हम इसी अंक में 'नई तालीम और लोकशिक्षा' शीर्षक लेख प्रकाशित कर रहे हैं जिसमे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के उन विचारों का समावेश किया गया है जो बापू ने एक रचनात्मक कार्यकर्ताओं की बैठक में दिसम्बर १९४७ में व्यक्त किए थे। उस समय का चिन्तन आज भी रचनात्मक और विशेषकर नई तालीम के कार्यकर्ताओं के लिए चिन्तन करने योग्य है।

ऋषि विनोबा ने भी हमें कई बार समझाया है कि रचनात्मक कार्य को सत्ता और दलगत राजनीति से अलग रखना चाहिए। हाँ, सामान्य स्थिति में हम मतदाता-शिक्षण में भाग ले सकते हैं और सभी नागरिकों को समझा सकते हैं कि भारतीय संविधान के अन्तर्गत उनके अधिकार और कर्तव्य क्या है। हम मतदाताओं को विभिन्न राजनैतिक

अनुक्रम

हमारा दृष्टिकोण

नई तालीम और लोक-शिक्षण	१७५	महात्मा गाधी
सब धर्मों का सार	१७९	ऋषि विनोबा
"सह वीर्यं करवावहै"	१८१	श्रीमन्नारायण
अनौपचारिक–शिक्षा	१८८	स्व वंशीधर श्रीवास्तव
"करुणा परमोधर्मं"	१९५	मदालसा नारायण
राजकीय पक्ष और शैक्षिक कार्यक्रम	१९८	श्री वजुभाई पटेल
हम अपराधी क्यों बनते हैं ?	२०२	सरला देवी
सेवाग्राम आश्रम वृत्त	२०५	

फरवरी–मार्च '७७

* 'नई तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नई तालीम' का वार्षिक शुल्क बारह रुपए है और एक अक का मूल्य २ रु है।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी सख्या लिखना न भूलें।
* 'नई तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नई तालीम समिति, सेवाग्रामके लिए प्रकाशित और राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

हमारा दृष्टिकोण

राष्ट्रपति अहमद की याद में

वर्ष : २५
अंक : ४

मलेशिया की राजकीय यात्रा से वापिस आकर १० फरवरी को राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद ने लोकसभा के आगामी चुनावों के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किए और दूसरे दिन ही, शुक्रवार को सुबह गम्भीर हृदय रोग के कारण उनका देहावसान हो गया। सारे देश में अचानक गहरे शोक का वातावरण छा गया। संसार के लगभग सभी राष्ट्रों की ओर से भी संवेदना के सन्देश आने लगे। तीसरे दिन नई दिल्ली की जामा मस्जिद में जहाँ स्वर्गीय राष्ट्रपतिजी नियमित रूप से नमाज के लिए जाया करते थे उनकी अन्त्येष्टि की गई। अब तो उनका स्मरण मात्र ही शेष रह गया है।

राष्ट्रपति अहमद से हमारा बहुत वर्षों से घनिष्ट परिचय रहा। ऊँचे से ऊँचे पदों पर रहते हुए भी उनकी शराफत व सौजन्य ज्यों का त्यों बना रहा। वे बड़े दिल और दिमाग के इन्सान थे। उनकी राष्ट्रीय भावना हमेशा उच्च कोटि की रही। वे पक्के मुसलमान थे, लेकिन सभी मजहबों का समान आदर करते थे। साम्प्रदायिकता से वे बिलकुल अछूते रहे। सर्व धर्म-समभाव आदर्श के वे एक उज्ज्वल

लिया और १०+२+३ की नई प्रणाली के संबंध में उन्होंने अपने अध्ययनपूर्ण विचार प्रगट भी किए। अनौपचारिक शिक्षा के बारे में भी अपने देहावसान के कुछ दिन पहले ही उन्होंने मेरे पास एक लेख भेजा था जो इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित किया जा रहा है।

श्री वंशीधरजी कई वर्षों से श्वास रोग से पीड़ित थे और उसके कारण काफी अस्वस्थ भी रहे। सेवापुरी सम्मेलन में उन्होंने मुझसे कई बार कहा कि शायद वे आखिरी बार सम्मेलन में अपने विचार व्यक्त कर सकेंगे। लेकिन मुझे यह जरा भी कल्पना न थी कि वे इतने जल्द हमसे सदा के लिए विदा ले लेंगे। अखिल भारत नई तालीम समिति की ओर से हम श्री वंशीधरजी के परिवार के सदस्यों के प्रति अपनी हार्दिक संवेदना प्रगट करते हैं। श्री वंशीधरजी का शिक्षा-सुधार संबंधी चिन्ता व तड़पन हम हमेशा याद रहेगा। वे वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से बहुत ही असन्तुष्ट थे और उन्हें दिन-रात यही फिक्र थी कि देश के विद्यार्थियों का भविष्य किस प्रकार सुधारा जा सकेगा। 'नई तालीम' में हम उनके विचार नियमित प्रकाशित करते रहे हैं। आशा है पाठकगण उनके लेखों का सदुपयोग करते रहेंगे।

रचनात्मक कार्यकर्ता और राजनीति :

हम इसी अंक में 'नई तालीम और लोकशिक्षा' शीर्षक लेख प्रकाशित कर रहे हैं जिसमें राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के उन विचारों का समावेश किया गया है जो बापू ने एक रचनात्मक कार्यकर्ताओं की बैठक में दिसम्बर १९४७ में व्यक्त किए थे। उस समय का चिन्तन आज भी रचनात्मक और विशेषकर नई तालीम के कार्यकर्ताओं के लिए चिन्तन करने योग्य है।

ऋषि विनोबा ने भी हमें कई बार समझाया है कि रचनात्मक कार्य को सत्ता और दलगत राजनीति से अलग रखना चाहिए। हाँ, सामान्य स्थिति में हम मतदाता-शिक्षण में भाग ले सकते हैं और सभी नागरिकों को समझा सकते हैं कि भारतीय संविधान के अन्तर्गत उनके अधिकार और कर्तव्य क्या हैं। हम मतदाताओं को विभिन्न राजनैतिक

दलो के उद्देश्यो व कार्यक्रमो के बारे में भी तुलनात्मक जानकारी दे सकते है। किन्तु पूज्य विनोबाजी ने हमारे लिए एक 'लक्ष्मण रेखा' खीच दी है और वह यह कि मतदाता शिक्षण भी चुनावो के समय न दिया जाए ताकि रचनात्मक कार्यकर्ता राजनीति के दलदल में न फँस जाएँ और चुनावो की धूल व शोरगुल में लिप्त न हो जाएँ। चुनावो के पहले और बाद म भी यह व्यापक लोक शिक्षण तो चलता ही रह सकता है।

हम आशा करत हैं कि महात्मा गाधी और ऋषि विनोबा के सही मार्गदर्शन का ध्यान सभी रचनात्मक कार्यकर्ता सावधानी से रखेंगे और उसी क अनुसार अपना व्यवहार व कार्यक्रम ढालने का पूरा प्रयत्न करेंगे।

भारत अपने आत्मबल से सब को जीत सकता है। भारत यदि किसी को कोई पैगाम दे सकता है तो वह प्रम और सत्य का ही पैगाम होगा। यदि हम सच्ची शाति चाहते है तो हम अपने सत्प्रयत्नो से सम्पूर्ण संसार म प्रम और शाति का साम्राज्य स्थापित करना होगा।

मनुष्य के जीवनमें प्रम रस भरा रहेगा तो सृष्टि के समान मनुष्य भी हरा भरा रहेगा।

जमहूरियत के इस जमाने में गरीब से गरीब की जागृति के इस युग में यही सब से अच्छा और उपयोगी सदेश है।

—बापू

नई तालीम और लोक-शिक्षण

महात्मा गांधी

(अपने परिनिर्वाण के कुछ सप्ताह पहले ही दिसम्बर (पूर्वार्ध), १९४७ में एक दिन राष्ट्रपिता महात्मा गांधी से हिंदुस्तानी तालीमी संघ व रचनात्मक कार्यकर्ता समिति के कुछ सदस्य नई दिल्ली में मिले। इनमें डा. जाकिर हुसेन, आचार्य कृपलानी, श्री शंकरराव देव व श्री दिवाकरजी भी शामिल थे। कई घण्टे तक 'रचनात्मक कार्यकर्ता और राजनीति' विषय पर चर्चा होती रही। गांधीजी ने अपने विचार स्पष्ट करते हुए कहा कि रचनात्मक कार्यकर्ताओं को राजनीति पर अपना गहरा प्रभाव डालना चाहिए, किन्तु राजनीति में उलझना नहीं चाहिए। उन्हें तो निरन्तर लोक-शिक्षण के काम में लगे रहना है। इस लोक शिक्षण के काम को व्यापक ढंग से संचालित करना नई तालीम की जिम्मेवारी है। हम गांधीजी के शब्दों में ही इस चर्चा का सारांश इस लेख में प्रकाशित कर रहे हैं।)

जिस प्रकार एक फौज के लिए रक्त रंजित युद्ध में भाग लेने के पहले नियमित ड्रिल जरूरी है उसी प्रकार एक अहिंसक सेना के लिए रचनात्मक कार्यक्रम अत्यन्त आवश्यक है। भारत ने अहिंसक रचनात्मक कार्यक्रम द्वारा ही स्वराज्य प्राप्त किया है और उसे सुरक्षित रखने के लिए रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उतनी ही जरूरी हैं।

कुछ रचनात्मक कार्यकर्ताओं का खयाल है कि आजादी मिलने के बाद अब खादी, ग्रामोद्योग आदि को प्रोत्साहन देने के लिए उन्हें स्वयं राजनीति में प्रवेश करना चाहिए ताकि उनके अनुकूल शासन की व्यवस्था बनाई जा सके। लेकिन यह विचार भ्रम पर आधारित है। जैसे ही एक अहिंसक दल राज्य सत्ता प्राप्त करेगा उसमें विरोधाभास पैदा होगा और वह अन्त में अशुद्ध बन जाएगा। गांधी सेवा संघ के सदस्यों ने कुछ समय तक कोशिश की कि विधान सभाओं में जाकर राजनीति को शुद्ध करें और उसमें से हिंसा और भ्रष्टाचार को दूर करें। लेकिन उन्हें हार स्वीकार करनी पड़ी और आखिर संघ को विसर्जित किया गया। इसलिए

रचनात्मक कार्यकर्ताओं को पहले अपना ही घर व्यवस्थित करना चाहिए ताकि अपेक्षित गुणों का विकास हो सके। कार्यकर्ताओं को राज्य-सत्ता का मार्गदर्शन करना चाहिए, वे स्वयं उसमें उलझ न जाएँ।

यह सही है कि रचनात्मक कार्यकर्ता अब तक विभिन्न कार्यक्रमों को पढ़े-लिखों के दिमाग तक नहीं पहुँचा पाए हैं और जनता के हृदय तक उनका स्पर्श नहीं हुआ है। यह हमारी कमजोरी और दिवालियापन है। रचनात्मक कार्य का महत्व केवल आर्थिक नहीं है। वह एक जीवन-पद्धति है। रचनात्मक कार्य का उद्देश्य सिर्फ बेकारों को मजदूरी के रूप में आर्थिक सहायता पहुँचाना नहीं है; उसका मुख्य लक्ष्य है एक अहिंसक समाज की रचना। हम अब तक इस दिशा में सन्तोषजनक प्रगति नहीं कर सके हैं। इसलिए यह जरूरी है कि हमारे कार्यकर्ताओं का गुण-विकास हो ताकि वे रचनात्मक कार्य की अहिंसक भूमिका भलीभाँति समझ सकें। हमारी सफलता कार्यकर्ताओं के अन्तःकरण की शुद्धता पर आधारित होगी; अधीरता हमारे लिए घातक बनेगी।

अभी तक हमारे कार्यकर्ता अधिकतर शहरों से आए हैं। अब यह जरूरी है कि ये कार्यकर्ता सीधे गाँवों से आएँ ताकि वे ग्रामीण जनता के दिल तक पहुँच सकें। इस प्रक्रिया को शुरू करने के लिए यह जरूरी है कि विभिन्न रचनात्मक संस्थाएँ समग्र दृष्टि से कार्य करें। यदि ये संस्थाएँ मिलकर बिना किसी द्वैत भावना के काम करेंगी तो हम एक कदम आगे बढ़ेंगे। किन्तु यदि वे अपने आपसी व्यवहार में अहिंसा और सद्भावना का वातावरण खड़ा न कर सकें तो फिर उनका प्रभाव परिवेश में न फैल सकेगा। इस समय विभिन्न रचनात्मक संस्थाएँ अलग-अलग कार्य कर रही हैं। उदाहरण के लिए, चर्खा संघ और ग्रामोद्योग संघ के अलग-अलग भंडार और बिक्री केन्द्र हैं। ये दोनों संघ मिलकर एक ही भंडार और बि ी केन्द्र द्वारा अपना काम क्यों नहीं चलाते? इन कार्यकर्ताओं के बच्चों की तालीम की जिम्मेदारी हिंदुस्तानी तालीम संघ क्यों नहीं उठा लेता?,, यदि हम इन कार्योंमें

भी पारस्परिक सहयोग नहीं कर सकते तो इसका यही अर्थ है कि कार्य-कर्ताओं ने अब तक सत्य और अहिंसा का सच्चा अर्थ ही नहीं समझा है।

मैं इस लोक-शिक्षण के काम की जिम्मेवारी तालीमी संघ पर डालना चाहता हूँ। यह सभी कार्य प्रौढ़ शिक्षा का है। देश में इस समय भी साम्प्रदायिकता का वातावरण फैला हुआ है। हम जिन्दगी भर सर्व-धर्म समभाव की बात करते रहे हैं। इसलिए साम्प्रदायिक मनो-वृत्ति को बदलने का काम भी लोक-शिक्षण का है, और वह तालीमी संघ को ही करना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब कि संघ का प्रत्येक सदस्य स्वयं अपने हृदय को अत्यन्त शुद्ध बनाए। लोक शिक्षण का यह बुनियादी काम नई तालीम को ही करना है। मैं भी अपने आपको इसमें शामिल करता हूँ, क्योंकि बुनियादी शिक्षा के विचार को मैंने ही जन्म दिया है।

डा जाकिर हुसैन – "यदि सभी रचनात्मक संस्थाएँ मिलकर एक संघ बना लेंगी तो क्या वे सत्ता की राजनीति से अलग रह सकेंगी?"

गांधीजी – "मैं नहीं चाहता हूँ कि रचनात्मक संस्थाओं का संघ किसी भी प्रकार कांग्रेस या शासन का प्रतिद्वन्द्वी बने। यदि यह संघ सत्ता की राजनीति में प्रवेश करने की कोशिश करेगा तो वह बरबाद हो जाएगा। हम मतदाताओं का सही मार्गदर्शन तभी कर सकते हैं जब रचनात्मक कार्यकर्ता सत्ता से दूर रहकर शुद्ध और निःस्वार्थ सेवा में ही लगे रहें। जनता-जनार्दन के ऊपर यह नैतिक प्रभाव सत्तायुक्त शासन के प्रभाव से भी अधिक मूल्यवान होगा। ऐसा समय आ सकता है जब लोग ही स्वयं कहें कि हमारे सिवाय वे और किसीको सत्ता में नहीं रखना चाहते। उस समय इस प्रश्न पर विचार किया जा सकता है। लेकिन मैं शायद उस समय जीवित नहीं हूँगा। यदि ऐसा समय कभी आए तो रचनात्मक कार्यकर्ताओं में से ही कोई ऐसा व्यक्ति निकल आएगा जो शासन की बागडोर सम्भाल सके। उस समय तक भारत एक आदर्श राज्य बन जाएगा।"

डा जाकिर हुसैन – "इस आदर्श राज्य के सचालन के लिए क्या आदर्श कार्यकर्ताओ की आवश्यकता नही होगी ?"

गाधीजी – "हम अपनी पसन्द के व्यक्तियो को विधान सभाओ में भेज सकते है लेकिन हमें स्वय शासन में जाने की आवश्यकता नही है। इस समय सभी कांग्रेस जन सत्ता के पीछे दौड रहे है। हम भी इसी दौड में शामिल न हो जाएँ। हमें तो सत्ता की राजनीति और उसकी अशुद्धि से बिल्कुल दूर रहना है। रचनात्मक सस्थाओ का उद्देश्य राजनैतिक सत्ता को उत्पन्न करना है उस पर कब्जा नही करना है। यदि हम यह मान लें कि राजनैतिक सत्ता की उत्पत्ति के बाद उसे भोगने का हमारा भी हक है तो फिर हमारा पतन हो जाएगा। इस समय राजनीति भ्रष्ट हो गई है उसमें जो कोई प्रवेश करता है वह भ्रष्ट हो जाता है। इसलिए हमें तो उससे दूर ही रहना है। इससे हमारा प्रभाव जनता में बढेगा। हमारी जितनी आन्तरिक पवित्रता होगी उतना ही हमारा प्रभाव अनायास जनतापर बढता जाएगा।

"यदि आप मेरी बात को ठीकतौर से समझेंगे तो फिर आपमें चारो ओर फैले हुए भ्रष्टाचार को दूर करने की शक्ति पनपेगी। आपका काम कांग्रेस या सरकार में जाना नही है, आपका मुख्य कार्य तो आम जनता में है। आपको तो गांवो को फिर जीवित करना है ताकि वहाँ अधिक खुशहाली और लोक-शिक्षण हो और लोक-शक्ति मजबूत बने।

"यदि मतदाता आपके साथ है तो फिर शासन में जाने की चिन्ता नही होनी चाहिए। आपको तो जड पकड कर रखना है। इस दृष्टि से आत्म शुद्धि ही सच्ची परीक्षा है। मुट्ठीभर सच्ची भावना के रचनात्मक कार्य करने वाले व्यक्ति सारे वातावरण को बदल सकते है। यह कार्य है बहुत कठिन लेकिन उसकी सम्भावनाएँ सफलता से भरी है।

"अन्त में, मै यही कहूँगा कि अपनी सभी कमजोरियो को निकाल फकिए और राजनैतिक सत्ता को हथियाने का विचार ही दिमाग से निकाल दीजिए। तभी आप सत्ता का सही मार्गदर्शन कर सकेंगे। इसमें जनता का भी कल्याण निहित है। और कोई दूसरा मार्ग नही है।"

सब धर्मों का सार

ऋषि विनोबा

(य० एक विशेष एव दुखद सयोग हुआ कि ११ फरवरी को श्रद्धेय जमनालालजी बजाज की पुण्य तिथि के दिन ही राष्ट्रपति अहमद का अचानक देहावसान हो गया। समाचार सुनते ही ऋषि विनोबा ने कहा— कि आज विष्णुसहस्रनाम-सगीता के बाद हम स्वर्गीय राष्ट्रपतिजी की पावन-स्मृति में दो मिनिट का मौन रखेंगे। मौन के बाद पूज्य विनोबाजी ने जो विचार प्रगट किए वे पाठको की जानकारी के लिए यहाँ दिए जा रहे हैं।)

अभी हमने दो मिनिट मौन रखा वह राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद के आज सुबह ८–५२ पर परलोक जाने की स्मृति में रखा था। अचानक खबर आई कि वे दिवगत हो गए। वे बीमार थे यह तो मालूम था। पर बाद में अच्छे होने की खबर भी आई थी। एक न एक दिन जाना तो सभी को है।

उनका और बाबा का व्यक्तिगत परिचय था। असम में बाबा की डेढ साल पदयात्रा हुई। उसमें उनसे कई बार मिलने का प्रसग आया था। गरीबो को जमीन बाँटने का बाबा का जो काम है, उसमें वे बहुत दिलचस्पी लेते थे। उन्होंने कहा, "सब धर्मों का सार है, गरीबो को, दीनो को, दुखियो को मदद देना।" वे थे तो मुसलमान धर्म के, लेकिन सब धर्मों का यह सार उन्होंने बताया। यह काम बाबा से हो रहा है इससे उनको बहुत खुशी होती थी। वे कहते थे आपको सब धर्मों का आशीर्वाद प्राप्त है। दीनो को, दुखियो को, गरीबो को मदद देना यही एकमात्र सब धर्मों का सार है। कुरान शरीफ में भी ऐसा ही कहा है, अरे, सब धर्मवालो तुम एक हो, झगडो मत और —

फस्ताबिकुल् खैरात्

खैरात में एक दूसरे से होड करो। गरीबों को मदद देने में निमित्तमात्र बनो। सब धर्मों का यही सार है।

शंकराचार्य ने भी यही कहा है, 'देय दीनजनायच वित्तम्,' गरीबों को मदद देनी चाहिए।

फखरुद्दीन साहब का मेरा परिचय था। वे तो चले गए। बाबा को भी जाना है। उनकी जो समत्व बुद्धि थी वह अद्भुत थी। उन्होंने जो सब धर्मों का सार निकाला, गरीबों को मदद करना, इससे बेहतर सार हो नहीं सकता। तो उनका मेरा जो व्यक्तिगत परिचय था उसके आधार से उनके संबंध में मैंने ये बातें कहीं।

* * * *

आज जमनालालजी का पुण्य दिन है। उनको गए ३५ साल हुए। १९४२ में वे गए। उसी साल महादेवभाई गए। जमनालालजी ११ फरवरी को गए। महादेवभाई अगस्त में गए। दोनों का संबंध बापू के साथ जुडा हुआ था। जमनालालजी का जो संबंध बापू के साथ था वह बापू के पाँचवें पुत्र के नाते था और महादेवभाई का लेखक के नाते। एक बाजू महादेवभाई और दूसरी बाजू जमनालालजी। दोनों गांधीजी के साथ पूरी तरह से जुडे हुए थे। उन तीनों का स्मरण मुझे सतत होता है। मैं याद करता हूँ उनको जो गांधीजी के साथ जुडे हुए थे। बा (कस्तूरबा), महादेवभाई जमनालालजी और किशोरलालभाई इन चारों का स्मरण गांधीजी के स्मरण के साथ जुडा हुआ है। जब तक गांधीजी का नाम रहेगा, तब तक इन तीनों-चारों का नाम रहेगा।

इससे अधिक क्या कहना? यहाँ बैठी हैं माताजी (जानकी देवी)। वह भगवद् भक्ति में जमनालालजी से किसी तरह पिछडी हुई नहीं हैं। आपकी उम्र अभी ८४ साल की है। लेकिन उम्र के ८ वें वर्ष से ही वे रोज विष्णुसहस्रनाम पढती हैं।

यह जो भरत राम मंदिर है वह जमनालालजी का उत्तम स्मारक है। इससे अधिक आपका समय लेने की जरूरत नहीं। सबको प्रणाम!

जय जगत्

"सह वीर्यं करवावहै"

श्रीमन्नारायण

गाँधी परिवार में सह-भोजन के अवसर पर सामान्यत 'ओम् सह नाववतु' का मंत्र उच्चरित किया जाता है। दर असल उपनिषद का यह शान्ति मंत्र गुरु और शिष्य के सहजीवन का आदर्श है। उसी में 'सह वीर्यं करवावहै' का निर्देश दिया गया है— अर्थात् गुरु शिष्य दोनों एकसाथ पुरुषार्थ करें। मेरी दृष्टि से यही 'बुनियादी शिक्षा' का मूल मंत्र है।

गाँधीजी ने हमें बार-बार समझाया था कि सच्ची शिक्षा वही है जो बालकों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करे और विभिन्न विषयों का व्यावहारिक ज्ञान उत्पादक व समाजोपयोगी क्रियाकलापों द्वारा दिया जाए। उत्पादक-श्रम द्वारा तभी बौद्धिक विकास भी हो सकता है जब शिक्षक खेती व उद्योगशालाओं में विद्यार्थियों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करें और श्रम के साथ उनके सामने ज्ञान की गंगा भी बहाते रहें। उत्पादक कार्य करते समय यह पता ही न लगे कि कौन शिक्षक है और कौन विद्यार्थी। जब गुरु और शिष्य मिलकर श्रम करेंगे और पारस्परिक द्वेष-भाव लेशमात्र न होगा तभी विद्या तेजस्वी बनेगी। इसीलिए ऋषियों ने प्रार्थना की थी —

'सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनाऽवधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।'

* * * *

हाल ही में आचार्य काकासाहब कालेलकर ने हमें एक बड़ी करुणाजनक जानकारी दी। कई वर्ष पहले भारत शासन ने जापान सरकार से निवेदन किया था कि चुने हुए भारतीय विद्यार्थियों को जापानी कृषि शास्त्र का व्यावहारिक शिक्षण दिया जाए ताकि वे यह समझ सकें कि हिन्दुस्तान के खेतों में भी किस प्रकार की एकड़ उत्पादन तिगुना-चौगुना बढ़ाया जा सकता है। जापानी सरकार फौरन राजी हो गई और यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन द्वारा देशभर से

फर्स्ट क्लास फर्स्ट कृषि-स्नातक चुनकर जापान भेज दिए गए। जापानके कृषि-डायरेक्टर ने उनका स्वागत किया और अपने छात्रालय में उन्हें समुचित स्थान दिया। दूसरे दिन तड़के सुबह ही वे छात्रालय गए, भारतीय विद्यार्थियों को जगाया और उन्हें अपने साथ काम करने के लिए फार्म पर ले गए। उन्होंने तीन-चार घंटे कसकर काम किया और कराया। काम करते-करते कृषि-संबंधी मूल्यवान ज्ञान भी देते रहे। तीसरे पहर भी इसी तरह खेतों में काम चलता रहा।

यह सिलसिला चार-पाँच दिन तो चला। फिर एक दिन भारतीय विद्यार्थी डायरेक्टर से कहने लगे— 'साहब, हमारा ख्याल था कि हिन्दुस्तान के कृषि-महाविद्यालयों की तरह जापान में भी पाठ्य पुस्तकों का अध्ययन क्लासरूमों में कराया जाता होगा और बीच बीच में फार्म पर कुछ व्यावहारिक कार्य करना पड़ता होगा। लेकिन आप तो हमसे रोज मजदूरों की तरह ही काम कराते हैं। यही सिलसिला रहा तो हम सब बीमार पड़ जाएँगे।

"लेकिन मैं भी तो आपके साथ मेहनत करता हूँ और जानकारी भी देता रहता हूँ।" डायरेक्टर ने उत्तर दिया।

"साहब, हम अपने कृषि-महाविद्यालयों के सर्वप्रथम विद्यार्थी हैं। लेकिन इस तरह मजदूरी करने की हमें आदत नहीं है।"

"जापान में तो इसी प्रकार खेती की शिक्षा दी जाती है।" डायरेक्टर ने दोहराया।

"फिर क्या किया जाए?" विद्यार्थी पूछने लगे।

"मुझे भारत सरकार को लिखना होगा कि आपको वापिस बुला लिया जाए। अफसोस है कि मैं आपको कृषि की शिक्षा नहीं दे सकूँगा।" डायरेक्टर ने दृढ़ शब्दों में उत्तर दिया।

और कुछ दिन बाद ये चुने हुए भारतीय कृषि-स्नातक जापान से वापिस भेज दिए गए। हमारी शिक्षा-पद्धति के ऊपर इससे अधिक और कौनसा अविश्वास का प्रस्ताव (वोट आफ नो कान्फिडेन्स) हो सकता है?

कई बार ऋषि विनोबा ने भी कहा है कि हमारे कृषि-कालिजों में ऐसी शिक्षा दी जाती है जिसके कारण विद्यार्थी गरमी और सरदी सहन करने लायक नहीं रहते— फिर वे खेती कैसे करेंगे ? वे तो सिर्फ नौकरी ही ढूँढेंगे न ?

*　　　*　　　*　　　*

काफी साल पहले जब मैंने गांधी विचार धारा को फैलाने के लिए विश्व भ्रमण किया था तब जर्मनी जाने का मौका मिला। उस समय मैं बर्लिन के टेकनीक्ल इन्स्टीटयूट को भी देखने गया था। वहाँ के अध्यक्ष से मैंने पूछा — "आप अपनी इन्स्टीटयूट में 'प्रॅक्टिकल ट्रेनिंग' किस प्रकार देते हैं ? जर्मनी के इंजीनियर तो दुनिया भर में बहुत मशहूर हैं। इसका क्या रहस्य है ?"

'प्रॅक्टिकल ट्रेनिंग से आपका क्या मतलब है ?' अध्यक्ष ने पूछा।

'आप विद्यार्थियों को किस तरह की व्यावहारिक ट्रेनिंग देते हैं जिसकी वजह से वे इतने मेहनती व कार्य-कुशल इन्जीनियर बनते हैं ?' मैंने जानना चाहा।

'देखिए, हमारा बहुत कड़ा नियम है कि जिन छात्रों को अस्थाई प्रवेश दिया जाता है उनसे छः महीने तक हम मामूली मजदूर जैसी सख्त मेहनत करवाते हैं। सरदी, गरमी और बरसात में कठिन परिश्रम करते हुए जो विद्यार्थी बीमार नहीं पडते उन्हें ही हम स्थाई प्रवेश देते हैं। जो यह शारीरिक कष्ट सहन नहीं कर सकते उनका अस्थाई प्रवेश रद्द कर दिया जाता है। बस यही हमारी व्यावहारिक शिक्षा है।'

यह सुनकर मैं तो दंग रह गया। जर्मन इन्जीनियरों व टेकनीशियनों की कार्य-कुशलता व श्रम-निष्ठा का यही राज है। उस समय दूसरे महायुद्ध के बाद बर्लिन शहर का शायद ही कोई मकान साबुत बचा होगा। बमबारी की वजह से करीब सभी इमारतें टूट-फूट गई थीं। कुछ जर्मन नवयुवकों से मैंने पूछा — 'अब आप अपने शहर को फिर कैसे आबाद करेंगे ?' उन्होंने तुरन्त आत्म-विश्वास से भरे ऊँचे स्वर में कहा — "हमारे शरीर और दिल में ताकत है। हम अपने

देश का फिर निर्माण कर लेंगे। कोई चिन्ता की बात नहीं है! हमारे राष्ट्र को कोई नष्ट नहीं कर सकता!"

जर्मन नौजवानों का आत्मविश्वास और आशावाद देखकर हमें बहुत आश्चर्य हुआ। उनकी शिक्षा-पद्धति ही उनकी प्रगति का सच्चा रहस्य है।

* * * *

अपने विश्व भ्रमण के दरमियान मैं न्यूयार्क में आधुनिक शिक्षा के पितामह प्रोफेसर जोन डयूई से भी मिला था। जब मैंने उन्हें गाँधीजी की 'बेसिक एज्यूकेशन' नामक पुस्तक भेंट की तो उन्होंने फौरन पन्ने खोलकर उसका सारांश पढ लिया और मेरी ओर देखकर बोले — 'अब मेरी उम्र लगभग ६० वर्ष की है। इसलिए अफसोस है कि अब मैं इस योग्य नहीं हूँ कि गाँधीजी के बुनियादी तालीम के विचारों को कार्यान्वित कर सकूँ। लेकिन मैं देखता हूँ कि गाँधीजी की शिक्षा-पद्धति तो हमारी प्रणाली से कई कदम आगे है।'

"किस प्रकार?" मैंने पूछा।

'मैं तो अपनी 'प्रोजेक्ट मेथड' द्वारा विद्यार्थियों को कुछ व्यावहारिक ज्ञान देने का प्रयत्न करता रहा हूँ। किन्तु गाँधीजी तो उत्पादक-श्रम के जरिए जुदा-जुदा विषयों का ज्ञान भी देने की योजना बना रहे हैं। यह तो बड़ा क्रान्तिकारी विचार है। इसका पूरी तरह सफलतापूर्वक प्रयोग होना चाहिए।"

किन्तु हमारे देश के शिक्षा-शास्त्रियों को तो 'बेसिक शिक्षा' का नाम ही नहीं सुहाता! मानो उस लफ्ज से उन्हें कुछ एलर्जी हो गई है। 'बेसिक' की जगह वे 'वर्क-एक्सपीरियेन्स' शब्द पसन्द करते हैं। यह लफ्ज रूस से लिया गया है। कोठारी कमीशन ने इसका इस्तेमाल किया था। अब सुना है कि इस शब्द को रूस के शिक्षा शास्त्रियों ने ही त्याग दिया है। लेकिन हमारी सरकार व भारत के विशेषज्ञ भला उसे क्यों छोड़ेंगे? स्वराज्य मिले लगभग तीस वर्ष हो गए, लेकिन हमारी गुलामी मनोवृत्ति करीब वैसी ही बनी हुई है। अँग्रेज गए, लेकिन अंग्रेजियत तो पहले से भी कुछ अधिक बढ़ी है।

* * * *

हाल ही म कई विदेशी शिक्षा-शास्त्रियो व अर्थशास्त्र के विद्वानो ने गाँधीजी की 'नई तालीम' योजना की मुक्त कठ से, सराहना की है। स्वीडन के मशहूर विचारक डा गुन्नार मीरडाल ने अपने प्रख्यात ग्रन्थ "एशियन ड्रामा" में स्पष्ट राय जाहिर की है कि भारत जैसे विकासशील राष्ट्रो में 'बेसिक' शिक्षा द्वारा ही नई पीढी को उपयोगी तालीम दी जा सकती है जिससे उत्पादक-श्रम के जरिए वहाँ की सर्वतो-मुखी उन्नति हो सके। प्रो ईवन ईलिच तो ऐसी 'डी स्कूलिंग सोसाइटी' की कल्पना पेश कर रहे है जिसमें वर्तमान ढग के स्कूलो की जरूरत ही न रहे और खेतो व फैक्ट्रिया में काम करते हुए विद्यार्थियो को समाज उपयोगी शिक्षण प्राप्त होता रहे। यूनेस्को के अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा विकास कमीशन ने 'लर्निंग टु बी' नामक अपनी रिपोर्ट में इसी प्रकार की सिफारिश की है और कहा है कि शिक्षा, जीवन के नियाशीलनो द्वारा जीवन भर चलती रहनी चाहिए। इस कमीशन न प्राथमिक और माध्यमिक दस वर्ष की शिक्षा का नाम 'बेसिक' ही दिया है किन्तु भारत में हम इस शब्द से अभी झिझकते है। तनजानिया के राष्ट्रपति डा नैरेरे ने अपने देश में गाँधीजी के आदर्शों के अनुरूप ही शिक्षण-योजना चालू कर दी है और इस प्रयोग का प्रभाव अफ्रीका के दूसरे राष्ट्रो में भी फैल रहा है। इग्लैण्ड के प्रोफेसर कासिल ने 'एज्यूकेशन फॉर सेल्फ् हेल्प' नामक पुस्तक में वर्धा शिक्षण-योजना की जोरदार लफ्जो में तारीफ की है। उन्होने कहा है कि अब हमें खेती के शिक्षको के स्थान पर किसान शिक्षक ढूंढने चाहिए जिन्हें कृषि का प्रत्यक्ष अनुभव है और जो नौजवानो के साथ मिलकर 'सह-वीर्यम्' के लिए तैयार हैं। कुर्सी पर बैठकर भाषण देने वाले प्राध्यापको की अब जरूरत नही हैं, वे 'आउट आफ डेट' हो गए है।

* * * *

करीब दो साल पहले मैं केन्द्रीय गाँधी स्मारक निधि द्वारा आयोजित उत्तर भारत रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन में शामिल होने के लिए अल्मोडा जिले के कौसानी आश्रम की ओर जा रहा था। यही पूज्य बापूजी ने सन् १९२९ में कुछ दिन हिमालय के शान्त वातावरण

में रहकर 'अनासक्तियोग' की भूमिका लिखी थी। रास्ते में एक प्राकृतिक झरना आया जहाँ हमने पानी पीने के लिए मोटर रोकी। उसी समय बारह वर्ष का एक तेजस्वी लडका अपने हाथ की बनी स्ट्रोबरी-फल की कई छोटी डलिया लेकर बेचने आया। मैंने उसके चेहरे से प्रभावित होकर दो डलिया खरीद ली। प्रत्येक डलिया एक रुपए की थी।

"तुम दिन भर में कितनी डलिया बेच लेते हो?" मैंने पूछा।

'आठ-दस।' उस नवयुवक ने उत्तर दिया।

'दिन भर में कितनी कमाई हो जाती है?'

'करीब आठ रुपया।

'तुम पढ भी रहे हो?' मैंने पूछा।

'जी हाँ, सातवी कक्षा में पढता हूँ, काम करके कमाता भी हूँ और अपने बूढे माँ बाप की सेवा करता हूँ।'

यह सुनकर मुझे बडी खुशी हुई। यही तो है 'नई तालीम' की भावना। परिश्रम, स्वावलम्बन और साथ ही शिक्षण भी। प्रसन्न होकर मैंने उस विद्यार्थी की दो डलियाँ और खरीद लीं। वह भी खुश हो गया। बाद में कौसानी की ओर जाते हुए मुझे यह सोचकर चिन्ता हुई कि पुराने ढग की स्कूली पढाई के कारण इस होनहार, पुरुषार्थी नवयुवक का वही तेज फीका न पड जाए। हमारी वर्तमान शिक्षा का ढग ही ऐसा विचित्र है कि वह परिश्रमी बालको को 'बाबू' बनाकर निकम्मा कर देता है।

कुछ समय पहले मुझे माउण्ट आबू में राजस्थान शिक्षा सम्मेलन का उद्घाटन करने बुलाया गया था। वहाँ प्रदेश भर के प्रमुख शिक्षा-शास्त्री एकत्र हुए थे। राजस्थान के मुख्य मत्री श्री हरदेव जोशी ने स्वय सम्मेलन की अध्यक्षता की। अपने भाषण के अन्त में उन्होंने गहरा दुख व्यक्त किया कि राजस्थान जैसे गरीब प्रदेश में आधुनिक शिक्षा-पद्धति की वजह से नई पीढी पुरुषार्थहीन बनती जा रही है। उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा — "पहले जब कोई नौजवान किसी गाँव से बाहर कालिज में पढ़ने के लिए बस स्टैंड की ओर जाता था तो वह हाथ

में अपना बक्स और सिर पर बिस्तर रखकर अपने पिता के साथ चलता था। अब जिस समय वही नौजवान कालिज में पढकर गाँव वापस आता है तो बेचारे बूढे बाप के सिर पर बिस्तर होता है, हाथ में लडके का सूटकेस, और 'बाबू साहब' पतलून में हाथ डालकर शान से पिता के आगे आगे चलते हैं।" यह हास्यास्पद दृश्य है हमारी वर्तमान शिक्षा का साथ ही अत्यत 'ट्रैजिक' भी।

*   *   *   *

गत नवम्बर के अन्त में वाराणसी के समीप सेवापुरी आश्रम में अखिल भारत नई तालीम समिति सम्मेलन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। उसका उद्घाटन भारत के उपराष्ट्रपति श्री बी डी जत्ती ने किया। सम्मेलन में देश के विभिन्न प्रदेशो से लगभग २०० चुने हुए कार्यकर्ता शामिल हुए थे। अलग-अलग क्षेत्रों से बुनियादी व उत्तर-बुनियादी शालाओ के कार्य की रिपोर्ट दी गई। उत्तर प्रदेश में कौसानी के नजदीक बहनों के लक्ष्मी आश्रम का विवरण पेश करते हुए वहाँ की सचालिका राधाबहन ने बताया कि आश्रम के शिक्षक व विद्यार्थिनी मिलकर खेती, और जगल मे लकडी काटने आदि का कार्य करते हैं। कोई बाहर का व्यक्ति उन्हें काम करते देखे तो यह पता नही चलता कि कौन शिक्षक है और कौन विद्यार्थिनी। उत्पादक कार्य के साथ छात्राओ को विविध विषयो का व्यावहारिक ज्ञान भी सहज ढग से प्राप्त होता रहता है। आश्रम की विद्यार्थिनियाँ ज्यादातर पहाडी क्षेत्र की है। किन्तु उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास सराहनीय है।

यह रिपोर्ट सुनकर हम सभीको बहुत सन्तोष हुआ। 'सह वीर्यं करवावहै' का एक जीता-जागता उदाहरण हमारे सामने प्रस्तुत हुआ। बुनियादी तालीम का यही आदर्श अन्य सस्थाओं में भी कार्यान्वित हो सकेगा ऐसी आशा करनी चाहिए। तभी हमारा शिक्षण तेजस्वी बन सकेगा और भारत का भविष्य भी उज्ज्वल होगा।

❁

अनौपचारिक शिक्षा

स्व बंशीधर श्रीवास्तव

अनौपचारिक शिक्षा क्या है ?

आफ्रिका में पश्चिम देशो द्वारा उपनिवेश स्थापित होने के पहले कहीं भी औपचारिक स्कूल नहीं थे। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि बच्चों को शिक्षा नहीं दी जाती थी। वे काम करते हुए और जीवन जीते हुए (वर्किंग और लिविंग) सीखते थे। इस तरह शिक्षा अनौपचारिक थी। यह अनौपचारिक प्रणाली शिक्षा के क्षेत्र में एक अत्यन्त दिलचस्प अनुभव है। (युनेस्को रिपोर्ट पृ ५) यह उदाहरण तन्जानिया के राष्ट्रपति जूलियस निवरेरे की शिक्षा पर लिखी हुई पुस्तिका से लिया गया है (इस पुस्तिका का अनुवाद नई तालीम पत्रिका में छपा है) इसी प्रकार की अनौपचारिक शिक्षा लगभग सभी देशो में प्रचलित थी। और भारत के लाख-लाख बच्चो के लिए तो अब भी शिक्षा का एक मात्र रूप है।

युनेस्को की यह रिपोर्ट औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा में तो भेद करती है परन्तु अनौपचारिक शिक्षा और प्रासंगिक (इन्सीडेंटल) शिक्षा में कोई भेद नहीं करती। परन्तु माध्यमिक शिक्षा की सलाहकार समिति के सामने बोलते हुए भारत सरकार के शिक्षा सलाहकार श्री जे पी नायक ने शिक्षा के तीन भेद किए हैं —

(१) औपचारिक शिक्षा— यानी वह शिक्षा जो किसी सस्था में पूर्व निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार सुनियोजित ढग से ली जाती है। इसमें पाठ्यक्रमेतर विषय भी शामिल हो सकते हैं।

(२) प्रासंगिक शिक्षा— जिसे बच्चे अपने आप अपने माँ बाप के सम्पर्क में बिना किसी नियोजन के अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं। इसे ही कुछ लोगो ने सहज शिक्षा भी कहा है और

(३) अनौपचारिक शिक्षा.—जिसमें नियोजन की आवश्यकता पडती है।

हमारा कहना है कि प्रासगिक शिक्षा नाम की शिक्षा जो अनायास प्राप्त कर ली जाती है, ऐसी कोई चीज नही होती। बढई और जुलाहा अपने बच्चो को निहायत नियोजित ढग से अपना अपना काम सिखाते हैं और उस काम को सीखने में बच्चो को पर्याप्त आयास करना पडता है। प्रसगिक ढग से अनायास किसी भी प्रकार की शिक्षा नही प्राप्त हो सकती, यहाँ तक कि सबसे सरल लगने वाली खेती के काम की शिक्षा भी पिता अपने पुत्र को अपने साथ रख कर देता है। हल की मुठिया पकडना सिखलाता है। इस प्रकार हल जोतना सिखाता है कि हल का फन बैल के पैर मे न लग जाए। अगर यह सब आयास और नियोजन नही है तो नियोजन और क्या होता है ?

जो भी हो अब हमारी केन्द्रीय सरकार ने और राज्य की सरकारो ने भी अनौपचारिक शिक्षा के लिए नियोजन प्रारम्भ कर दिया है। उत्तर प्रदेश की सरकार ने भी इस प्रकार के अनौपचारिक शिक्षा के ४ हजार केन्द्र प्रदेश में स्थापित किए हैं।

अनौपचारिक शिक्षा क्यो ?

शिक्षा की वह प्रणाली, जिसका नियोजन केवल कुछ व्यक्तियो के लिए किया गया था, और वह भी उस समय जब विज्ञान की गति बहुत धीमी थी और मनुष्य अल्प काल में ही अपनी भौतिक दिमागी और वैज्ञानिक जरूरतो को पूरी कर लेने के लिए आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर लेता था, आज जब नए-नए ज्ञान-समूहो का बवण्डर सा आ गया है, और इस लोक तन्त्र के युग में सभी को समान रूप से शिक्षा देने की बात कही जा रही है, अत्यत अपर्याप्त सिद्ध हो रही है। इतना ही नही आज शीघ्रता से औद्योगीकरण की ओर बढते हुए ससार में शिक्षा की यह प्रणाली पुरानी भी पड गई है। विज्ञान और टेक्नालजी की प्रगति ने और मनुष्य-मनुष्य सब बराबर है, की सर्वव्यापी चेतना इस शिक्षा प्रणाली की सकल्पना और सरचना में आमूल परिवर्तन की माँग करती

है। अत. रिपोर्ट में प्रस्तावित किया गया है कि शिक्षा और उत्पादक उद्योग का परिपूर्ण समन्वय किया जाए; जिससे स्कूल जाने वाले विद्यार्थी अपने को एक अलग वर्ग के सामाजिक प्राणी समझने लगे। काम और शिक्षा का दूसरा भेद बिल्कुल मिटा दिया जाए। कम से कम इतना परिवर्तन आज की शिक्षा को आज के युग के अनुकूल बनाने के लिए आवश्यक है। अनौपचारिक शिक्षा में तो यह भेद बिलकुल ही न रहे। (युनेस्को रिपोर्ट पृ. ४)

शिक्षा की इस संकल्पना ने एक नए विचार को जन्म दिया है—शिक्षा का असंस्थायीकरण और समाज का अविद्यालयीकरण। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री इवान इल्लिच कहते हैं कि आज आवश्यकता इस बात की है कि समाज को संस्थागत शिक्षा से मुक्त कर दिया जाए जिससे मनुष्य को संस्थागत औपचारिक शिक्षा की रूढियों से छुटकारा मिले। जब स्कूल-प्रणाली समाज के कुछ चुने हुए सम्भ्रान्त व्यक्तियों का इजारा बन जाती है तो साधारण विद्यार्थी इस शिक्षा पद्धति में पलने और बढने के बाद आज के युग की यथार्थता से कट जाता है, विलग हो जाता है और फलत भ्रमित होकर हताश होता है!

संक्षेप में हमें निम्न प्रश्नों का उत्तर देना है :—

(१) क्या संस्थागत शिक्षा आज के संसार के मास एजूकेशन की माँग की पूर्ति कर सकती है, (२) इसके लिए विद्यालयोंको साधन दे सकती है और (३) जिस गति से हमारी शिक्षा संस्थाएँ प्रगति कर रही है, क्या उसी प्रणाली और गति से चलते रहते वह हमारे जीवन की समस्याओं का समाधान कर सकेगी। सीधा सा उत्तर है,—नहीं। इसी लिए अब यह अनुभव किया जाने लगा है कि इस मद में जो धन खर्च किया जा रहा है, वह न्यायसंगत नहीं है (युनेस्को रिपोर्ट पृ. ४४) १९१० में विकसित देशों में शिक्षा पर २०,००० लाख डालर से अधिक धन खर्च हो गया था जब कि विकासशील देशों में १२,००० लाख डालर से भी कम। क्या यह न्याय है? अगर इस अन्याय का परीक्षण करना

है तो सस्थागत शिक्षा प्रणाली के अलावा हमको दूसरी प्रणालियो की तलाश करनी होगी।

इसीलिए सबसे पहली आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा पर व्यय किए जाने वाले धन में कमी की जाए और सस्थागत प्रणाली को, जो केवल कुछ सुविधा प्राप्त लोगो के लिए ही है बुनियादी रूप से बदल दिया जाये। (पृ ५९) कोई भी सामाजिक प्रक्रिया अगर कुछ विशेष सुविधा प्राप्त मनुष्यो के ही हित में है तो उसे समाप्त करना आज के लोकतन्त्र और समाजवाद के युग में आवश्यक है। इसीलिए आज इवान इल्लिच के असस्थाईकरण की बात आदर स सुनी जाती ह। इनका दृढ मत है कि आज की सस्थागत शिक्षा प्रणाली अपर्याप्त ही नही हानिकारक भी है। आवश्यकता इस बात की है कि सस्थागत शिक्षा से भिन्न अनौपचारिक शिक्षा पद्धति अपनाई जाए।

अनौपचारिक शिक्षा के लिए नियोजन

अगर हम किसी भी काम को सुचारू रूप से करना चाहते है तो हमें उसे नियोजित ढग से करना ही चाहिए। यह अच्छी बात है कि भारत सरकार और राज्य की दूसरी सरकारें अनौपचारिक शिक्षा के नियोजन का काम कर रही है, लेकिन प्रमुख प्रश्न यह है कि नियोजन की सीमा तक हो? अगर नियोजन करते समय हमने विकसित देशों के मास मीडिया को ध्यान में रखा अथवा उन साधनो को जो हमारे नगरवासियो की ही प्राप्त है तो यह नियोजन हमें देश की यथार्थ स्थिति से दूर ले जाएगा और देश के प्रचुर धन की बरबादी होगी। परिणाम वही होगा जो सामुदायिक विकास योजना के क्षेत्र में हुआ है। यानी ऊपर से नीचे तक सरकारी अफसरो की (नौकर कहना ठीक नही होगा) एक ऐसी फौज तैयार हो जाएगी जो ग्रामीण भारत का शोषण करेगी और व्यर्थ की समस्याएँ खडी करेगी। इससे सम्भ्रान्तों को ही बल मिलेगा और उनकी सुविधाओ में ही वृद्धि होगी तथा गाँव में रहने वालो के स्थान पर नगरवासियो का ही लाभ होगा। गाँव की जनता

एक बार फिर उस न्यायसगत अधिकार से वचित हो जाएगी जिसके लिए अनौपचारिक शिक्षा का यह नियोजन किया जा रहा है।

युनेस्को रिपोर्ट में असंदिग्ध शब्दो मे यह बताया गया है कि अनौपचारिक शिक्षा क्या है? अप्रत्यक्ष रूप से इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है कि इस नई सकल्पना को कार्यरूप में परिणित करने के लिए क्या किया जाए। जब रिपोर्ट यह कहती है कि उपनिवेश—पूर्व आफ्रिका की शिक्षा अनौपचारिक शिक्षा का एक दिलचस्प उदाहरण प्रस्तुत करती है और जब वह प्लूटार्क का उदाहरण देते हुए यह कहती है कि प्लूटार्क के अनुसार नगर ही सबसे अच्छा शिक्षक है तो रिपोर्ट एक प्रकार से यह भी कह देती है कि अनौपचारिक शिक्षा का नियोजन उस समुदाय की सीमाओ और साधनो को ध्यान में ही रख कर करना चाहिए, जिसके लिए इस प्रणाली का प्रयोग किया जा रहा है। और उस नियोजन में अधिक से अधिक साधारण ग्राम अथवा नगर वासियो की सहायता लेनी चाहिए। भारत में ८० प्रतिशत लोग गाँवो में रहते है और भविष्य में भी गाँवो में ही रहेंगे। यही देश के हित में भी होगा। अत जो भी नियोजन अनौपचारिक शिक्षा के प्रचार के लिए किया जाए उसमें इन गाँवो में प्राप्त साधनो को ही ध्यान में रखा जाए, नही तो योजना एक बार फिर जीवन की यथार्थता से कट जाएगी और नगरो द्वारा गाँवो के शोषण को रोका नहीं जा सकेगा।

प्राचीन भारत में अनौपचारिक शिक्षा

प्राचीन भारत में विचारपूर्वक अनौपचारिक शिक्षा का नियोजन किया गया था। हमारी संस्कृति में, दर्शन में, इतिहास में जो सर्वश्रेष्ठ और वरेण्य था, उसे व्यासो द्वारा और कथावाचको द्वारा कीर्तन, भजन के रूप में सप्रेषित किया गया है। चातुर्मास में कथावाचक गाँवों में जाते थे, और अपने ज्ञान के भण्डार को सरल कथा कहानी के रूप में जनता को देते थे और जनता इस कथा के पूर्णाहुति के समय उनको दक्षिणा के रूप में इतना दे देती थी कि उनके कुटुम्ब का साल भर तक

भरण पोषण हो सके।' यह हमारी अनौपचारिक शिक्षा की प्राचीन तकनीक थी।

आज के युग में भी विनोवा जी ने जब नित्य मस्या के समय गावो में सभी बूढे बच्चो के लिए एक घटे की पाठशाला की योजना चलाने की बात बताई थी अथवा जब बेसिक शिक्षा के मूर्धन्य विद्वान धीरेन्द्र भाई ने कहा था कि अगर गाँव वालो को पढाना है तो स्कूल को भैस की पीठ पर लगाना होगा। वे इस युग के मनीषि दर्शों से अनौपचारिक शिक्षा की बात कर रहे थे। १६४५ में जेल से निकलने के बाद गाँधीजी ने जिस लोक शिक्षण की बात कही थी वह अनौपचारिक शिक्षा की ही बात थी। इसे गुजरात में जुगतराम भाई ने सुन्दर प्रायोगिक रूप दिया है, अब यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमने उनकी बात तो नही सुनी लेकिन जब उसी अनौपचारिक शिक्षा की बात युनेस्को ने कही तो हम उसपर वैसे ही टूट पडे जैसे बच्चे खिलौने की दूकान पर टूटते हैं। सक्षेप में मेरा यही कहना है कि अनौपचारिक शिक्षा के लिए योजना में यदि इन सारी बातो का ध्यान रखा जाए जो इन मनीषियो ने कही है। समुदाय का जो आर्थिक और सामाजिक ढाँचा है, उसका अनौपचारिक शिक्षा के नियोजन से पूर्ण समन्वय होना चाहिए। (युनेस्को रिपोर्ट १६५)

बेसिक शिक्षा और अनौपचारिक शिक्षा

क्या बेसिक शिक्षा और अनौपचारिक शिक्षा में कोई सम्बन्ध है? उत्तर है— है भी और नही भी। नही इसलिए कि नई तालीम का विकास पहले प्राथमिक स्तर की शिक्षा के स्तर पर और पीछे उत्तर बुनियादी के स्तर पर सस्थागत औपचारिक शिक्षा के रूप में ही हुआ था। बेसिक शिक्षा परम्परागत औपनिवेशिक औपचारिक शिक्षाके विरुद्ध एक विकल्प थी। वह संस्थागत और औपचारिक ही थी। और आज भी है। परन्तु १९४५ में जेल से बाहर आने के बाद गांधी जी ने बेसिक शिक्षा की कल्पना का विस्तार किया और उसे जीवन के माध्यम से जीवन की जीवन भर तक की शिक्षा कहा। (शिक्षा की यही परिभाषा युनेस्को के रिपोर्ट में भी दी गई है) और उसका क्षेत्र जन्म से मृत्यु

तक बताया। उन्होंने कहा कि अगर आप चाहते हैं कि बच्चे निष्ठापूर्वक दस्तकारी का काम करे तो उनके माँ बाप को भी नई तालीम की शिक्षा दीजिए जिससे हाथ के काम करने की रुचि उन्हें पैत्रिक दाय के रूप मे मिले। इसे उन्होंने लोक शिक्षण कहा और इस अर्थ मे बेसिक शिक्षा फार्मल कही जा सकती है। हमको बेसिक शिक्षा के इन दोनो रूपो पर ही बल देना है। उसका उत्पादक तत्व और सामुदायिक आधार विद्यालयी शिक्षा और अनौपचारिक शिक्षा को समान रूप से शासित करे।

कार्यानुभव और अनौपचारिक शिक्षा

विकासशील और विकसित दोनो ही प्रकार के देशो में संस्थागत अनौपचारिक शिक्षा ने बौद्धिक शिक्षा और हाथ के काम की शिक्षा में अन्तर करके कुछ ऐसा वातावरण सृजित कर दिया है जिससे हाथ के काम को छोटा समझा जाने लगा है। शिक्षा जगत की यह सबसे बडी विडम्बना है कि स्कूल और शिक्षा को पर्याय मान लिया गया है। और भारत वर्ष मे तो उसी को शिक्षित मानते है जिसने किसी स्कूल या विश्वविद्यालय में ऐसी शिक्षा पाई हो। जिसमें हाथ से काम नही किया जाता। केवल सफेदपोश चाकरी करता है। लेकिन युनेस्को की रिपोर्ट का यह दृढ मत है कि अनौपचारिक शिक्षा को उत्पादक काम और शिक्षा के इस (डायकाटमी) के भेद की प्रवृत्ति का पूर्णत परित्याग कर देना चाहिए। भारतवर्ष में तो बहुत दिनो तक अनौपचारिक शिक्षा का काम प्रमुखत प्रौढो के शिक्षण का काम होगा। रिपोर्ट ने साक्षरता का अर्थ कार्यात्मक साक्षरता किया है। (फक्शनल लिटरसी किया है) यानी ऐसी शिक्षा जिससे प्रौढो में उनकी बुद्धि के विकास, विचार और सम्प्रेषण की शक्ति के अतिरिक्त उनकी उस कार्यात्मक क्षमता की भी वृद्धि हो जिसके द्वारा वह अपनी जीविका अर्जित कर सकें (युनेस्को रिपोर्ट १९४८)। यदि हम सजीदगी के साथ इस दिशा में काम करें तो हम अनौपचारिक शिक्षा के साथ अधिक न्याय करेंगे। परन्तु हम यह देखें कि उनके सामने प्रौढ शिक्षा का यह लक्ष्य स्पष्ट हो, और उनके काम में सातत्य हो, तथा वे इस काम को केवल भ्रमण, यात्रा और पिकनिक के रूप में न लें।

" करुणा परमोधर्मः "

मदालसा नारायण

दुनिया में अब तक भगवान के अनेक दिव्य अवतार हुए हैं और देश, काल, परिस्थिति के अनुरूप हरेक अवतार में पहले से अधिक संशोधित और परिष्कृत रूप में धर्म-संस्थापना हुई है, जिसके लिए भगवान ने स्वयं कहा है — *'धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे'।*

अखिल विश्व में धर्म भावना के विस्तार की यह भव्य परम्परा है। तदनुसार अब 'अहिंसा परमोधर्म' के स्थान पर 'करुणा परमोधर्म' की भावना को अपनाने का सुअवसर हमें मिल रहा है।

इस संबंध में सत्य-प्रेम करुणामूर्ति ऋषि विनोबा जी से परम-धाम पवनार में ३१ अगस्त, १९७६ को एकादश व्रतों के आधार पर महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर हुए थे। उनका सार इस प्रकार है--

प्रश्न :—' अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य असंग्रह शरीरश्रम, अस्वाद, सर्वत्र भयवर्जन। सर्व धर्म-समानत्व, स्वदेशी स्पर्श-भावना, विनम्र व्रत-निष्ठा से ये एकादश सेव्य हैं।'

इनमें सबसे पहला व्रत लिया गया है 'अहिंसा'। इसमें मूल शब्द 'हिंसा' क्यों है? इस प्रश्न के जवाब में बाबा ने लिख दिया (अ)हिंसा—न हन्ति, न हन्यते। मतलब जो न किसीको मारता है, न मारा जाता है।

प्रश्न :—जैसे 'सत्य' यह भावात्मक है, उसे 'अ' उपसर्ग लगाने से 'असत्य' याने 'जो सत्य नहीं है' वह अभावात्मक बन जाता है। 'अहिंसा' उसी तरह का निषेधात्मक शब्द है। उसकी जगह अहिंसा के लिए भी 'सत्य' के समान भावात्मक नाम क्या हो सकता है बाबा? आप धर्म-चक्र प्रवर्तक युगदृष्टा युग पुरुष हैं। आपके द्वारा भूतदया या जीवदया के रूप में 'अहिंसा' के लिए कोई युगान्तर-कारी नया शब्द सूचित हो सके तो वह देश और दुनिया के लिए कितना प्रेरणादाई हो सकेगा?

बाबा ने इतना पढा और अपने हाथ से उसी के आगे लिखकर दिया — 'अहिंसा = करुणा'।

यह तो मन को बहुत ही भा गया।

आगे का प्रश्न —

बाबा! भारत में 'सत्यमेव जयते' के साथ अब तक 'अहिंसा परमोधर्म' का शाश्वत सिद्धान्त सर्वत्र प्रचलित हुआ है। उसकी जगह अब 'करुणा परमोधर्म' का तत्व-सिद्धान्त प्रचारित हो सकेगा क्या?

इतना पढकर बाबा ने स्वयं अपना अभिमत इस प्रकार लिखकर दिया — 'बाबा ठीक है।'

इस तरह युगदर्शी ऋषि विनोबा के स्तर पर अब 'अहिंसा परमोधर्म' की जगह 'करुणा परमोधर्म' सिद्ध हो गया।

'करुणा परमोधर्म।' 'करुणा परमोधर्म।'

'करुणा परमोधर्म।'

इस ध्यान-मंत्र का जितनी बार उच्चारण और विचार करते हैं उतना यह मीठा लगने लगा है। आगे इसका जितना प्रचार होता जाएगा, उतनी मिठास बढती जाएगी। [

करुणा के संबंध में पूज्य विनोबा जी ने समय-समय पर जो विचार व्यक्त किए हैं वे उन्हींके शब्दों में यहाँ दिए जा रहे हैं — |

"वेदान्त और करुणा एक-दूसरे के पूरक हैं। करुणा के बिना वेदान्त का मूल्य नहीं और बिना वेदान्त के करुणा निराधार है। करुणा न रहे तो आत्मज्ञान शुष्क हो जाएगा।

बुद्ध भगवान ने समझाया कि यज्ञ में हिंसा न हो। उनके चित्त को शान्ति मिली और यह निर्णय हुआ कि दुनिया में 'मैत्री, और 'करुणा' ये ही दो शब्द (महत्व के) हैं।

शंकराचार्य, ज्ञानदेव, भगवान बुद्ध आदि करुणा की मूर्ति थे। इन महापुरुषों ने राष्ट्र को करुणा का सन्देश दिया और समाज में करुणा का प्रचार किया।

कुरान का अल्फातिहा प्रारम्भ ही होता है परमात्मा के नामसे, जो परम कृपालु, अतीव करुणावान् है।

रामकृष्ण परमहम बहुत पढे-लिखे नही थे पर मानव-मात्र पर प्रेम करने की बात वे सिखाते थे। उनके विचारो की यह विशेषता थी कि उसमें हिन्दुस्तान का अद्वैत विचार और ईसाई धर्म का सेवा का विचार भी था।

गाधीजी अद्वैत में और भक्ति मे विश्वास करते थे। लेकिन वे कर्मयोगी भी थे।

गाधीजी के विचार में शकर का अद्वैत रामानुज आदि की भक्ति और रामकृष्ण की सेवा के अलावा उत्पादन भी आता है।

भारतीय संस्कृति का यह आखरी समन्वय है। अद्वैत विचार, भक्ति-मार्ग, सेवा की दृष्टि और उत्पादक कर्म क्षेत्र ये सब यहाँ जब इकट्ठे होगे। इसमें भारत की कुल कमाई आ जाती है। जहाँ हम सेवा का नाम लेते है, वहाँ करुणा आ ही जाती है। इसलिए बुद्ध भगवान का करुणा का विचार भी उसमें आ गया। और जहाँ अद्वैत आया वहाँ महावीर की अहिंसा भी आ जाती है। यह तो पच पक्वान्न का बडा मिष्टान्न बन गया। ᴾ

अनुकम्पा परदुःख देखकर हृदय को कम्पित करती है। पर करुणा उसे सहायता करने को प्रवृत्त करती है। यह हमें क्राइस्ट, बुद्ध, गाधी में दिखाई देता है।"

'सत्य, प्रेम, करुणा' के नित्य निरन्तर चिन्तन में से युगदृष्टा ऋषि विनोबा के द्वारा 'सत्यमेव जयते' की तरह 'करुणा परमोधर्म' का शाश्वत सिद्धान्त भूतदया के भावात्मक रूप में प्रकाशमान हुआ है।

'सर्व धर्म-समभाव' की दृष्टि से भी यह अत्यन्त प्रेरक है। अत 'सकल जन हिताय, सकल जन सुखाय' की भावना के साथ 'करुणा परमोधर्म।' के रूप में सकल जनो का हार्दिक अभिनदन।

राजकीय पक्ष और शैक्षिक कार्यक्रम

श्री वजुभाई पटेल

लोकसभाका चुनाव अपने देश में मार्च के तीसरे सप्ताह में होगा यह बडी खुशी की बात है। लोकसभा का चुनाव आ रहा है इसलिए सारे देश में उत्साह और आनंद दिखाई दे रहा है। शहर तथा ग्राम-प्रजा में राजकीय नेताओं का स्वागत जिस प्रकार हो रहा है तथा उत्साह के जो दृश्य देखने में आते हैं वे एक प्रकार से प्रजा-जागृतिके लक्षण हैं ऐसा मान सकते हैं।]

इस अवसर पर प्रजा के महत्व के प्रश्न क्या क्या हैं तथा उन प्रश्नों के प्रति राजकीय पक्षों का क्या अभिमत है उस पर विचार करने का यह समय है। प्रजा के समग्र जीवन से संबंधित सभी प्रश्नों के प्रति राजकीय पक्ष जितने सजग होंगे उतने अंश में चुनाव के बाद बननेवाली पक्षीय सरकार उस दिशा में ठोस कार्यक्रम का आयोजन करेगी और उस हद तक प्रजा को लाभ होगा, देश का तदनुरूप विकास होगा और उसका गौरव बढेगा। शासक कांग्रेस पक्ष ने चुनाव के लिए जो घोषणा पत्र घोषित किया है तथा जनता पक्ष ने जो विविध कार्यक्रमोंकी घोषणा की है उनमें लोगों के आर्थिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन के विकास की बातें हैं। इन कार्यक्रमों में शिक्षण के विषय में निम्नलिखित कार्यक्रम दिया गया है —

कॉंग्रेस पक्ष —

9 th Feb Times of India.

Extract from the Congress Manifesto

Education, expansion of health and medical facilities and the extension of welfare programmes are of crucial inportance to develop our human resources and improve the quality of the common man's life. The congress considers it an inherent right of the people to be literated to all citizens to enlarge their minds and widen their awareness of the infinite potentialities of life and our glorious cultural and intellectual heritage.

The Congress has initiated steps to reorganise our educational system to make it more potent and dynamic instrument to strengthen the values of secularism and national integration, to imbue the scientific temper and to develop a humane, rational and self-reliant outlook. The education system will be restructured more fully to develop the students' personality and help them to face the challenges of the rapidly changing times. The Congress is committed to spreading universal primary education, and measures for it will be accelerated. It will also take steps to develop vocational and non-formal education and to improve college and university education. The present examination system will undergo radical reforms. Talented Students of the deprived sections of the nation will be helped to get the best education. Every effort will be made to see that teachers at all levels get their due recognition and place of honour, and that their conditions of work are improved.

जनता पक्ष :—

The Janata Party's Social Charter will comprise:

1. Education reform with middle schooling for all within 12 years;
2 Education of illiteracy,
3. Safe drinking water for all,
4 Stress on community and preventive health, and measures towards group health insurance.
5. A new village movement,
6 Low-cost building and mass public amousing,
7. A polity regarding urbanisation,
8 A Comprehensive scheme of social insurance;
9 Family planning as part of a larger population policy package, without coercion;
10. A new deal for the scheduled castes and tribse with special machinery to guarantee their rights and interests;
11. A civil rights commission;
12 Automatic machinery for combating corruption.
13 Women's rights and youth welfare;
14 Legal aid and inexpensive justice;
15. Fostering people's initiatives and voluntary action.

उपर्युक्त विवरण पर से प्रतीत होता है कि दोनो महत्व के राजकीय पक्ष निरक्षरता निवारण की बात करते है। फिर भी उसके लिए कोई ठोस कार्यक्रम तथा समयमर्यादा की सूचना उन बातो से नही मिलती। जिसका सूचन हुआ है वह गत वर्षों के चुनाव-घोषणा-पत्रक में आ गया है। उसी प्रकार वर्तमान शिक्षा प्रणाली (ढाँचा) को व्यवस्थित करने के लिए जो प्रयत्न हो रहे है एव प्राथमिक शिक्षा को सार्वत्रिक करने के लिए उसको अग्रताक्रम देने के जो प्रयत्न हो रहे हैं उनसे अधिक घना कार्यक्रम दोनो में से किसी पक्ष के चुनाव-घोषणा-

पत्र में नही है। अधिक शोचनीय परिस्थिति तो यह है कि दोनो पक्ष वर्तमान शिक्षा व्यवस्था को समग्रतया दूर करके देश के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के साथ शिक्षा को जोडने की बात तथा उस विषयक, कार्यक्रम तथा समय-मर्यादा नही बता रहे है।

जनतंत्र तथा बिन साम्प्रदायिकता के मूल्यो को जीवन के रहन सहन में स्थापित करना हो तो उनको शिक्षा के साथ जोडना ही होगा, तभी ये मूल्य टिक सकते है। उसी प्रकार कोई भी आर्थिक कार्यक्रम तभी टिक सकता है जब शिक्षा को कार्योन्मुख (Functionl) बनाया गया हो।

केवल १०+२+३ की नई शिक्षा प्रणाली के विकासार्थ अथवा उसके लिए अभ्यास क्रम बनाना केवल यही कार्यक्रम होगा तो वर्तमान व्यवस्था में जीवन जिस प्रकार शिक्षा से कटा हुआ रहा है ऐसा ही भविष्य में भी रहेगा। प्राथमिक शिक्षा का विस्तार मात्र करने से प्राथमिक शिक्षा की क्षमता बढनेवाली नही है। उसी प्रकार जन शिक्षा का विस्तार मात्र बढने से उसकी क्षमता भी बढनेवाली नही है। अन परीक्षा पद्धति में केवल कुछ परिवर्तन करने से तथा ऐसे ही थोडे आनुषंगिक परिवर्तन करने से शिक्षा की निर्वीर्यता कम नही होगी। जनता-पक्ष ने जिन बारह मुद्दो का सामाजिक कार्यक्रम दिया है उनमें शिक्षा-सुधार की बात भी है। उसी प्रकार (Gandhian Socialism) गांधी समाजवाद की बात की है (Bread and liberty) रोटी और स्वातन्त्र्य की भी बात की है। किन्तु यह रोटी और स्वातन्त्र्य प्राप्त करने का तथा उसको बनाए रखने का एक प्रबल साधन शिक्षा है और उस शिक्षा में क्रान्ति करने का तथा नई शिक्षा पद्धति अपनाने का कोई ऐलान नही किया गया है।

जयप्रकाशजी ने चुनाव के अनुलक्ष में जो निवेदन किया था उसमें वर्तमान शिक्षा प्रणाली के स्थान पर देश के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था को प्रस्थापित करने का उल्लेख था किन्तु जनता पक्ष के चुनाव घोषणा पत्र में उसके विषय में उल्लेख नहीं है।

(शेष पृष्ठ २०४ पर)

हम अपराधी क्यों बनते हैं ?

सरला देवी।

एक अपराधी बालक

बारह साल की उम्र में शराब पीने तथा उपद्रवी व्यवहार के लिए मेरी डाई गिरफ्तार हुआ था। सोलह साल की उम्र में सात बन्दूकें, ३२ पिस्तौलें तथा तीस हजार गोला बारुद के चक्र लेकर वह पकडा गया। बाईस साल की उम्र मे कुल दस वर्ष तक जेल मे बिताने के बाद वह तीसरी बार रिहा हो गया था।

उसके बाद वह एक फिल्म निर्माता के साथ काम करने लगा। उसे एक ऐसी फिल्म की तैयारी में काम करना पडा जिसमें जेल-जीवन का अध्ययन करने की आवश्यकता थी।।

वह विश्वविद्यालय का विद्यार्थी कभी नही रहा, फिर भी उसने बाल-अपराध तथा नियत्रण अधिनियम का मसविदा बनाया था। बाद में अपने लेखन के छ ग्रन्थो को लेकर उसने मेसचुसेट्स विश्व-विद्यालय में दरखास्त दी कि अन्डरग्रेजुएट नही होने पर भी उसे एम. ए की तैयारी करने की इजाजत मिले। एक साल में वह एम ए की परीक्षा में सफल हुआ तथा और डेढ साल मे उसने पी एच डी में सफलता पाई। उसे फौरन उसी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर का स्थान मिला।

अब व्यतिक्रम तथा वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के द्वारा उसे कैसे प्रोत्साहन मिलता है—इन विषयो के बारे में वे पढाते थे—लेकिन उन्होंने पाया था कि मेसचुसेट्स के कानून शायद व्यतिक्रम को बढाने के लिए सबसे अनुकूल होते है। उन दिनो में पाठशाला से गैरहाजिर रहने के जुर्म में दो सौ सैतालीस बच्चे बालापराधी सस्थाओ में बन्द थे। एक तेरह साल का बच्चा कुल पाँच वर्ष तक बन्द रहा था। (ये पाठशालाएँ भी कैसी होंगी—जिनके बच्चे इस प्रकार सजा काटना ज्यादा पसन्द करते हैं !)

श्री डाई के प्रयत्नो से अब मेसचुसेटस की सब बालापराधी सस्थाएँ बन्द है। अब ऐसे बच्चो के लिए एक सामाजिक कार्यक्रम बनता है जिसमें ये बडे विद्यार्थियो के साथ रहकर और उनके साथ मिलकर अच्छी तरह काम करना सीखते हैं।

कई लोग यह अनुभव कर रहे हैं कि समस्याजनक बच्चो के साथ जो एक व्यक्तिगत सम्पर्क चाहिए वह सस्याओ में मुश्किल से हो पाता है।

अपराधी बालिकाएँ

न्यूयार्क में लडकियो के लिए इस प्रकार की एक सस्था है। श्रीमती रोथमन उसकी सचालिका लिखती है — "कई प्रकार की लडकियाँ कई कारणो से बिगडती है। लेकिन आप उन सबके साथ एक ही प्रकार का व्यवहार नही कर सकते। इन लडकियो में तीन बातो में साम्य अवश्य है— ये लडकियाँ है ये युवती है अन्य पाठशालाओ में उन्होने सवाला पैदा किया है। ये शान्त स्वभाव की नही है।" ये अपने जीवन की परिस्थितियो के विरुद्ध विद्रोह कर रही है। उनमें साहसिक व्यक्तित्व है— उनमें असाधारण होने की हिम्मत है। आप उन्हें दबा नही सकते। उनके विचारने का तरीका अलग है। ये अन्य लोगो की बनिस्वत अपने प्रत्यक्ष बोध की सरचना को दूसरे तरीके से करती है। ये सर्जनात्मक है, कुछ में कलात्मक सर्जनात्मकता भी है। पैदा होते समय हम सबमें सर्जनात्मकता की शक्ति रहती है। लेकिन ज्यादातर माँ-बाप तथा शिक्षा के दबाव से वह सर्जनात्मक शक्ति नष्ट हो जाती है।

श्री डाई के जीवन से यह बात बहुत स्पष्ट हो जाती है। वास्तव में जिन बच्चो में समाज विद्रोही बनने की शक्ति है उनमें सर्जनात्मक रचनात्मक प्रवृत्तियाँ पैदा होने की शक्ति भी है ये ही बाद में सही समाज-सुधारक बन सकते है क्योकि उन्होने खुद समाज की बुराइयो का अनुभव किया है। लेकिन यह अवसर तथा उसके लिए सही मार्गदर्शन उन्हें व्यक्तिगत सहिष्णुतापूर्ण सम्पर्क से ही मिल सकता है सस्थागत तकनीकी विशेषज्ञ व्यवहार से यह उन्हें नही मिल सकता।

५

।एक विश्वव्यापी समस्या

बचपन में अपराधी वृत्तियों का बढना आजकल एक विश्व-व्यापी समस्या बन गई है। भारत में भी वह समस्या काफी तेजी से बढ रही है। उसके इतने तेजी से बढने के शायद दो मुख्य कारण हैं— लोभी संग्रहणशील समाज व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक नीतियों की मान्यताओं में फर्क। इससे बच्चों में द्वन्द्व पैदा होता है। दूसरे, हमारे जीवन में, विशेषकरके नागरिक जीवन में सामूहिकता की भावना बहुत तेजी से घट रही है। माँ-बाप समझने लगे हैं कि बच्चों का चारित्रिक विकास पाठशाला की जिम्मेवारी है— अर्थात् संस्थागतीकरण चारों ओर बढ रहा है। बच्चे को वह पोषण और प्रेम की भावना नहीं मिल रही है वह वातावरण नहीं मिल रहा है जिससे उसकी भावनाओं का सही विकास हो सके। फिर और हमारी पाठशालाओं में और महाविद्यालयों में जहाँ एक ही संस्था में हजारों की संख्या में बच्चे भरती हो जाते हैं— यह व्यक्तिगत सम्पर्क का अवसर, व्यक्तिगत प्रेम और सहिष्णुता का अवसर कहाँ मिल पाता है, जिसके लिए "बच्चे का अहम" तरसता रहता है?

❧

राजकीय पक्ष और शैक्षिक कार्यक्रम

(पृष्ठ २०१ से आगे)

उसी प्रकार इंदिराजी ने भूतकाल में भिन्न भिन्न स्थल और समय पर वर्तमान शिक्षा प्रणाली को बदलने की आवश्यकता को स्वीकार किया है। फिर भी कांग्रेस के चुनाव घोषणा-पत्र में उसके बारे में कोई विवरण नहीं है।

आगामी चुनाव देश के विकास की दिशा में सीमाचिन्ह बनकर रहेगा। यह राजकीय दृष्टि से भले ही सही हो आर्थिक और सामाजिक न्याय की दृष्टि से भी उसके सही होने की संभावना है। किन्तु यदि उसको शिक्षा के साथ आमूलाग्र नहीं जोड़ा जाएगा तो स्वराज्य के बाद तीस वर्षों तक जिस जन जीवन को हमने देखा है उसमें विशेष प्रगति देखने का अवसर नहीं मिलेगा ऐसा मुझे प्रतीत होता है।

सेवाग्राम आश्रम वृत्त

(माह जनवरी-फरवरी १९७७)

आश्रम दर्शनार्थियो के लिए जनवरी माह यात्रा की दृष्टि से सुविधा का रहा। जनवरी में दर्शनार्थी टोलियो की सख्या कुल ७७ रही। आश्रम दर्शन के लिए १६७७ जनवरी में ४०२४ तथा फरवरी में २२७६ इस प्रकार कुल ६३००० यात्री आए। जनवरी में भारतीय अतिथि २ तथा विश्व अतिथि ७ रहे। फरवरी में भारतीय अतिथि १ तथा विश्व अतिथि ८ रहे। इस अवधिमें आश्रमवासियोमें से सभी का स्वास्थ्य अच्छा रहा। आश्रम कुटियो की सार सभाल इस अवधि में ठीक की गई। श्रीमती निर्मला गाँधी कस्तूरबा ट्रस्ट की बैठक के लिए इदौर गई थीं। कृषि प्रदर्शनी तथा कार्यावलोकन हेतु श्री रामकृष्ण चव्हाण और श्री विष्णु बोरले इदौर गए थे।

२६ जनवरी प्रजासत्तात्मक दिवस के उपलक्ष्यमें राष्ट्रध्वज की वदना की गई। ३० जनवरी को "बापू निर्वाण दिवस" के उपलक्ष्य में बापू कुटी प्रागणमें नीचे लिखे कार्यक्रम हुए —

(१) सुबह ५–४५ बजे रामधुन

(२) सुबह ६-०० बजे सर्व धर्म प्रार्थना (बापू कुटी प्रागण में)

(३) सुबह ६ बजे से साय ६ बजे तक अखड सूत्रयज्ञ। इसमें तीन किसान चर्खे और एक अबर चर्खा चलाया गया। कुल १८ गुंडी सूत काता गया। इनमेंसे खेती कामगारोंने एक चर्खा तथा महिला मडल सदस्योंने एक चर्खा अखड बारह घटा चलानेमें मदद की।

(४) शाम ५॥ से ६ तक सामूहिक सूत्रयज्ञ प्रार्थना भूमिपर चला।

(५) शामके ६ बजे प्रार्थना भूमिपर सर्वधर्म प्रार्थना सपन्न हुई।

(६) आश्रम रसोडेमें बारह घटा अखड आटा पिसाई यज्ञ भी चलाया गया। दिनाक ४ जनवरी से आश्रम रसोडेमें स्व कुमारप्पा जन्म दिवस के अवसर पर परसे ग्रामोद्योगी वस्तुओ के उपयोग का निश्चय किया गया है।

(७) रातके ८ से ९॥ बजे तक बापू कुटी में भिन्न भिन्न तेरह भाषाओ के भक्तिसगीत का सुन्दर कार्यक्रम सपन्न हुआ।

इस अवधि म आश्रम के सामूहिक कार्यक्रमो की औसत उपस्थिति निम्नानुसार रही —

	प्रात प्रार्थना	साय-प्रार्थना	सूतयज्ञ
जनवरी	२७	२१०५	१३
फरवरी	२३	२५	११

सुबह प्रतिदिन आधा घटा सामूहिक सफाई का कार्यक्रम नियमित रूपसे चला। औसत हाजरी ७ रही। इससे आश्रम-क्षेत्रका ही विशेष ख्याल किया गया। सप्ताह में एक दिन दोपहर ४ से ५ तक सामूहिक सफाई का भी आयोजन नियमित रूप से चला। इस समय-आवश्यकतानुसार भिन्न भिन्न स्थानोपर सफाई की गई।

गोबर गॅस तथा खाद भडार की जिम्मेवारी का विशेष आयोजन किए जाने के कारण इस अवधि म गॅस का उपयोग भी शुरू हुआ हैं। दो परिवार इस योजना से लाभ उठा रहे है। और परिवारो को भी उपयोग करने के लिए निमंत्रित किया गया है। कम्पोस्ट बनाने का काम भी योजना बद्ध रूपसे आरंभ हुआ है।

आश्रम परिसर में मौके-बे-मौके रात में आनेवाले यात्रियो के सुविधा के लिए आश्रम प्रागण के एक कोने में प्रकाश का प्रबध किए जाने से काफी सुविधा हुई है।

तिथि के अनुसार महाशिवरात्रि (१६ फरवरी) और तारीख के अनुसार २२ फरवरी को कस्तूरबा के पुण्य स्मरण के कार्यक्रम आयो-

जित किए गए थे। इन कार्यक्रमों में महिलाश्रम वर्धा की प्रशिक्षार्थिनियाँ, सेवाग्राम की महिलाएँ तथा आश्रम परिसरमें रहनेवाले परिवारों की महिलाएँ सहभागी हुईं। बालक वर्ग तथा प्राथमिक वर्गों के ग्राम विद्यालय-विद्यार्थिनियों ने "मातृ दिवस" का यह कार्यक्रम नीचे लिखे अनुसार मनाया।

(१) बालकों द्वारा "मातृ सेवा संकल्प" वाचन

(२) बच्चों के सांस्कृतिक कार्यक्रम

(३) माताओं ने भक्तिगीत गाया तथा सौ मदालसा बहन, निर्मला बहन गांधी तथा रमाबहन के आशीर्वादात्मक भाषण इस कार्यक्रम की विशेषताएँ रहीं।

आश्रम प्रतिष्ठान के कस्तूरबा महिला मंडलने उक्त कार्यक्रमों का आयोजन किया था। आश्रम प्रतिष्ठान में संपन्न होनेवाले सांस्कृतिक कार्यक्रम कस्तूरबा महिला मंडल की ओर से ही किए जाते हैं। यह महिला मंडल इस अवधि में काफी सक्रिय रहा। सदस्यों ने सुतली तथा ज्यूट की थैलियाँ बुनना, धनिया पावडर बिक्रीके लिये बनाना, ये कार्य इस अवधि में किए। मूंग वड़ी पापड आदि बनाने का भी आयोजन किया जा रहा है। नागपुर के रेल्वे कर्मचारी महिला समिति की ओर से निमंत्रण आने पर हमारे महिला मंडल की ८ बहनें श्रीमती निर्मला बहन गांधी के साथ वहाँ का कार्य देखने के लिए गई थी। वहाँ के कार्य-निरीक्षण और जानकारीके बाद—

(१) संतरे का टिकाऊ रस बनाना तथा साबुन बनाना जैसे गृहोद्योग भी शुरू करने का महिला मंडल का विचार हो रहा है। इस यात्रा से बहनों की दृष्टि विकसित होने में काफी मदद हुई।

खेती की फसलें जैसे ज्वारी, कपास आदि अब घर आ चुकी हैं। ज्वार की फसल इस वर्ष काफी अच्छी हुई। अन्य किसानों के अनुपातमें आश्रम की कपास की फसल अच्छी रही। मार्च अंत तक गेहूँ भी आ जाएगा। गोशाला में गायों का स्वास्थ्य अच्छा है।

आश्रम दर्शन के लिए आनेवाले देशी-विदेशी अतिथियों को यहाँकी कार्य-प्रणाली से समाधान होता है। आश्रम के सारे सामूहिक कार्यक्रमों में ये अतिथिगण नियमित रूप से सक्रिय भाग लेते हैं।

फरवरीके प्रथम सप्ताह में हालैंड की एक बहन "लुईस" आश्रम में कताई सिखने के हेतु आई। उसके कताई सिखाने का प्रबंध किया गया। तकली, चर्खा, अंबर चर्खा तुनाई ये सारी प्रक्रियाएँ उन्होंने सीख ली और खुद के काते हुए सूत से कपडा भी स्वयं बुनकर तैयार किया। शिक्षक के सहकार्य से उन्होंने ये सारी प्रक्रियाएँ एक माह की अवधि में पूरी की। फरवरी के अंत में वे समाधान और प्रेमपूर्वक आश्रम से बिदा हुई।

आश्रम प्रतिष्ठान के सक्रिय प्रयास से सेवाग्राम के बेघरों के लिए जमीन प्राप्त हुई और मकान तैयार हो पाए हैं।

केन्द्रीय शासन द्वारा बडे पोस्ट आफिस का कार्य भी अब मार्च में प्रारंभ होगा। सारी पूर्व क्रियाएँ पूरी हो गई हैं।

सेवाग्राम यात्री-निवास का कार्य प्रगति पथ पर है।

—शं. प्र. पांडे
कार्य मंत्री

■

मानव का जीवन एक बहता हुआ झरना है। भारत की प्राचीन आत्म-ज्ञान शक्ति और विश्वकी अर्वाचीन विज्ञान शक्ति का आज योग हुआ है। ज्ञान और विज्ञान का जहाँ योग होता है वहाँ सब तरह का क्षेत्र आ जाता है लेकिन तब जब कि उस ज्ञान-विज्ञान का हम अपनी जीवनचर्या में सम्यक् प्रवेश करें। स्वराज्य और सर्वोदय में ये दोनों विचार धाराएँ विधिवत् सम्मिलित हैं। ये ही हमें सामाजिक एकता भ्रातृभाव और करुणापूर्ण मैत्री सत्यतत्त्व की ओर ले जा सकती हैं।

—ऋषि विनोबा

नयी तालीम फरवरी-मार्च '७७

रजि० सं० WDA/1 लायसेंस नं० ५

मुद्रक : शंकरराव लोंढे, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा

नयी तालीम

सम्पूर्ण जीवन की तालीम
लोकशक्ति को मजबूत करना है
"अभयम सत्त्वसशुद्धि "
नई तालीम के लिए सब का सहयोग
पश्चिम में युवको का एक उत्साह-वर्धक प्रयोग
महिलाओ का महिलाथ
आचार्य वशीधर की स्मृति में

अखिल भारत नयी तालीम समिति

सेवाग्राम

वर्ष : २५] अप्रैल–मई, १९७७ [अंक : ५

अनुक्रम

हमारा दृष्टिकोण

सम्पूर्ण जीवन की तालीम [illegible]

लोकशक्ति को मजबूत करना है २१७

'अभयम् सत्वसंशुद्धि' २२१

नई तालीम के लिए सबका सहयोग २३०

पश्चिम में युवकों का एक उत्साहवर्धक प्रयोग २३९

महिलाओं का महिलाश्रम— २४५

आचार्य बदीधर की स्मृति में २५३

अप्रैल–मई '७७

* 'नई तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नई तालीम' का वार्षिक शुल्क बारह रुपए है और एक अंक का मूल्य २ रु है।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी संख्या लिखना न भूलें।
* 'नई तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नई तालीम समिति सेवाग्राम के लिए प्रकाशित और
राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

हमारा दृष्टिकोण

वर्ष : २५
अंक : ५

एक अहिंसक क्रान्ति

विश्व इतिहास में लोकसभा के निकट में हुए चुनाव, वास्तव में ही, एक अपूर्व अहिंसक क्रान्ति के द्योतक हैं, छ विदेशी समाचार-पत्रों ने उसको राजनीतिक भूचाल कहा है। गांधीजी के तेजस्वी नेतृत्व में सत्य और अहिंसा द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति भारत की एक विशेषता थी। अब स्वराज्य के तीस वर्ष के बाद भारतीय जनता ने निर्विवाद रूपसे इसका प्रमाण दे दिया है कि ऐसी सरकार को जिसने सत्ता के अहंकारसे जनता के मौलिक अधिकार समाप्त करके सगठित रूप में स्वेच्छाचारी हिंसा का सहारा लिया है, बगैर रक्तपात अथवा हिंसात्मक उथल पुथल के, हटाया जा सकता है। इससे सम्पूर्ण भारतीय जनता की, चाहे वह शहरी हो अथवा देहाती, विवेकपूर्ण समझ तथा राजनीतिक परिपक्वता में हमारा विश्वास और भी दृढ होता है। हमारे देश के लोग भले निरक्षर और निर्धन हो, किन्तु उनमें भारतीय संस्कृति के सार-तत्व मौजद हैं। किसी अन्य देश में इन परिस्थितियों का परिणाम रक्तमय संघर्ष तथा जनहिंसा ही होता। किन्तु भारतीय जनता ने बडी दृढता और शांतिपूर्ण ढग से मतदान के अपने लोकतान्त्रिक अधिकार का उपयोग एक सगठित और सहज तरीके से किया है।

इन चुनावो ने यह भी पूर्णतया सिद्ध कर दिया है कि यदि कोई व्यक्ति अथवा समुदाय अपने प्रिय ध्येयो की प्राप्ति के लिए अशुद्ध भ्रष्ट और निरकुश तरीको को अपनाता है, तो वह अवश्य ही असफल होगा। गाधीजी ने इसपर निरन्तर बल दिया था कि अशुद्ध साधनो द्वारा अच्छे ध्येयो की प्राप्ति कदापि नही हो सकती है। साधन-शुद्धि का नैतिक नियम प्राकृतिक नियमो की भाँति ही अकाट्य है। ईश्वरी न्याय का चक्र, धीमी गति से ही क्यो न चलता प्रतीत होता हो, अपना काम, व्यक्तियो और सगठनो का लिहाज न करते हुए, निश्चित ढग से करता ही रहता है। इसके बारे मे शका की कोई गुजाइश नही है।

हम नये प्रधानमत्री श्री मोरारजी देसाई तथा उनकी सरकार का हृदय से स्वागत करते है, और हमें आशा है कि शासक दलोने राजघाट समाधि पर जो पवित्र संकल्प लिया है उसके अनुसार प्रशासन खादी तथा विकेन्द्रित उद्योगो द्वारा पूर्ण रोजगारी की व्यवस्था करेगा और इस प्रकार देश के दुर्बलतम लोगों के कल्याण को सबसे ऊँची प्राथमिकता देगा। हमें इसका विश्वास है कि जितनी जल्दी सभव होगा, प्रधानमत्री श्री मोरारजी देसाई मद्यनिषेध सबधी सवैधानिक निर्देश को अमली रूप देंगे जिससे कि निर्धनतम जनता का, विशेष रूप से आदिवासी, हरिजन तथा मजदूरी करने वालो का, रहन सहन ऊँचा उठ सके। यह बात हम सभी को साफ होनी चाहिए कि मद्यनिषेध कोई 'गाधीवादी सनक' नही है। यह एक ऐसा केन्द्रीय समाज-आर्थिक सुधार है कि जिसके बिना इस प्राचीन देशमें गरीबी दूर करने का हमारा विचार कोरा सपना ही रह जाएगा। बिना देरी किए शिक्षा-व्यवस्था में उत्पादन और सृजनात्मक प्रवृत्तियों को शामिल करके, उसको भी बुनियादी शिक्षा की दिशा में ले जाना होगा और सबसे प्रमुख बात तो यह है कि राष्ट्र-निर्माण के महत्वपूर्ण कार्य में हमको इसका पूरा ध्यान रखना होगा कि समाज में सभी धर्मों के प्रति समान आदर की भावना, जिसको गाधीजी 'सर्व-धर्म समभाव' कहते थे, मजबूत बने।

यह स्पष्ट ही है कि नई सरकार को दक्षिण भारत की जनता का, जिसने दूसरे मत का समर्थन किया है, विशेष ध्यान रखना होगा ताकि

राष्ट्रीय एकता बनी रहे और सुदृढ हो। इसकी हमें प्रसन्नता है कि प्रधानमत्री ने दक्षिण को पुन यह आश्वासन दिया है कि नई सरकार का जरा भी यह विचार नही है कि उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई भाषा उनपर लादी जाए। सभी युगो में भारत की एकता और शक्ति का सूत्र 'विविधता में एकता' रहा है और हमें किसी भाँति भी ऐसा कोई काम नही करना चाहिए जिससे हमारे दक्षिणी देशवासियो की भावना को ठेस लगे।

मेरे विचार में भारत की विभिन्न समाचार एजेन्सियो को जबरन मिलाकर 'समाचार' की स्थापना एक अत्यन्त ही दुखदायी बात रही है। इस प्रक्रिया में पिछले १९ महीनो में प्रेस की स्वतत्रता को कुचला गया है। इस गलत बात को ठीक करने का प्रयास शीघ्रातिशीघ्र किया जाना चाहिए। एक ऐसे स्वतत्र और भयमुक्त प्रेस के अभाव में, जो स्वय अपने द्वारा तैयार आचार सहिताका पालन करके अपने ऊपर अकुश रखनेवाला हो, लोकतत्र और स्वतत्रता स्थायी रूप से अपना मूल्य खो बैठती है।

हमें आशा है कि निकट के चुनावो में जिन विभिन्न राजनीतिक दलोने जनता की भावनाओ और आकाक्षाओ को व्यक्त किया है, वे राष्ट्रीय एकता तथा जनकल्याण के लिए अपने सकीर्ण सामूहिक स्वार्थों को छोडकर काम करेंगे। यह न शत्रुता मानने का समय है और न प्रतिशोध लेने का। जनता के तमाम भागो को गरीबो के आँसुओ को पोछने के लिए, विशेषतया उन असहाय करोडो के जिनको गरीबी की रेखा के नीचे जिंदगी बितानी पडती है, पक्के इरादे और दृढता के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना होगा।

नई तालीम की ओर

हमें खुशी है कि नये केन्द्रीय शिक्षा मत्री डा प्रतापचद्र चदर अब भारत में उच्च शिक्षा के बजाय प्राथमिक शिक्षा पर अधिक जोर दे रहे हैं। अपने भाषणो में उन्होने भारतीय जनता की निरक्षरता को शीघ्र ही दूर किए जानेपर बल दिया है। ये उद्देश्य सराहनीय हैं और जनकल्याण के लिए उन्हें तेजीसे कार्यान्वित करना हितकर होगा।

किन्तु शिक्षा पद्धति में कुछ आमूल सुधार किए विना प्राथमिक शिक्षा का फैलाव और प्रौढ़ों की निरक्षरता को दूर करने से ही हमारी बुनियादी समस्याएं हल न हो सकेंगी।

मुझे इसमें तनिक भी सदेह नही है कि शहरों और देहातों में प्राथमिक शिक्षण अधिक व्यापक बनाने से ही हमारा काम नहीं चलेगा। यदि हमारी शिक्षा पद्धति महात्मा गाधी की बुनियादी तालीम के मूलभूत सिद्धान्तों के अनुसार न ढली गई और प्राथमिक व माध्यमिक स्कूलों में उत्पादक श्रम द्वारा विभिन्न विषयो की तालीम न दी गई तो भारतीय जनता के सामाजिक और आर्थिक उत्थान का हमारा पावन उद्देश्य स्वप्न ही रह जाएगा। यदि हमने श्रम के लिए प्रतिष्ठा का वातावरण बनाए विना ग्रामीण क्षेत्रो में बहुत-सी प्राथमिक और माध्यमिक शालाएँ खोल दी तो लाभ के स्थानपर नुक्सान ही होगा, और जो बच्चे कृषि और पशुपालन में अपने माँ-बाप की इस समय सहायता दे रहे है वह भी बद हो जाएगी। यह अत्यत दुःख का विषय है कि वर्तमान शिक्षा हमारे नवयुवकों को 'बाबू' बना देती है और वे अपने परिवार व समाज के लिये निकम्मे बन जाते हें। अतः यह बिलकुल आवश्यक है कि नई जनता सरकार अब बुनियादी तालीम को ईमानदारी से मान्यता दें और १०—२—३ के नये शिक्षाक्रम में समाज उपयोगी और उत्पादक श्रम को समूचित स्थान दें। 'कार्य अनुभव' के नामपर सप्ताह में सिर्फ २–४ पिरियड समय-पत्रक में जोड देने से कुछ भी फायदा नही होगा। एक प्रकार से यह एक मंहगा किन्तु निष्फल प्रयोग होगा। हम उम्मीद रखते है कि केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय अब बुनियादी तालीम को पूरे उत्साह व श्रद्धा से सारे देश में लागू करने का प्रयत्न करेगा, ताकि शिक्षा द्वारा हमारी सामाजिक और आर्थिक समस्यायें ठीक ढगसे हल हो सकें।

यह भी स्पष्ट है, कि केवल निरक्षरता दूर करनेसे प्रौढ शिक्षा का उद्देश्य सफल न हो सकेगा। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी हमेशा कहते थे कि देहाती जनताको केवल साक्षर बनानेसे कोई प्रयोजन नही होगा। हमारे प्रौढों को तो साक्षरता द्वारा ऐसी शिक्षा देनी होगी जिसका उनके दैनिक जीवन में उपयोग हो और जिसके द्वारा वे अपनी कार्यक्षमता बढाकर अपनी निजी आमदनी में इजाफा कर सकें। पूज्य बापूजी चाहते थे कि

प्रौढ शिक्षा भी बुनियादी तालीम के सिद्धान्तो के अनुसार दी जाए। नही तो अर्थ का अनर्थ ही होगा।

दस वर्ष की बुनियादी शिक्षा के बाद हमें दो वर्ष के ऐसे बहुत से व्यावसायिक और तकनीकी पाठ्यक्रम तैयार करने होंगे जिनके द्वारा विद्यार्थी पासपडोस के गांवो की वास्तविक आवश्यकताओ की पूर्ति कर सके और विभिन्न विकास योजनाओ के कार्यान्वयमें सहायक हो। हमारा यही प्रयास होना चाहिए कि दस वर्ष की शिक्षा के बाद कम से-कम पच्चास फी सदी छात्र इन व्यवसायी अभ्यास क्रमो को पूरा कर प्रत्यक्ष कामो में लग जाएँ और स्वावलम्बी ढग से अपना जीविकोपार्जन कर सकें। यदि ऐसी व्यवस्था न की गई तो हमारे कालजो और विश्व-विद्यालयो में प्रवेश के लिए भीड कम न होगी और बेकारी की समस्या ज्यो की त्यों बनी रहेगी। हाँ इन व्यवसायी अभ्यासक्रमों को पूरा करने के बाद यदि भविष्य में कोई भी नवयुवक उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहता है तो उसके मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट नही रहनी चाहिए।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी व्यवसायी और तकनीकी पाठ्य-क्रमो पर अधिक ध्यान दिया जाना जरूरी है ताकि कई प्रकार के विकास कार्यकलापोके लिए प्रशिक्षित कार्यकर्ता प्राप्त हो सकें। इस समय तो हमें अजब पहेली का सामना करना पड रहा है। एक ओर तो हजारो-लाखो पढ़े लिखे नवजवान बेकारी के शिकार बन रहे हैं, और दूसरी ओर ऐसे बहुतसे काम अधूरे पडे हैं जिनको चलाने के लिये योग्य नवयुवको की सेवाएँ उपलब्ध नहीं हैं। सचमुच यह बहुत ही रज का विषय है।

हमारी श्रद्धा है कि नई जनता सरकार शिक्षा सुधारको प्राथ-मिकता देगी और नई शिक्षा पद्धति को बडी तत्परता से लागू करेगी। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस महत्वपूर्ण कार्य में अखिल भारत नई तालीम समिति सब प्रकार से शासन की सहायता करने के लिए हमेशा तैयार रहेगी।

सम्पूर्ण जीवन की तालीम

[अक्टूबर १९४७ में भगी कालोनी की एक प्रार्थना सभा के अवसर पर महात्मा गांधीजी ने नई तालीम के सबध में नीचे लिखे अतिम विचार प्रकट किये थे। नई तालीम सम्बन्धी बापूजी के ये अतिम विचार हैं। आशा है पाठक उनसे लाभ उठाएँगे।]

नई तालीम जीवनदायिनी है जब कि विदेशी सरकार द्वारा दी गई शिक्षा अनिवार्य रूप से जीवन-विनाशिनी थी। उसने भारतीय सम्पत्ति का ह्रास किया, उसकी भाषाओ को दीन-हीन बनाया और सबको गुलाम।

नई तालीम सम्पूर्ण जीवनको समाहित करती है। अनुभवसे यह सिद्ध है कि उसमें महान सम्भावनाएँ है, वह गर्भ से प्रारम्भ होती है और जीवन के साथ ही समाप्त होती है। उसने सभी भारतीय स्त्री-पुरुषो को नया जीवन दिया। आरम्भिक पूंजीगत खर्च के सिवाय इसमें और कोई खर्च नही है। शिक्षकगण भी अपनी जीविका अर्जित कर लेते है। यह जीवन की कला है अत शिक्षक और विद्यार्थी को अध्यापन और अध्ययन की प्रक्रिया में ही उत्पादन भी करना पडता है। प्रारम्भ से ही यह जीवन को सम्पन्न बनाती है।

यह राष्ट्रको रोजगार की खोज से स्वतत्रता की दृष्टि दिलाती है। जहाँ हमारी वार्षिक आय प्रति व्यक्ति केवल ६० रुपए थी, नई तालीम ने उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि की है। ग्रामीण अब केवल सत्तू के भोजन, गन्दे नमक और फटे कपडो से ही सन्तुष्ट नही रहेंगे वरन् अपने द्वारा बुनी स्वच्छ शुभ्र खादी के परिधान और अपने द्वारा ही उत्पादित दूध, फल, ताजा सब्जी का सतुलित भोजन भी उन्हें उपलब्ध होने लगे है। यह नई तालीम का ही शुभ परिणाम है। इसकी सफलता स्वतत्र भारतके प्रत्येक नागरिक की इच्छा शक्ति एव किए गए पुरुषार्थ पर निर्भर है।

नागरिको के उदार सहयोग के बिना एकमात्र सरकार के लिए सब कुछ कर सकना सम्भव नही है और जो सरकारें, इस महान कार्य के लिए आवश्यक अति साधारण उपकरण भी नही जुटा सकती वे जिस नमकको खाती हैं उसके भी योग्य नही है।

लोकशक्ति को मजबूत करना है

: विनोबा :

इस समय समस्त राजनैतिक पक्षोंकी हालत बडी दयनीय है। वे सारे के सारे सत्ता प्राप्ति में लगे हुए हैं। एक सत्ताधारी है तो दूसरा सत्ताभिलाषी। सभी सत्ता के इर्द गिर्द चक्कर लगा रहे हैं। उनका दारोमदार ही सत्ता है। सत्ता से ऊपर उठकर सोचने का सामर्थ्य अभी उनमें नही है।

लोगो के पास नेता जाते है, तब सिर्फ इतना ही देखते है कि उनकी पार्टी को 'वोट' मिले या नही। सत्ताधिकारी पक्षवाले हो तो वे अपने अच्छे कामो की फेहरिस्त पढ देते है और सत्ताकांक्षी पक्षवाले हो तो सरकारके बुरे कारनामो का इजहार करते है। पक्षवालो का काम ही यह है कि अपने लिए अनुकूल मत और दूसरे के लिए प्रतिकूल मत निर्माण करना। सभीका आखिरी उद्देश्य होता है चुनाव जीतना। दोनो सरकारपरायण तथा सरकार के उपासक होते है। कुछ लोग लक्ष्मण, भरत और हनुमान राम की भक्ति करते थे, वैसे ही अन्य रावण और कुंभकर्ण की भक्ति करते थे। दोनो की दो प्रकार की भक्ति थी। वैसे ही ये पक्षवाले भी दो प्रकार के लोग है। फरक सिर्फ इतना ही है कि ये भगवान की जगह सरकार को मान्यता देते है। एक सरकार की स्तुति करता है और दूसरा निन्दा। इनके पास तीसरा कोई धन्धा नही है। इनकी दशा बडी ही दयनीय है।

नैतिक मूल्यो की गिरावट का सबसे बडा कारण लोगो का यह विश्वास है कि हम सारा काम सत्ता के जरिए करेंगे। इसीलिए सारी योजना सत्ता प्राप्त करने की ही बनायी जाती है। सत्ता-प्राप्ति के बाद फिर आपसमें भीतरी संघर्ष शुरू हो जाता है। कोई सत्ता में चला गया और कोई नहीं जा सका तो उनका आपस में मत्सर शुरू हो जाता है। अमुक शख्स सिर्फ ६ साल जेल में था, वह तो मंत्री बन

गया और मैं ६ साल जेल में था, फिर भी मुझे मंत्री नहीं बनाया गया।' इस प्रकार के व्यवहार का परिणाम यह हुआ है कि जनता में पुरुषार्थ-हीनता आ गई है।

जनता में एक पक्ष का नेता जाता है, दूसरे पक्ष के नेता को गाली देता है। दूसरे पक्षका नेता भी जाकर वही काम करता है। जनता दोनो की गालियाँ सुनती है, दोनो की गालियाँ इकट्ठा करती है और फिर दोनो को गालियाँ देती है। मतलब यह कि जनता में अब किसी के लिए कोई आदर नहीं रहा है। ऐसी आदर-शून्य जनता से हिन्दुस्तानकी तरक्की कैसे होगी?

आज वेलफेयर स्टेट (कल्याणकारी राज्य) के नाम पर हमने सरकार के हाथमें सारी सत्ता सौंप दी है। आपके बच्चो की तालीम, जमीन के कानून लडको की शादियाँ, उद्योग व्यापार, व्यवहार आदि सब सरकार के हाथ में है। याने आपके कुल जीवन में सरकार का दखल होगा। आपके जीवन का एक भी पहलू ऐसा नहीं होगा, जिसपर सरकार की पकड न हो। आज विज्ञान के कारण सरकार के हाथ में जो साधन आ गए हैं उनसे वर्तमान सरकार की हमारे जीवन पर जो पकड है, उतनी पकड औरंगजेब की भी नहीं थी। वह हुक्म करता था, तो किसी सरदार के पास उसका हुक्म पहुँचनेमें ही दो-चार महीने लग जाते थे, फिर सरदार उसपर अमल करने, न करनेमें ही समय लगा देता था। लेकिन आज तो सरकार का हुक्म कुछ मिनटो में सारे देश भर में पहुँच जाता है और एकाध घण्टे में उसपर अमल भी हो जाता है। इस प्रकार विज्ञान के जमाने म आपने वेलफेअर स्टेट के नाम पर सरकार के हाथ में ऐसी सत्ता सौंपी है कि वह आपके जीवन को पूरी तरह कस सकती है। आपकी कोई आजादी नहीं रह सकती।

हिन्दुस्तान के लोग अभी अपनी शक्ति का अनुभव नहीं कर रहे हैं। आज सभी यह मानते हैं कि जो कुछ काम करना है, वह सरकार करेगी। हमसे क्या कोई काम हो सकता है? यह अन्दरूनी गुलामी है। मैं मानता हूँ कि देश के लिए इससे बढ़कर दूसरा कोई खतरा नहीं हो सकता।

इस देश में व्यक्तिगत सकल्प बहुत होते हैं, लेकिन सामूहिक सकल्प हो सकता है, इसका अहसास अभी नही हुआ है। लोग समझते हैं कि हमें जो कुछ करना है, वह व्यक्तिगत जीवन के लिए करना है। समूह के लिए सब कुछ सरकार करेगी। यह कितनी भ्रान्त धारणा है।

अब आपके सामने मसला पेश है कि लोकशाही में आप गुलाम बनना चाहते हैं या हुकूमत चलाना चाहते हैं? गुलाम बनना चाहते हैं तो इस प्रकार अलग अलग रहनेपर सरकार फिर आपको वस लगी। फिर मृत्युकर आदि जो भी लगाए, आप उसपर रोइए मत। लेकिन आप सरकारको नौकर की हैसियत से रखना चाहते हैं तो आपको एक जमात बनना पडेगा। आज कल अमृत वेला में भी सरकार का नाम चलता है। हर कोई कहता है सरकार यह करे, यह न करे। बडे-बडे विद्वान भी अपने को लाचार समझते हैं। क्या विद्वान देश को तालीम नही दे सकते? विद्वानों की सत्ता अगर कही चलगी तो तालीम पर ही चलेगी। लेकिन आज वे भी समझते हैं कि तालीम तो सरकार ही देगी। क्योंकि तालीम का महकमा सरकार को सौंपा गया है। सरकार जो पाठ्य पुस्तकें मुकर्रर करगी वे कितनी भी रददी क्यो न हो, लेकिन कुल बच्चो को उनका अध्ययन, चिन्तन, मनन, रटना करना पडेगा। उस परीक्षा में पास होना पडेगा, तभी नौकरी मिलेगी। यह कितनी भयानक गुलामी है कि अपने देशमें, गाँव में घर में अपनी न चले। अपने बच्चोकी तालीम में, शादियों में, व्यापार-व्यवहार में भी अपनी न चले। इस नाम मात्रकी लोकशाही से सारी सत्ता सरकार के हाथो सौंपी जाती है। तो क्या ऐसी भयानक लोकशाही सहन करने लायक है?

यदि हम स्वतंत्र काम नही करते और केवल सरकार की ही मदद लेते हैं तो सरकारकी शक्ति की पूर्ति नही करते। फिर सरकार मदद करने के लिए तैयार होती है तो आलसी लोग उसी को चाहने लगते हैं। खुद कुछ काम नही करते।

एक कार्यकर्ता ने एक गाँव में दस वर्ष तक खूब काम किया, अच्छा काम किया। बाद में उसे सरकार मदद देने के लिए तैयार हुई।

फिर तो गाँव के लोगों को जो भी मदद अपेक्षित होती, वे आकर उसी से माँग करने लगते। फिर गाँव के लोगों से मदद पाने की बात तो दूर रही, वह कार्यकर्ता सरकार की ओर से मदद दिलाने वाले के रूप में जाहिर हो गया। वह लोगों से कहता है कि 'आप इतनी मदद करें तो वे कहते हैं कि आप ही मदद दिलाइए। आखिर उस बेचारे को गाँव छोडकर चला जाना पडा। इसी तरह आलसी को सरकारी मदद मिल जाए तो वह सवाया आलसी हो जाता है। कम्युनिटी प्रोजेक्ट का वरदान भी लोगों के सिरपर बारिश की तरह बरस पडा है। प्रोजेक्ट के लोग अस्पताल खुलवा दें, कुएँ खुदवा दे तथा पाँच-सात साल तक मदद देते रहें और बाद में समेट ले तो अस्पताल बन्द करने का कलंक गाँववालोंपर लगेगा। कहने का आशय यह है कि जब तक जनता का उत्थान जनशक्ति से नहीं होता तब तक ऊपर की बारिश किसी काम की नहीं है। भले ही ऊपर से अच्छी बारिश हो पर यदि हम खेत जोते बोएँगे नहीं तो अनाज कहाँ से पैदा होगा? स्वराज्य पाने का अर्थ इतना ही है कि दूसरे के आधीन जो खेत था वह हमारे हाथ आ गया। अब यदि हम उसे जोते बोएँगे नहीं, परिश्रम न करेंगे तो सुख कैसे मिलेगा? स्वराज्य आने का अर्थ भोग भोगना नहीं बल्कि स्वराज्य के बाद मिलकर लोक-शक्ति से मजबूत काम करना है। खेद है कि हम लोग यह बात भूल गए हैं।

❀

गलतियाँ करके, उनको मंजूर करके और उन्हें सुधार करके ही मैं आगे बढ सकता हूँ।

ठोकर लगे और दर्द उठे तभी मैं सीख पाता हूँ।

—महात्मा गांधी

[साहित्य परिचयसे]

" अभयम् सत्त्वसंशुद्धिः "

श्रीमन्नारायण

गीता के सोलहवें अध्याय में भगवान् कृष्ण ने दैवी सम्पदा को प्राप्त पुरुषो के गुणो का विस्तार से विवेचन किया है। इन छब्बीस दवी गुणो में सर्वप्रथम 'अभय' को स्थान दिया गया है —

'अभय सत्त्वसशुद्धि ज्ञान योग व्यवस्थिति'

, निर्भयता के पश्चात् ही फिर अन्त करण की शद्धता, ज्ञानयोग, दान, दम, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य व अक्रोध आदि का क्रम बताया गया है। इसीलिए गांधीजी हमेशा समझाया करते थे कि सच्ची अहिंसा निर्भयता के विना सम्भव नही है। वे वीरों की अहिंसा पर जोर देते थे, कायर लोग अहिंसक सत्याग्रही नही बन सकते —

"हरिनो मारग छे शूरानो, नहि कायरनुं काम जोने,
परथम पहेलुं मस्तक मुकी वळती लेवुं नाम जोने।'

भारत के स्वातन्त्र्य-सग्राम के शुरू में हिंसा के औजार का प्रयोग किया गया। बगाल व अन्य प्रदेशों के 'क्रान्तिकारियो' ने सोचा कि वन्दूक और वम्ब के बल पर वे अंग्रेजो को डराकर हिन्दुस्तान से भगा सकेंगे। लेकिन हिंसा के कारण प्रतिहिंसा की प्रक्रिया होना स्वाभाविक था। अंग्रेजो के दमन-चक्र की वजह से देश में भय का वातावरण फैला और स्वराज्य की लडाई को धक्का पहुँचा। फिर वापू ने सत्याग्रह व अहिंसक असहयोग द्वारा भारत की जनता को निर्भय बना दिया और सन् १९४२ की 'भारत छोडो' क्रांति के समय तो छोटे बच्चे भी निडरता से नारा लगाने लगे— 'क्विट इण्डिया।' आखिर अंग्रेजी साम्राज्य को, जिसके ऊपर सूरज कभी डूबता न था, हिन्दुस्तान से बोरिया-विस्तर बाँध कर कूच करना पडा।

* * * *

१९३१ में जब महात्माजी गोलमेज परिषद् में भाग लेने के लिए लन्दन गए तब सभी भारतीय प्रतिनिधियों को वकिंघम पॅलेस में

एक स्वागत-समारोह के लिए आमंत्रित किया गया। राजभवन के अधिकारियों को परेशानी हुई कि 'नंगे फकीर' गांधी को किस तरह बुलाया जाए। उसकी अर्ध नग्न पोशाक,को देखकर ब्रिटिश महिलाएँ तो बहुत बुरा मानेंगी। लेकिन गांधी को टालना भी मुमकिन नहीं था, क्योंकि वह भारत के सबसे बडे राजनीतिक दल कांग्रेस, का एकमात्र प्रतिनिधि था। इसलिए उन्हें आमंत्रण तो भेजना ही पडा। गांधीजी को देखते ही पंचम जार्ज बादशाह क्रोधमें आकर बोल पडे— 'गांधी, आपने मेरे प्रिन्स आफ वेल्स का दस वर्ष पहले बायकॉट कराकर अपमान किया और अब मेरे साम्राज्य को समाप्त करने पर तुले हैं। यदि आपका ऐसा ही व्यवहार रहा तो हमें शायद बॉंब का भी इस्तेमाल करना पडे।' चारों ओर सन्नाटा छा गया। किंतु गांधीजी ने मुस्करा कर उत्तर दिया— "महाराजाधिराज भारत के मेरे बच्चे ब्रिटिश बम्बों को आतिशबाजी का पटाखा समझते हैं।" ऐसी थी बापू की अहिंसक निर्भयता जिसकी वजह से सदियों से भयभीत भारत देश उठ खडा हुआ और गुलामीकी जंजीरें टूट कर तितर बितर हो गईं।

* * * *

जब हम आगरा कालिजमें विद्यार्थी थे तब गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की "गीतांजलि" नवयुवकों में बडी लोकप्रिय थी। पराधीन भारत के इस महान कवि को जब १९२१ में नोबल प्राइज प्रदान किया गया तो सारा राष्ट्र गौरवान्वित हुआ और विद्यार्थियों के हृदयों में देश प्रेम उमड आया। बाद में कविवर टैगोर को ब्रिटिश साम्राज्य ने 'सर' की उपाधि से विभूषित किया। जब भारत में अँग्रेजों का दमन-चक्र तेजी से चला तो टैगोर ने 'सर' के खिताब को ठुकरा भी दिया और वे राष्ट्र के गुरुदेव बने। उन्होंने 'गीतांजलि' की एक मशहूर कविता में देश के सम्मुख एक भव्य दर्शन पेश किया था—

> 'Where the mind is without fear,
> and the head is held high,
>
> * * * *
>
> Into that heaven of freedom, of father
> let my country awake!'

अर्थात् जहाँ जनता का मन भय से मुक्त है, और लोग अपना माथा स्वाभिमान से ऊँचा रखते हैं—स्वतन्त्रता के ऐसे ही स्वर्ग में मेरा राष्ट्र अपनी आँखें खोले।

गुरुदेवकी इन पंक्तियों से सारे हिन्दुस्तान भर में राष्ट्रीय भावना की एक लहर उठी और उसने राष्ट्र को निर्भय बनाया। गाँधी और टैगोर भारत माता की दो उज्ज्वल आँखों के रूप में उभर आए।

* * * *

यह स्पष्ट है कि 'अभय' दैवी गुण आत्म-ज्ञान के बिना सम्भव नही हो सकता। इसीलिए गाँधीजी कहा करते थे कि सच्चा सत्याग्रही वही बन सकता है जिसकी परमेश्वर में अटूट श्रद्धा हो। अर्थात् जो अपनी आत्मा को भगवान् का ही एक अभिन्न अंश महसूस करता हो। इस अद्वैत पूर्ण जीवन-दर्शन के बिना हम सच्चे अर्थमें निर्भय बन ही नही सकते। कवि शिरोमणि सूरदास इसीलिए गाते हैं —

'सूर किशोर कृपा से सब बल
हारे को हरिनाम!'

और भक्त मीरा निडर होकर नाचती है —

'अब तो बात फैल गई, जाने सब कोई।
मीरा प्रभु लगण लागी, होनी होय सो होई!'

जीवन-मुक्त कबीर भी बिलकुल निर्भय होकर गुन गुनाते हैं —

'एक राम न छोडुँ गुरुहि गार,
मो को घाल जार चाहे मार डार।'

कवि श्री हरिदास ने भी स्पष्ट शब्दो में लिखा है —

आपु समान सबै जग लेखो,
भक्तन अधिक डरों॥
श्री हरिदास कृपाते हरि की
नित निर्भय विचरों '

रामायण में कविवर तुलसीदास ने 'राम रथ' का वर्णनकरते हुए 'सौरज' को ही प्रथम स्थान दिया है —

'सौरज धीरज तेहि रथ चाका।
सत्य सील दृढ ध्वजा पताका।'
और अन्त में —
'महा अजय संसार-रिपु,
जीत सकइ सो वीर।
जाके अस रथ होइ दृढ
सुनहु सखा मति-धीर।।"

किन्तु विजय तभी प्राप्त हो सकती है जब शौर्य के साथ 'धीरज' हो, और 'बल' के साथ 'विवेक' भी हो। भगवान् कृष्ण ने 'अभय' के तुरन्त बाद 'सत्वसंशुद्धि' याने हृदय की पवित्रता के दैवी गुण का महत्व बतलाया है। अगर हमारा दिल और दिमाग शुद्ध नहीं हो तो फिर हमारी निर्भयता एक ढोंग ही बन जाएगा और सफलता केवल मृग-तृष्णा की तरह दूर होती जाएगी।

* * * *

इन दिनों ऋषि विनोबा ने कई बार समझाया है कि सच्चे आचार्य वही है जो निर्भय, निर्वैर और निष्पक्ष हो। विनोबा के अनुसार 'निर्भय' की सही व्याख्या है— वह व्यक्ति जो स्वयं किसी से डरता नहीं, और जिससे कोई भी डरता नहीं। यह तभी सध सकेगा जब आचार्य निर्भय होने के साथ-साथ निर्वैर और निष्पक्ष भी हो और प्रत्येक विषय का चिन्तन तटस्थ ढंग से करे। संक्षेप में यही कहना चाहिए कि सच्चे अर्थ में निडर तभी कहलाया जा सकता है जब हम 'स्थितप्रज्ञ' बनें और सुख, दुःख, स्तुति, निन्दा से परे हो जाएँ। ऐसी अवस्था आत्म-साक्षात्कार के बिना संभव नहीं हो सकती। गुरु नानक ने सीधे-साधे शब्दों में कह दिया है— 'जन नानक बिनु आपा चीन्हें, मिटे न भ्रम की काई।' बस यही 'अभय' का बीज-मंत्र है।

ईसा मसीह ने अपने गिरि-प्रवचन में शिष्यों को यही उपदेश दिया कि नम्र, सदाचारी, सेवाभावी व शुद्ध-हृदयी बनो और फिर निर्भय होकर ईश्वर का शुभ-संदेश दुनिया भर में फैलाओ। तुम्हें कितनी ही यातनाएँ भोगनी पड़ें उनकी परवाह न करो, क्योंकि अन्त में स्वर्ग का राज्य तुम्हारा ही होगा।

मुहम्मद पैगम्बर भी इसी तरह का उपदेश अपने अनुयायियों को देते रहे— "तुम खुदा से डरो, और किसीसे खौफ न खाओ सचाई और सेवा के रास्ते पर मजबूत कदम से आगे चलते जाओ।"

भगवान बुद्ध ने 'धम्मपद' में भिक्षुओं को अनेक दृष्टान्त देकर यही उपदेश दिया है— 'अन्य प्रजाओं को जीतने की अपेक्षा स्वयं को जीतना श्रेष्ठ है।' जैन धर्म में भी बार बार समझाया गया है— "जो दुर्जेय संग्राम में हजारों-हजारों योद्धाओं को जीतता है उसकी अपेक्षा जो एक अपने को जीतता है उसकी विजय परम विजय है।"

मनुस्मृति में मनु महाराज ने तो राजाओं को आदेश दिया है कि वे अपनी प्रजा को अभय बनाएँ —

'अभयस्य हि यो दाता
स पूज्य सतत नृप।

जगद्गुरु आदि शंकराचार्य ने 'विवेक चूडामणि' में प्रतिपादन किया है कि विवेक-युक्त शूरवीर पुरुष ज्ञान-रूपी तलवार से मृत्यु को भी जीत लेता है —

'शूरो मृत्युं निहन्त्येव
सम्यग्ज्ञानासिना ध्रुवम्।'

इस तरह दैवी सम्पदा के 'अभय' गुण के गहरे अर्थ हैं। निर्भयता व शूरता तभी सात्विक व आध्यात्मिक कही जा सकेगी जब वह हमारी आत्मा को तेजस्वी बनाए और दूसरों को भी निरन्तर अभय दान देती रहे।

* * * *

गांधीजी अक्सर कहा करते थे कि अहिंसक निर्भयता की उज्ज्वल मिसाल सीमा प्रान्त के पठानों के नेता बादशाह खाँ हैं। वे शरीर से बलवान हैं, धक्का दें तो दो चार लोग एक साथ जमीन पर गिर पड़ेंगे, लेकिन शारीरिक शक्ति होते हुए भी खाँ साहब सच्चे मायने में अहिंसा की मूर्ति हैं। वे न किसी से डरते हैं, न किसीको डराते हैं।

बादशाह खाँ के गौरवपूर्ण व्यक्तित्व का परिचय मुझे नजदीक से सन १९६९ में हुआ जब वे गांधी-शताब्दी के अवसर पर बहुत वर्षों

बाद हिन्दुस्तान पधारे। चूँकि उसी वर्ष अहमदाबाद में हिन्दू-मुस्लिम गे हो चुके थे, खाँ साहब दिल्ली से गुजरात आए और अधिकतर हमारे पास ही राजभवन मे ठहरे। दिल्ली शासन से हमारे पास हिदायतें आई थी कि उनकी सुरक्षा का इन्तजाम प्रधान मंत्री की तरह ही किया जाए। लेकिन बादशाह खाँ तो बिलकुल निडर थे। वे मुझसे रोज कहते— "भाई, मुझे किसी तरह की हिफ़ाजत की जरूरत नहीं है। मेरे लिए एक टॅक्सी बुलवा दीजिए ताकि मैं शहर में जाकर जलाई गई मस्जिदों को देख सकूँ और शरणार्थियों से मिलकर उनकी कठिनाइयाँ समझ लूँ।" मैं नम्रता से उत्तर देता— "खाँ साहब, मैं खुद आपके साथ चलता हूँ। मेरी मोटर में ही बैठिए। मैं भी शरणार्थियों से मिलूँगा और उनकी मुसीबतें दूर करने की कोशिश करूँगा।" इस तरह करीब पन्द्रह दिनो तक मैं बादशाह खाँ के साथ अहमदाबाद की सड़कों पर घूमा, और गुजरात के दूसरे शहरों में भी गया। उन्हे अपनी सुरक्षा की जरा भी फिक्र नही थी। जहाँ जाते वहाँ हिन्दू-मुसलमान सभी उनका हार्दिक स्वागत करते थे। वे बच्चों के सिर पर अपना पाक हाथ रखते और उन्हें आशीर्वाद देते। आबाल-वृद्ध उनके दर्शन कर कृतार्थ हो जाते थे। मुझे अकसर महसूस होता कि स्वयं बापू ही उनके द्वारा गुजरात की जनता से बातें कर रहे हैं और उन्हें प्यार से डाँट भी रहे हैं। गाँधी जन्म-शताब्दी वर्ष में गुजरात में ही साम्प्रदायिक दंगे हो जाने से अधिक शर्मनाक बात और क्या हो सकती थी? कभी लगता था कि खुद ईसा-मसीह या मुहम्मद पैगम्बर पृथ्वी पर फिर से अवतरित हुए हैं, भूली हुई जनता को सत्य, प्रेम, करुणा और खिदमत की राह दिखाने के वास्ते। निर्भयता के साथ उनके दिल मे मुहब्बत व करुणा दिन-रात बहती रहती थी।

* * * *

सच तो यह है कि 'अभय' के संस्कार बच्चों को छुटपन से ही देने चाहिए। लेकिन हमारे घरों में माँ-बाप शुरू से बालकों को धमकाते रहते हैं। बच्चे ने जरा ऊधम किया कि झट पुलिस को बुलाने की धमकी दे दी गई, या भूत के आने का डर बता दिया गया। बच्चों

से झूठ बोलने में भी माता-पिता या नौकरों को तनिक भी सकोच नहीं होता। शिक्षा की दृष्टि से इस प्रकार का व्यवहार बहुत गलत है। बालकों को छोटी उम्र से ही डर, झूठ और हिंसा के सस्कार प्राप्त होते रहते है जिन्हें बाद में बदलना बडा मुश्किल हो जाता है। गाँधीजी भी छुटपन में बहुत डरते थे। रात में कही बाहर जाते तो उन्हें लगता कि पीछे-पीछे भूत आ रहा है। लेकिन उनकी माँ पुतलीबाई व रम्भा सेविका ने उन्हें 'राम-नाम' का मत्र दिया। राम का नाम लेते ही बालक मोहन का भय गायब हो जाता। अन्त तक यही 'हे राम' बापू के जीवन का साथी व मार्गदर्शक बना रहा।

विनोबाजी की माता रुक्मिणी देवी ने भी अपने 'विन्या' को निर्भयता की शिक्षा-दीक्षा प्रारम्भ से ही दी। एक बार तो आश्रम में सोते हुए विनोबाजी के शरीर पर रात को एक काला नाग चढ गया। वह पूरे शरीर पर इधर से उधर रेंगता रहा। लेकिन विनोबाजी बिलकुल डरे नहीं और साँस रोककर वैसे ही लेटे रहे। कुछ समय बाद वह साँप जमीन पर उतर कर चुपचाप दूसरी ओर चला गया। सुबह उठकर विनोबाजी ने यह वाकया मुस्कराते हुए अपने साथियो को सुनाया मानो कुछ खास बात ही न हुई हो।

* * * *

जब हम विद्यार्थी थे तो चारो ओर भय का वातावरण विद्यमान था। अँग्रेजी राज्य का बोलबाला होने के कारण हमें 'युनियन जॅक' झडे को सलामी देनी पडती थी और 'गाड सेव दि किंग' गीत मिलकर गाने के लिए मजबूर किया जाता था। कही 'वन्देमातरम्' राष्ट्र-गीत गा लिया तो बस पुलिस पीछे लग जाती।

फिर गाँधी-युग आया। उन्होने अहिंसा और सत्य द्वारा आम जनता को निर्भय बनाया। बापू ने हमें सिखाया कि कोई आन्दोलन छिपकर न करो, सब कार्यक्रम खुले आम किये जाएँ। १९३० की दाँडी-यात्रा और नमक सत्याग्रह में समूचे देश में निडरता की एक लहर फैल गई। और फिर आया १९४० का व्यक्तिगत सत्याग्रह जिसके प्रथम सत्याग्रही विनोबाजी बने, पडित जवाहरलाल नेहरू दूसरे सत्याग्रही थे।

भारत भर में नारा बुलन्द हुआ 'दूसरे महायुद्ध में अँग्रेजी हुकूमत की जन और धन से किसी तरह सहायता न की जाए।' हजारों स्त्री-पुरुष जेल में डाले गए, किन्तु डर का कोई माहौल ही नहीं बना। १९४२ की 'क्विट इण्डिया' क्रांति में तो देश का बच्चा-बच्चा बिलकुल निडर बन गया, और अन्त में अँग्रेजी साम्राज्य ने भारत से विदा ली।

अगस्त १९४७ में स्वराज्य प्राप्त होने के बाद हमारे नवयुवकों ने बड़ी योग्यता व हिम्मत से राष्ट्रीय जीवन के करीब सभी क्षेत्रों में सराहनीय प्रगति कर दिखाई। भारतीय विद्यार्थियों ने विदेशों के विश्व-विद्यालयों में भी प्रथम-द्वितीय स्थान पाया। हमारे नवयुवक वैज्ञानिकों, डाक्टरों व इन्जीनियरों ने देश भर में सैकड़ों विशाल फैक्ट्रियाँ खड़ी कीं और राष्ट्र को आत्म निर्भर बनाने के लिए अथक परिश्रम किया। जब हम नेपाल में भारत के राजदूत थे, १९६५ में भारतीय दल ने माउण्ट एवरेस्ट के शिखर पर चार बार चढ़कर संसार का नया रेकार्ड स्थापित किया जो आज भी कायम है। १९७१ के भारत-पाकिस्तान युद्ध में भारतीय जवानों ने महान शूरता का परिचय दिया और अपूर्व विजय हासिल की। कुल मिलाकर देश का हौसला बहुत ऊँचा रहा।

* * * *

लेकिन पिछले दो सालों में, आपत्कालीन स्थिति की अवधि में, जो दृश्य देखने को मिले उनसे हमें गहरा दुःख हुआ। मीसा आदि कानूनों की वजह से आम लोगों का भयभीत हो जाना स्वाभाविक था। किसी व्यक्ति को कोई कारण बताए बिना जेल में डाल देना और न्यायालयों का दरवाजा भी बन्द करना सचमुच भयानक था। डर कर पढ़े-लिखे लोग चुपचाप घर में बैठ जाते यह भी समझ में आ सकता था। किन्तु जिस ढंग से प्रोफेसरों, विश्वविद्यालयों के कुलपतियों, लेखकों, पत्रकारों व धर्म-गुरुओं ने भी शासन की आगे बढ़-बढ़ कर खुशामद व चापलूसी की वह तो बहुत ही शर्मनाक प्रतीक हुई। एक बार तो देश भर के लगभग पच्चीस उपकुलपति व सीनियर प्रोफेसर पूज्य विनोबाजी से पवनार मिलने आए और कहने लगे— 'बाबा, इमरजेंसी से विश्व-विद्यालयों को बहुत लाभ हुआ है, वह लम्बे अर्से तक चालू रहनी चाहिए।'

पूज्य विनोबाजी के पास मे भी वहाँ बैठा था। यह दृश्य देखकर दंग रह गया। मन में सोचने लगा— "क्या यह भारत वही राष्ट्र है जिसे महात्मा गाँधी ने निर्भय बनाया और आजाद किया ? "

एक विख्यात धर्मगुरु को जब हमने आचार्य सम्मेलन के लिए पवनार आमन्त्रित किया तो उनके दो शिष्य वर्धा आकर मुझसे धीरे से पूछने लगे — 'साहब, सम्मेलन के समय कहीं पकड़ धकड़ तो नही हो जाएगी ? ' मैंने तुरन्त कह दिया— 'अगर आपके गुरुजी इतने भयभीत है तो यहाँ पधारने का कष्ट न करें क्योंकि पूज्य विनोबाजी ऐसे ही आचार्यों को बुलाना चाहते है जो सच्चे अर्थ म निर्भय निर्वैर और निष्पक्ष हो। और दूसरेआचार्य सम्मलन क लिए तो सहीढग के आचार्य मिलना ही हमारे लिए एक टेढी खीर बन गई। जो निष्पक्ष थे वे निर्भय नही रहे, और जो निर्भय थे वे निर्वैर व निष्पक्ष नही कहे जा सकते थे।

हम आशा तो करते है कि लोक सभा के चुनावो के बाद फिर देश में निर्भयता व विचार-स्वातन्त्र्य का वातावरण प्रस्थापित हो सकेगा।

*　　　*　　　*　　　*

भारत एक बहुत प्राचीन देश है। यह ऋषि-मुनियों का क्षेत्र रहा है। उसने कई तरह के राजनीतिक उतार-चढाव व तूफान देखे हैं। उसकी जनता आसानी से भयभीत व विचलित नहीं होती। उसमें कष्ट सहन करने की अद्वितीय शक्ति है। वह भीतरी और बाहरी संकटों के कारण कभी गिर जाती है, लेकिन फिर खडी होकर आगे चलने लगती है। एक उर्दू शायर ने ठीक ही कहा है —

'इस तरह तय की गई हैं मंजिले,
गिर गए गिरकर उठे उठकर चले।'

×

नई तालीम के लिए सब का सहयोग

द्वारिकाप्रसाद सिंह

[बुनियादी तालीम के जाने माने और प्रतिष्ठित कार्यकर्ता श्री द्वारिकाप्रसाद सिंह ने सेवापुरी के नई तालीम सम्मेलन के अन्त में एक महत्वपूर्ण भाषण दिया था। उसके मुख्य अंश यहां पाठकों की जानकारी के लिए प्रकाशित किए जा रहे हैं। —म.]

हम लोग २७ नवम्बर को इस सम्मेलन में शामिल होने के लिए आए और २६ नवम्बर को यहाँ से विदा होंगे। प्रश्न यह उठता है कि जब लोग यहाँ से विदा होकर रास्ते में होंगे, तो मन में यह भाव उठेगा कि इस सम्मेलन से हम लोग क्या लेकर जा रहे हैं? इस सम्मेलन से हम लोगों को क्या लाभ हुआ? इस सम्मेलन ने हम लोगों को कौन-सी प्रेरणाएँ दी?

स्वभावतः यह उत्तर मिलेगा कि हम लोगों को सेवापुरी आश्रम ने आवास के लिए साफ व सुथरे घर दिये, सुस्वादु भोजन दिया, हमें आश्रम वासियों का सहज स्नेह मिला, गुरुजनों का आशीर्वाद तथा उनकी शुभकामनाएँ मिली और मिला साथियों से गम्भीर चिंतन। यह तो ठीक है पर प्रश्न यह उठेगा कि अखिल भारतीय स्तर पर मान्य शिक्षा की नई सरंचना पर आधारित भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा के समग्र रूप के हमें स्पष्ट दर्शन हुए या नहीं? इस प्रश्न का उत्तर हमें ढूंढना होगा।

हमने तीन दिनों तक इस सम्मेलन में तीन प्रमुख बिन्दुओं पर गहराई से विचार विमर्श किया। तीन बिन्दु निम्नलिखित हैं :—

१. १०+२+३ की शिक्षा की नई सरचना।
२. समाजोपयोगी उत्पादक श्रम की कल्पना तथा
३. अनौपचारिक शिक्षा की परिकल्पना।

कल के उद्बोधन भाषण, अध्यक्ष महोदय के वक्तव्य, नई तालीम समिति के मंत्री महोदय के प्रतिवेदन, साथियों के सुझाव, अपने

अनुभव, देश की वर्तमान स्थिति अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति और शिक्षा की नई चुनौती को ध्यान में रखते हुए मैं इन तीन बिन्दुओं पर सम्मेलन के विचार के लिए अपनी बातें रखना चाहता हूँ।

१ १०+२+३ **की शिक्षा की नई संरचना**— देश ने इस संरचना को स्वीकार किया है। इस दिशा में केन्द्र और राज्य सरकारों ने काम शुरू भी कर दिया है। कुछ राज्यों ने इस आधार पर सिलेबस भी तैयार कर लिया है। कुछ राज्यों ने नया सिलेबस लागू भी कर दिया है। नए सिलेबस के अध्ययन से स्पष्ट होगा कि उनमें अधिकांश उद्देश्य-विहीन हैं। उनमें यह अंकित नहीं है कि छात्र १० वर्ष की शिक्षा लेकर विद्यालयों से जब निकलेंगे, तो समाज उनसे क्या अपेक्षा रखेगा, वे किस हद तक शरीर से स्वस्थ होंगे। किस हद तक उनका मानसिक विकास होगा, अध्यात्म के किस धरातल पर वे खड़े होंगे। श्रम के प्रति उनकी श्रद्धा किस हद तक बनेगी, स्वावलम्बन के लिए उनकी कैसी तैयारी होगी समाज सेवा की उनकी क्या क्षमता होगी, विभिन्न भाषाओं, सम्प्रदायों, संस्कृतियों और समुदायों के बीच एक सुसंस्कृत प्रबुद्ध, सहकारी और उपयोगी नागरिक का जीवन बिताने के लिए उनकी कैसी तैयारी होगी, विभिन्न धर्मों के प्रति समभाव रखने की किस हद तक निष्ठा बनेगी, भारतीय सगम संस्कृति, स्वस्थ परम्पराओं और अपने अतीत के गौरव के प्रति किस हद तक उनकी श्रद्धा बनेगी। विश्व परिवार की कल्पना को साकार करने की उनकी क्या धारणा होगी, राष्ट्र विकास, राष्ट्र रक्षण और राष्ट्रीय भावनात्मक एकता के लिए उनकी क्या तैयारी होगी, विभिन्न प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए विधायक शक्तियों का किस हद तक उनका विकास होगा। विकास कार्य में सक्रिय भाग लेने की उनमें क्या क्षमता होगी। इत्यादि-इत्यादि।

सारांश यह कि ६— से १६—तक अर्थात् १० वर्षों की दी जाने वाली शिक्षा के स्पष्ट उद्देश्य एवं अपेक्षित उपलब्धियों को सिलेबस के प्रारम्भ मे अंकित करना परम आवश्यक है। किसी किसी सिलेबस में उद्देश्य तो दिए हुए हैं, पर उन उद्देश्यों को पूरा करने के सम्बन्ध में सिलेबस

के विस्तार में कोई जिक्र नही है। इसलिए उद्देश्यो के प्रकटीकरण की ओर मै सम्मेलन का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि शिक्षा की यह सरचना संप्रति, औपचारिक शिक्षा के सम्बन्ध की है। भूलना न होगा कि बापू ने राष्ट्रीय शिक्षा की समग्रता की कल्पना की थी यानी गर्भावस्था से लेकर मृत्यु पर्यन्त शिक्षा की व्यवस्था की अपेक्षा है। इसलिए समग्र शिक्षा के अनुसार विद्यालयो महाविद्यालयो विश्वविद्यालयो सस्थानो और प्रतिष्ठानोमें दी जाने वाली शिक्षा के साथ सा जो लोग शिक्षा से अछते हैं, उन लोगो की शिक्षा की भी व्यवस्था करनी होगी।

उदाहरण के लिए देश की साक्षरता की बात लें। इनमें से ७० प्रतिशत साक्षर नही है। प्रबुद्ध नागरिक की हैसियत से जिस ज्ञान की आवश्यकता है, वह उन तक पहुँच नही पाया है। हमारा देश विश्व का सबसे बडा लोकतत्र है।

लोगो को अपने हित के लिए अधिकाधिक व्यवस्था स्वयं करनी है। समाज के लगभग तीन चौथाई लोग अज्ञान के अन्धकार में रहकर राष्ट्र निर्माण योजनाओं म बुद्धिपूर्वक सक्रिय नही हो सकते हैं। इसलिए उन सभी तक नई राष्ट्रीय शिक्षा की नई किरण पहुँचनी ही चाहिए।

छात्र, सस्थाओ में आज ६ घटे रहकर औपचारिक शिक्षा प्राप्त करें और १८ घटे नित्य अपने अनाक्षर समाज में बिताएँ ऐसी प्रक्रिया राष्ट्र को प्रबुद्ध बनाने म सफल नही हो सकेगी, वरन् अज्ञ न के कारण विषमता तथा भोग की लिप्सा, वासना गदगी,परस्पर कलह, विघटनकारी तत्व, अराष्ट्रीय कार्य कलाप इत्यादि राष्ट्रीय जीवन में परिलक्षित होगे। इसलिए मेरा सुझाव है कि १०+२+३ की नई सरचना को विशाल राष्ट्रीय शिक्षा की समग्रता का एक अग मानना चाहिए और इसकी सम्बद्धता तथा अनुबद्धता उस विशाल समग्र शिक्षा के साथ होनी चाहिए। भारतीय शिक्षा आयोग ने अपनी १९६४–६६ की रिपोर्ट में अनुशसा की है कि बुनियादी शिक्षा की विशेषताओ का समावेश प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालयो तक के सभी स्तरो पर होना

चाहिए। इसलिए मेरा तीसरा सुझाव है कि १० वर्षीय विद्यालयीन शिक्षा को बुनियादी शिक्षा के नाम से स्वीकार करना चाहिए। पहले भी केन्द्र ने और कुछ राज्यो ने ८ साल की प्रारम्भिक शिक्षा का बुनियादी शिक्षा ही नामकरण किया है। पुराना नामकरण जैसे लोअर प्राइमरी, अपर प्राइमरी, मिडिल, पूर्व माध्यमिक, उच्च माध्यमिक इत्यादि बिलकुल हटा देना चाहिए।

२ **समाजोपयोगी उत्पादक श्रम** — एक लम्बे अर्से से वर्तमान शिक्षा के सम्बन्ध में यह आलोचना रही है कि इसके चलते बेकारी बढ रही है। शिक्षित बेरोजगार हो रहे हैं। श्रम के प्रति उनकी रुचि नहीं है। श्रमिको को वे हेय दृष्टि से देखते है। अपना घर परिवार और समाज उन्हे अनुकूल मालूम नही पडता। नगरीय जीवन के प्रति उनका आकर्षण बढता जा रहा है। जिसके चलते गांवो का भारत नगरोन्मुख हो रहा है। घरेलू और ग्रामीण लोगो मे उनकी रुचि घट रही है। *क्रिया हीन शिक्षा ज्ञान को असहाय बना रही है।* इसलिए भारत के ही नही बल्कि विश्व के चोटी के विद्वानो ने और शिक्षा शास्त्रियो ने यह स्वीकार किया है कि क्रियाशील शिक्षा, जीवन केन्द्रित शिक्षा, लोक-आधारित शिक्षा तथा क्रियाकलाप आधारित शिक्षा ही विश्व के शिक्षा के अनुकूल एवं आवश्यक है। भारतीय शिक्षा आयोग ने मुक्त कठ से इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है। केन्द्र और राज्य सरकारो ने भी अपनी शिक्षा योजना में कार्यानुभव को प्रमुख स्थान दिया है। बापू ने शिक्षा के मध्य में समाजोपयोगी उत्पादक श्रम को प्रतिष्ठित करना चाहा था। शिक्षा आयोग ने उसे कार्यानुभव (एक्सपीरिएन्स) कहा है। शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन को निकले लगभग १० साल हुए। तब से कार्यानुभव के बारे में काफी चिन्तन किया गया है। राष्ट्रीय संस्था एन सी ई आर टी ने अपने मण्डल सिलेबस में कार्यानुभव को अनिवार्य माना है। राज्य सरकारो ने अपने सिलेबस में कार्यानुभव को स्थान दिया है लेकिन राज्यो मे तैयार किए गए सिलेबसो को देखने से यह पता चलता है कि कार्यानुभव के लिए मात्र ५ पीरिएड रखे हैं। कुछ प्रदेशोने ऊपर की कक्षाओ में इसे वैकल्पिक माना है। कुछ

ने कार्यानुभव की उपलब्धि के मूल्यांकन की आवश्यकता ही नही समझी है। इस स्थिति को देखते से यह कहा जाएगा कि कार्यानुभव के बारे में कुछ राज्यों ने हल्के ढग से सोचा विचारा है। आज जब देश के विकास के लिए अधिकाधिक उत्पादन की आवश्यकता है, समाज में समता लानी है, जीवन की प्रमुख आवश्यकताओं को पूरी करना है, तथा काम के द्वारा शिक्षा की व्यवस्था करनी है तो शिक्षा के प्रारम्भ से ही छात्रों को कार्योन्मुख करना होगा। कार्यकलापों की सोद्देश्य इकाइयों को छात्रों द्वारा स्थापित करना है। भोजन, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य, सफाई, शिक्षा संस्कृति और सेवा कार्य संबंधी योजनाओं मे छात्रो को हाथ बँटाना है। देश के १२ करोड छात्रो को जीवन से संबधित समाजोपयोगी और उत्पादक काम में लगाना है। इसलिए मेरा सुझाव है कि उत्पादक श्रम को प्रारम्भ से ही शिक्षण के पूरे समय का पचास फीसदी समय देना चाहिए। उस समय में कार्यों की योजना की तैयारी, साधन संग्रह, वस्तुए क्रिया कलाप का सम्पादन, कार्यों का मूल्यांकन तथा किए हुए कार्यों का लेखा जोखा तैयार करना होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि सिलेबस में जो समय निर्धारित किया गया है, उसका आधा समय कार्यानुभव के लिए यदि सुरक्षित रखा जाता है तो आधे समय का एक चौथाई भाग उत्पादन की व्यवस्था उत्पादन का लेखा जोखा इत्यादि में लगेगा और तीन चौथाई उत्पादन की प्रत्यक्ष क्रिया में व्यतीत होगा। इसलिए मेरा सुझाव यह है कि सिलेबस में दिए गए पूरे समय का आधा भाग कार्यानुभव के लिए अवश्य दिया जाना चाहिए।

समय के साथ साथ कार्यानुभव के सम्पादन के लिए अपेक्षित साधनो की आवश्यकता है। सिलेबस में कार्यानुभव के क्रिया कलाप दिए जाएँ और उनके सम्पादन के लिए आवश्यक साधन उपलब्ध किए जाएँ तो कार्यानुभव सिलेबस में ही अंकित रह जाएगा। शिक्षण संस्थाओं में वह व्यवहार में देखने को नही मिलेगा। साधनो को जुटाने का काम एक मात्र शासन का काम नही होगा वरन् साधनो के जुटाने में छात्रों अभिभावको, समुदायों, विभिन्न प्रतिष्ठानो और, संस्थानों तथा शासन को भी हाथ बँटाना होगा। इस सम्बन्ध में चेतावनी के

रूप में, एक निवेदन करना आवश्यक है। वह यह कि उत्पादक श्रम की व्यवस्था में विद्यालयो और महाविद्यालयो में कृत्रिमता नहीं करनी है। लाखो लाख विद्यालयो में खेती के लिए जमीन का सग्रह सभव नही है। समुदाय में चलते हुए विभिन्न उद्योगो का समावेश विद्यालयो में करना सम्भव नही है। विभिन्न उद्योगो को सिखाने के लिए पूर्ण कालीन शिक्षकों की नियुक्ति विद्यालयो में सम्भव नही है। इसलिए सुझाव है कि योजनाबद्ध ढग से विद्यालयो को पडोस के खेत और खलिहानो में, परिश्रमालयो मे, फैक्ट्रियो मे खादी ग्रामोद्योग केन्द्रोमें, कृषि महाविद्यालयो में और उसी प्रकार के उत्पादक केन्द्रोमें ले जाना होगा। छात्रो और शिक्षको को उन औद्योगिक केन्द्रो में योजनाबद्ध ढग से निर्धारित समय में उत्पादक काम करना होगा। किए हुए कामो के लिए उन सस्थाओं से उन्ह पारिश्रमिक मिलेगा जो काम करनेवालो की पूंजी होगी। इससे लाभ यह होगा कि सुसज्जित औद्योगिक केन्द्रोमें उद्योग का अच्छा प्रशिक्षण मिलेगा। काम करनेवाल छात्रो और शिक्षको को पूंजी के रूप में पारिश्रमिक मिलेगा। विद्यालयो में ऐसे कामो के लिए अतिरिक्त व्यवस्था और पूंजी की आवश्यकता नही होगी।

कार्यानुभव या उत्पादक क्रिया कलापो की व्यवस्था म प्रशिक्षित शिक्षको की आवश्यकता होगी। अच्छे प्रशिक्षण के बिना उद्योग सचालित करना खतरनाक बात होगी। अधकचरे शिक्षक उद्योग का प्रशिक्षण अच्छी तरह नही दे सकते। ऐसी गलत व्यवस्था से कच्चे मालो का नुक्सान होगा। यत्र और औजार टूटेंगे। तैयार माल बाजार के लायक नही होगे। अज्ञानता के कारण चलते उद्योग में लगी हुई पूंजी टूटेगी। छात्रो का सही प्रशिक्षण नही होगा। इसलिए १० वर्षीय विद्यालयीन शिक्षा में लगे हुए लाखो लाख शिक्षको के उद्योग प्रशिक्षण के लिए नवीकरण (Orientation Course) चलाने होगे। ऐसे कोर्सों के लिए सुसज्जित ट्रेनिंग कालेजो के अलावा खादी ग्रामोद्योग सस्थाओं, औद्योगिक केन्द्रों, कृषि महाविद्यालयों, प्रखण्ड के प्रदर्शन प्लाटो

(Demoststration Plots) उन्नत कृषको [वे कृषि फार्मो इत्यादिका सहयोग लेना होगा।

कार्यानुभव की प्रक्रिया में उत्पादन द्वारा जो आय होगी उसमें से, किए गए खर्च को निकाल पर जो बचत होगी उसका तीन चौथाई भाग छात्रों के जलपान भोजन गणवेश पाठ्यसामग्री आदि पर खर्च होगा। आमदनी का शेष एक चौथाई भाग छात्रों के विद्यालयों के विकास कार्य में लगेगा। साथ ही हमें इस बात पर भी ध्यान रखना होगा कि छात्रों के लिए जो भी उत्पादक काम लिए जाएँ उनकी योजना इस प्रकार बन जिससे उद्योग की विस्तृत शैक्षणिक सम्भावनाओं का प्रयोग करने में छात्र समर्थ हो। उद्योगों की क्रियाओं क द्वारा छात्रों को बहुमुखी ज्ञान प्राप्त होगा। यानी उत्पादक क्रियाएँ ज्ञानार्जन का माध्यम होगी। ऐसा नही कि काम अलग होगा, और ज्ञान अलग। ऐसा होने से काम अंधा रहेगा और ज्ञान लूला। अभी अपने समाज में राहु और केतु का सयोग है। अर्थात् चिन्तन करने वाला वर्ग सिर का काम करता है। और श्रम करने वाला वर्ग धड का काम करता है। इस भेद को मिटाना होगा। बुनियादी शिक्षा का यह महान उद्देश्य है कि बुद्धि और कर्म में जो खाई है उस कर्म और ज्ञान के अभिन्न समवाय की प्रक्रिया से पाटना होगा।

शिक्षा आयोग ने ऐसी अनुशसा की है कि कार्यानुभव का समावेश शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर किया जाए। इसलिए उत्पादक श्रम या कार्यानुभव मात्र १० वर्षीय शिक्षा की अवधि में ही नही चलेगा। यह उच्चतम शिक्षा तक चलेगा १० वर्षो के बाद २+ की स्थितिमें शि ा की एक शाखा उद्योग में विशिष्टता देन की होगी। दूसरी शाखा शिक्षा की सामान्य शाखा की कडी होगी। २+ की अवधि में उद्योगो में छात्रो को ऐसी कुशलता प्राप्त होगी जिससे वे उन उद्योगो को लेकर जीवन यापन में समर्थ हो। पूर्व में मल्टीपरपज सेकड्री स्कूल और हायर सेकन्ड्री स्कूल की योजना के प्रयोग से हम लोगो को सीख लेनी चाहिए। उस योजना का यही लक्ष्य था कि दो वर्षों की विशिष्ट शिक्षा लेकर

छात्र जीवन में प्रवेश करें। कई कारणों से वह योजना सफल नहीं हो सकी। भूलों को हम दोहराएं नहीं। ३+ की अवधि में यानी महा विद्यालयों की शिक्षा के स्तर पर यह सुझाव है कि महाविद्यालयों में यथासंभव सुविधा के अनुसार कृषि कार्यों और परिश्रमालयों की व्यवस्था हो, जहाँ पर प्रत्येक छात्र अपने डिग्री कोर्स की अवधि में प्रत्यक्ष रूप में उत्पादन के काम मे लगें और पारिश्रमिक प्राप्त कर। जिस क्षेत्र में सुसज्जित औद्योगिक प्रतिष्ठान हो और विकसित कृषि फार्म हो वहाँ महाविद्यालयों में इनकी समानान्तर व्यवस्था न कर उन महाविद्यालयों को उन्ही प्रतिष्ठानों और फार्मों से सबद्ध करना चाहिए। छात्रों को उत्पादन कार्य द्वारा कमाने के सुअवसर प्राप्त हो।

३–अनौपचारिक शिक्षा— नान फॉरमल एज्यकेशन के बारे में अपने देश में ही नही, बल्कि विश्व मे बडी तेजी से चिन्तन चल रहा है। यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि सस्थाओं के माध्यम से सार्वजनिक शिक्षा असम्भव नही तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। यही कारण है कि अभी अपने देश में ७० प्रतिशत लोगो को अक्षर ज्ञान तक नही है। भारतीय लोकतंत्र के सफल क्रियान्वयन के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक नागरिक को इतना ज्ञान अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिए कि वह प्रबुद्ध, स्वस्थ, सहकारी, सतुलित एव विकसित नागरिक की हैसियत से अपने घर, परिवार, समुदाय, क्षेत्र और राष्ट्र के विकास-कार्य म सक्रिय भाग ले सके। अर्थात् ६० फी सदी लोगो के पास शिक्षा का प्रकाश ले जाना है।

दूसरी प्रमुख समस्या है प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्व-विद्यालयीन शिक्षा तक जाते जाते छात्रों का बहुत बडी सख्या में छीजन (ड्राप आउट) हो रहा है। शिक्षा सबधी प्रतिवेदनमे यह स्पष्ट होता है कि जो छात्र पहली कक्षामें प्रवेश पाते हैं उनमें से पाँचवी कक्षा में जाते जाते ६० फी सदी अपनी पढाई छोड देते है, सातवी कक्षा तक जाते जाते इस छीजन (ड्राप आउट) का प्रतिशत लगभग ७५ हो जाता है। तीसरी बडी समस्या यह है कि जिन सस्थाओं में खादी ग्रामोद्योग के काम होते हैं, जिन औद्योगिक सस्थानो और प्रतिष्ठानो में उत्पादन का काम होता है, जिन खानो में कच्चे माला के लिए मजदूर वर्ग और

परिश्रम करता है, उनके बौद्धिक विकास के लिए कुछ हो नही पाता। मैं समस्तीपुर जिले की एक खादी सस्था के अध्ययन के लिए पिछले दिनो गया हुआ था। उस सस्था के टेप विभाग मे एक छोटी-सी लडकी जिसकी आयु १२ साल की थी, बडी बारीकी से टेप बना रही थी। टेप उठाकर मैने देखा वह बिलकुल निर्दोष था। टेप बनाने की कला में वह ग्रेजुएट-सी थी। जिज्ञासावश मैने उसका नाम पूछा। उसने अपना नाम शीला बताया। अपने गाँव का नाम बथुआ बताया। पर जब उसके जिले का नाम पूछा तो उसने कहा कि उसे अपने जिले का नाम नही मालूम है। मधुबनी की श्रीमती फूलमती एक समय अखिल भारतीय कताई प्रतियोगिताओ में महीन सूत कातने में सर्व प्रथम आई। पर जब मैने उससे कपास और रुई का अन्तर जानना चाहा तो वे मौन रही। खान मजदूरो की ऐसी ही दुर्दशा है। शिक्षित बेकारो की एक बडी सख्या निराश पूर्ण वातावरण में अपना जीवन व्यतीत कर रही है।

सारांश यह है कि जो बच्चे और बच्चियाँ विद्यालयो में प्रवेश नही पाते या प्रवेश पाने की स्थिति में नहीं है, खादी ग्रामोद्योग केन्द्रो में जो कामगार सामान्य ज्ञान भी नहीं पा रहे है, औद्योगिक प्रतिष्ठानो और खानो में जो मजदूर प्रबुद्ध नागरिक के लिए अपेक्षित ज्ञान नही पा रहे है, वर्तमान शिक्षा के चलते जो शिक्षित बेरोजगार, रोजगार नही पा रहे है, ७० फी सदी निरक्षर लोग शिक्षा की प्रथम किरण के दर्शन के लिए भी असमर्थ हो रहे है और विद्यालयो और महाविद्यालयो की शिक्षा की अवधि में जो छात्र अपनी अधूरी शिक्षा के साथ उनसे बाहर आने को बाध्य होते है, उन तमाम लोगो के लिए लोक शिक्षण की व्यवस्था करनी होगी। यह काम वर्तमान सस्था के भीतर नही किया जा सकता है। इस काम में वर्तमान शैक्षिक सस्थाओ, खादी ग्रामोद्योग सस्थाओ, औद्योगिक केन्द्रो, कृषि तथा अन्य महाविद्यालयो, विश्व विद्यालयो, पचायतो, प्रखण्डो और जिला परिषद को सुनियोजित ढग से सम्मिलित होना होगा।

इस लोक शिक्षण की प्रक्रिया में गाँवो और नगरो में बसने वाले प्रबुद्ध व्यक्तियों और विशेषज्ञो का सहयोग लेना होगा। शासन,

(शेष पृष्ठ २४४ पर)

पश्चिम में युवकों का एक उत्साह-वर्धक प्रयोग

(सरलादेवी)

आज कल खनिज तेल के भाव तथा अभाव की वजह से सारी दुनिया के सामने बढती हुई आबादी को खिलाने के लिए कृषि का उत्पादन कैसे बढे, यह एक मुख्य समस्या है। तेल की परिस्थिति से हरित क्रान्ति के समर्थकों को भी निराश होना पड रहा है, क्योंकि यांत्रिक कृषि में ऊर्जा का मुख्य स्रोत खनिज तेल ही है तथा उर्वरक और कीटनाशक दवाइयों के उत्पादन में खनिज तेल का महत्वपूर्ण स्थान है।

यह समस्या सारी दुनिया के सामने तो है ही, लेकिन ग्रेट ब्रिटेन के सामने उसके साथ एक और सवाल जुडा हुआ है— वह यह कि आज कल अनाज के लिए वह मुख्य तौर पर आयात पर निर्भर है। दुनिया के बाजार में पौंड की कीमत घट रही है। अनाजों के दाम बढ रहे हैं, उनका उत्पादन घट रहा है, यदि वह पैसे देने की परिस्थिति में भी रहता (जिस पर आज कल ज्यादा लोगों की शंका बढ रही है) तब भी विलायत की जनता को कैसे पूरी खुराक मिले यह भी एक समस्या है।

इसके साथ-साथ वहाँ की शहरी जनता अब बडी मात्रा में नगरों को छोडकर देहात में जाकर रहने की इच्छा रखती है। हाल ही के एक 'पोल' (Poll) में ७६% लोगों ने कहा कि अब औद्योगिक विकास को आगे बढाने की आवश्यकता नहीं है, ऐसा करना उचित नहीं होगा और ७६% लोगों ने शहर को छोडकर देहात में जाकर रहने की इच्छा व्यक्त की।

ज़वान दम्पति का प्रयोग

बारह वर्ष पहले एक प्रगतिशील युवक दम्पति 'तीसरी' दुनिया से आगे 'चौथी' दुनिया की तैयारी करने के लिए अपने शहरी

जीवन को छोडकर वेल्स की एक घाटी में चालीस एकड बजर पथरीली, चट्टानो से भरी रुखी जमीन खरीदकर वहाँ पर रहने लगे, उन्होने मिलकर अपने हाथो की शक्ति से उसे आबाद करने की कोशिश की, लेकिन चालीस एकड की इस प्रकार की भूमि के सामने, चार हाथ क्या कर सकते थे सिवाय इसके कि आसपास के किसानो के साथ उनका वहुत अच्छा सबध जुड गया। इसके सिवा ये वहुत कुछ नही कर पाए थे।

कुछ साथी मिल गए

लेकिन अब काफी लोग उस उस जीवन की सार्थकता समझने लगे है। एक साल से उनकी लगभग बारह लोगो की एक टोली बनी है। जो डटकर वहाँ की विपरीत परिस्थिति का सामना मिलकर कर रही है। वैसे ही कुछ लोग आकर कडे श्रम तथा निराशाजनक परिस्थिति से परेशान होकर छोडकर चलेगए है। और सामूहिक कडा श्रम करने के आनन्द से कुछ लोग दृढ हो गए है। अब ये लगभग बारह स्थाई सदस्य हो गए है, आने-जाने वाले अतिथियों को गिनकर ये रोज, औसत में पन्द्रह लोगों के दरमियान में रहते हैं।

एक वर्षका काम

इस प्रथम वर्ष में उन्हें कई कठोर कामो को निभाना पडा है। एक तो पहले उन्होने एक मुश्त ज्यादा जमीन को एक साथ एक समय में बसाने की कोशिश की। उन्हें कई बडी चट्टानो को फोडकर उखाडना पडा। उसके साथ-साथ उन्होने पशुपालन की नींव को कुछ ज्यादा बडे पैमाने पर डाला। उन्होने फल का बगीचा तैयार करके उसमे पौधे लगाए, कई विभिन्न फसलो को वो दिया, कुछ मकानो को भी अपने हाथो से बनाया। जब वर्षा की आवश्यकता थी, तब वर्षा आई नही, जब वर्षा की आवश्यकता नहीं थी, तब घनघोर वर्षा होती रही, लेकिन जिन लोगों ने पक्का निश्चय किया था कि यह हमारे लिए सच्चा जीवन है और 'फिनोग इजक' हमारा घर है, वे जोश और श्रद्धा से डटे रहे। उन्होंने साबित किया कि भले ही आपकी प्रथम योजना गलत हो, मौसम बिलकुल विपरीत हो, आपने अपनी शक्ति से ज्यादा काम उठाया हो,

यदि आप अत तक विश्वास और आशा से बडा श्रम करते रहेंगे तो अत में आप विजय पाएँगे ही। अब उनके मकान बन चुके हैं, जमीन में पानी के निवास की व्यवस्था हो चुकी हैं, फसलें बोई गई और आशा से बहुत ज्यादा पनपी।

उसका परिणाम

अनाज की फसल ऐसी जमीन के लिहाज से औसत आई। आलू की फसल औसत से ज्यादा आई, तीन एकड में सब्जी का बगीचा खूब पनपा है। उन्होने खूब तरकारी खाई खूब बाँटी कुछ बची काफी सुरक्षित की, उनका भण्डार सुखायी और सुरक्षित फल तरकारियो से भरा हुआ है, उनके पास ५३ सुअर के बच्चे हैं जो आधुनिक' पद्धति के विचार के विरुद्ध अपने विकास के लिए बिलकुल प्रकृति पर निर्भर रहे हैं उन्हें एक भी सुई नही लगाई गई और न दवाई ही खिलाई गई और ये तिरपन के तिरपन जिन्दा हैं और स्वस्थ भी हैं। साल भर के लिए पन्द्रहलोगो के लायक अनाज जमा हुआ है और लगभग पन्द्रह लोगो को खिलाने के लायक अनाज उन्होने बेच दिया है। याने अभी से, उस बजर पथरीली जमीन पर ये लगभग फी एकड एक व्यक्ति को पाल सकते हैं। उन्हें विश्वास है कि दो साल की ऐसी मेहनत के अत में, ये आधे एकड में एक व्यक्ति को खिला सकेंगे। यह दुनिया भर के सबसे गरीब और घनी आबादी वाले इलाक, बिहार का औसत है।

यह कैसे संभव हुआ ?

यह सब काम लोगों के द्वारा ही सभव हुआ। वह कृत्रिम ऊर्जा उर्वरक तथा कीटनाशक दवाइयो के द्वारा सभव नही है। इसके लिये न तो ट्रक्टर और न हल फावडा कुदाली की आवश्यकता है। इसके लिए सच्ची वैज्ञानिक कृषि की आवश्यकता है, एक धान्य फसलो के स्थान पर विविधता की आवश्यकता है जहरो और व्यापारी कृषि को खत्म करने की आवश्यकता है। एक धान्य फसलो से पौधो पर पैदा हो जाता है यह रोग उन पौधो को खानेवाले मनुष्यो को लगते है। लेकिन एक धान्य फसलो से बचने के लिए श्रम की भी आवश्यकता है और ज्ञान की भी आवश्यकता है।

नए जीवनका ढांचा

इसके साथ-साथ ये एक सादा लेकिन सतोप देने वाला आनन्दित जीवन बिताना चाहते हैं। ये लोग किसी का भी शोषण करने से बचना चाहते है। लेकिन मुख्य तौर पर ये जमीन के प्रति अपना वर्तव्य निभाना चाहते हैं उस भूमि के प्रति जो हर प्रकार के प्राणो का आधार है, जो सब आनद, सब सस्कृति, सब तत्व दर्शनो का आधार है। अपना पोषण पाने के लिए ये भूमि का परितोषण करना चाहते हैं, उसका सरक्षण करना चाहते हैं।

अभी तक ये आसपास के मेलो मे और जलसो में, आसपास के लोक सास्कृतिक अवसरो में शामिल नही हो पाते है— उन्हें उसके लिये फुर्सत नही है। लेकिन पडोसियो के साथ उनके अच्छे सम्बन्ध बने हैं, ये एक दूसरे के सुख-दुख में सहायक होते है। उन्हें आशा है कि जब ये शुरू के कडे श्रम की आवश्यकता को पार करेंगे, तब उन्हें लोगो से मिलने की ज्यादा फुर्सत होगी। तब ये सामूहिक नाटक, सगीत, कला और उद्योगो को बढा पाएँगे।

भविष्य की योजना

अब ये दो दिशाओ में महत्वपूर्ण विकास की योजनाओ पर विचार कर रहे है। अब भी लकडी से ऊर्जा पैदा करने का प्रयास हो रहा है। उनकी जमीन में बारह एकड जगल है जिसे ये वैज्ञानिक पद्धति से विकसित करना चाहते है, लेकिन ये देखते हैं कि अब भी ये जितनी लकडी काटते हैं इससे ज्यादा लकडी पैदा हो जाती है। इस लकडीसे ये पानी गरम करके भाप की शक्ति पैदा कर रहे हैं। लेकिन लकडी की किफायत करने की दृष्टि से उन्हे एक सौर्य तापक की भी आवश्यकता है, और अब भी ऊर्जा और खाद के लिए पाखाने तथा गोवर का पूरा सदुपयोग करने के लिए उन्हें एक गोबर गैस प्लान्ट की आवश्यकता है। पानी को पहाड पर चढाने के लिए उन्हें एक पवन पम्प की आवश्यकता है। पौधो के पौधादाने के लिए, काँच के मकान के साथ उन्हें एक सौर्य सग्राहक पट्टी चाहिए। वेल्स में बादल और वर्षा बहुत होती है—

भारत में लगातार धूप के रहने से इधर हम आसानी से सौर्य शक्ति का उपयोग कर सकते हैं। इसके साथ-साथ अनाज पीसने के लिए उन्हें एक पनचक्की की आवश्यकता है। हालाँकि इन सब कामों में मुख्य तत्व उनका श्रम ही रहेगा, लेकिन उसके लिए थोड़ी-सी पूंजी की आवश्यकता रहेगी और अभी तक उसकी कमी है।

हस्तोद्योगो का विकास

उद्योग की दृष्टि से उन्होने एक करघा ले रखा है हालाँकि अभी तक ये उसे उपयोग मे नही ला पाए है लेकिन ये अपनी भेडो की ऊन से कपडो में स्वावलम्बी होना चाहते हैं? जूतो के लिए ये अपने पशुओ के खाल का उपयोग करेंगे उसे कमाएँगे और उससे पक्का माल बनाएँगे। ये मलाई, मक्खन, पनीर को निकालगे। बढई गिरी तथा कुम्हार का काम भी चलेगा। (उनके पास उसके लायक लकडी और मिट्टी है ही।) ये सिर्फ अनाज से स्वावलम्बी नही होना चाहते हैं, ये एक संपूर्ण विकसित, समाकलित अर्थव्यवस्था का निर्माण करना चाहते हैं। यह सब विश्वास और श्रद्धा के बल पर ही सम्भव होगा और अन्त में, ये इस प्रकार के और परिवारो का निर्माण करना चाहते हैं, जहाँ अन्य लोग जो अपना जन्म सिद्ध अधिकार (जमीन कमाने की) खोज में शहरो से भागना चाहते है जम सकें और अपने नहो विचारा के साथ उपजाऊ जमीन का विकास भी कर सके।

उनका दावा यह है कि इस प्रकार की जीवन व्यवस्था से ग्रेट ब्रिटेन हर प्रकार से स्वावलम्बी बनकर, भविष्य में आनेवाले आर्थिक संकट से बच सकता है—और अपनी पूरी आबादी के लिए मजे से पूरी खुराक पैदा कर सकता है।

अपने पारिवारिक जीवन में उन्होंने किसी प्रकार का संगठन नही किया है। अपनी-अपनी दिलचस्पी, रुचि, अनुभव, ज्ञान के अनुसार हर व्यक्ति ने अपनी-अपनी जिम्मेदारी उठाकर सभाली है। ये एक दूसरे का आदर करते हैं, एक दूसरे को सहयोग देते हैं। हम कह सकते हैं—यह शुद्ध अराजकतावाद है। कोई नियम नही है। कोई मीटिंग नहीं होती। (शायद शुरू में उन्होने बहुत ज्यादा मीटिंग की, इसलिए)

किसी को कोई अधिकार नही है, लेकिन ये आपस में प्रेम से मिलते हैं, और एक दूसरे के कामो में एक दूसरे की बातो को मानते है।

गोशाला के काम के लिए ये सुबह जल्दी उठते हैं और दिन भर अपने कामो मे लगे रहते हैं। यदि किसी समय उस काम को छोडकर ये किसी 'शौक' (Hobby) में लग जाते हो, तो वह भी एक प्रकार से काम हो जाता है— मुख्य सिरवा इत्यादि बनाना— उसके लिए जगली फल तोडकर लाना। इनके सस्थापक चाहते हैं कि ये कभी-कभी कुछ ढीले रहे लेकिन साथी मानते नही हैं। काम की धुन में लगे रहते हैं। और वे यह भी कहते हैं, यदि आप यह सब असम्भव समझते है, तो आकर घूमिए, देखिए यह सब कैसे चलता है।

(पृष्ठ २३८ का शेषांश)

सस्थाओ और समुदायो के साधनों का समुचित उपयोग करना होगा। लोकतत्र की सफलता के लिए सही दिशा में लोकमानस को तैयार करना होगा। सही लोकमानस के लिए सही लोक शिक्षण की व्यवस्था करनी होगी। इसलिए सुझाव है कि शिक्षा की इस महान राष्ट्रीय योजना के अन्तर्गत लोक शिक्षण की जो विशिष्ट कल्पना है उसको साकार करने के लिए केन्द्र व राज्य सरकारो, शिक्षण व रचनात्मक सस्थाओ, औद्योगिक सस्थानो और प्रतिष्ठानो, ग्राम पचायतो, सहकारी समितियो, नगर-पालिकाओ, और नगर निगमो, विश्व विद्यालयो और देश के प्रबुद्ध नागरिको का सम्मिलित प्रयास अपेक्षित है। यह सम्मिलित सहयोग तब सभव है जब विकास की योजना ग्राम स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक सावधानी के साथ अपार जन शक्ति को ध्यान में रखकर तैयार की जाए। अपनी कोई योजना जब तक जनाधारित और जनानुमोदित नही होगी तब तक उसकी सफलता सभव नही।

अन्तम एक सुझाव और है और वह यह कि योजना चाहे कितनी भी अच्छी हो, साधन चाहे जितने जुटाएँ जाएँ, जब तक देश के आचार्य अपनी पूरी निष्ठा, शक्ति, क्षमता, कौशल और सेवाभाव से इस महान काम में हाथ नही बटाएँगे, तब तक इसकी सफलता सभव नही है। इसलिए राष्ट्र निर्माता अपने आचार्य बन्धुओ से मेरी अपील है कि शिक्षा की इस महान राष्ट्रीय योजना के सफल कार्यान्वयन में अपना नेतृत्व दें।

महिलाओं का महिलार्थ

मदालसा नारायण

भारत में महिलाओ का मान और महत्ता सदा बढ़ती हुई रही है। शुरू से 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' ऐसी भावना समाज में प्रचलित रही है। आज भी अपने देश में भारतीय संस्कार परम्परा को घर-घर में विशेषत महिलाओ ने ही प्रवाहित रखा है।

महिमामयी मही-माता से ही महिलाओ का मान है। मही याने भू-माता, धरती, पृथ्वी, धरणी, धरा। इसीलिए कहा गया है 'माता भूमि: पुत्रोऽह् पृथिव्या'। ऐसी मूर्तिमती महिमामयी भूमाताही हम महिलाओ का आदर्श है। जैसे विश्व का आदर्श धर्म है, वैसे ही जगत का जीवनाधार धरती है, पृथ्वी है।

पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमते हुए सविता की प्रदक्षिणा करती है, यही उसकी विशेषता है। दिन-रात सजगता से अपने अक्ष पर घूमते रहना यही पृथ्वी की साधना है। उसी में उसके व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की महत्ता है और पृथ्वी माता की जीवन-साधना की सिद्धता और धन्यता उसी में निहित है।

सूर्यनारायण की प्रदक्षिणा करते हुए पृथ्वी ज्ञान, आरोग्य एव आनन्द प्राप्त करती है और प्रतिक्षण नया जीवन पाती है। तभी वह जीवो के लिए जीवनदायिनी है। इसी तरह महिलाओं की जीवन-साधना भी जीवनदायिनी ही है। उसमें नित नया आनन्द पाना और नित नया अध्ययन, चिन्तन, मनन करते रहना अत्यन्त आवश्यक है।

हम महिलाओ के लिए अपनी जीवन-साधना को सतत् सजग और सजीवन रखते हुए ही आत्मोन्नति के अपने सर्वोत्तम लक्ष्य को साध्य करना है। महिलाओं के लिए महिमामयी मही का जीवनादर्श अत्यन्त प्रेरक और महत्वपूर्ण है। इसे ध्यान में लेकर ही हमें अपना जीवन जचाना है, सजाना है।

हमारी जीवनधात्री धरती माता के चरण-चिन्हों पर हमें चलना है।

शास्त्रों में पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश ये पचभूत कहलाते हैं। इन्हीके सहारे हमारे जीवन का संचालन होता है। पृथ्वी हमे धारण करती है। 'अप्' याने पानी से हमें जीवन मिलता है। 'तेज' से प्रकाश मिलता है। 'वायु' से गति प्राप्त होती है व 'आकाश' से श्वासोच्छ्वास लेने में सुविधा होती है और प्राणिमात्र को रहने की जगह मिलती है।

इन सबमें धरती धारण करने के कारण हमारी माँ है। वह विश्व की माता है। अपने अक्ष पर स्थिर रहकर वह दिन-रात भौंरे की तरह घूमती रहती है और सतत जागृत रहते हुए वह सूर्यदेव की प्रदक्षिणा भी करती ही रहती है। तभी तो वह बडी सजगता से नित नया जीवन प्राप्त करती हुई नित नई प्रेरणा भी प्राप्त करती है। उसीसे जगत में नवजीवन जाग्रत होता रहता है। उसीसे अपने भव्य भारत वर्ष में हम ऋतुओं की सुखद शोभा पाते हैं। सुबह अरुणोदय से सूर्योदय की जगमगाती प्रतिभा का आनन्द हम लूटते हैं, तो सायंकालीन सुषमा का चमकता-दमकता रक्त-रञ्जित वैभव भी सब ओर फैलता हुआ हमें देखने को मिलता है। यह सारी मही माताकी महिमा है। वह अपने अक्ष पर स्थित रहकर घूमते-घूमते सूर्य की प्रदक्षिणा करती है, यही उसकी विशेषता है। मतलब वह अपनी स्वतंत्र आत्म-साधना करते हुए सूर्यनारायण से ज्ञान, आरोग्य और आनन्द प्राप्त करती है। प्राणि-मात्र के लिए पोषक-तत्व प्राप्त करती है। उसीसे सारी दुनियाका पालन-पोषण होता है और सृष्टि का सौन्दर्य निखरता रहता है। ऐसा ही देदीप्यमान जीवन महिलाओं का होना चाहिए।

मानव-जीवन के सर्वतोमुखी विकास के लिए ही विश्व में अनेकानेक शास्त्रों की रचना होती आई है। अनादिकाल से अब तक मानव-समाज में अनेकानेक जीवन-दर्शन प्रगट हुए हैं। उसी क्रम में आज के इस वैज्ञानिक नवयुग में सर्वोदय का अभिनव जीवन-दर्शन प्रगट हुआ है। उसके प्रकाश में धर्मचक्र प्रवर्तक नित्य नूतन विचारधारा भी

सतत प्रवाहित हो रही है। उसके सहारे **हम सबको अब अपने-अपने जीवन-शास्त्र की रचना करनी है**। उसीके आधार पर हमें अपने जीवन का संयोजन और संचालन भी अपने आप करना है। यह जमाने का तकाजा है।

बालकों को गर्भमें धारण करके उनको गौरवान्वित भाव से जन्म देना और नवजात शिशुका मुख-दर्शन पाते ही मातृत्व के गौरव भरे पदपर स्वयं प्रतिष्ठित होना यह महिलाओं की महान भूमिका है। बालक को जन्म देते ही माता के स्तनों में अपने आप दूध भर जाता है। यह माँ निसर्ग की अप्रतिम प्रभुता है। नारी के जीवन का यह असाधारण अनुभव है। उसके सहारे माता का दूध पीते हुए जैसे-जैसे बालक पनपता है, वैसे ही वैसे माँ की ममता भी पनपती जाती है। साथ ही साथ समाज में जहाँ कहीं भी विशेषता नजर आती है उसे माता अपने बालक में भर देना चाहती है। अपने बालक के सर्वांगीण विकास में ममतामयी माता को आत्म-विकास होने का आत्म-सुख और आत्म सन्तोष प्राप्त होता है, यही मातृत्व की महिमा है और इसीमें महिलाओं की महत्ता है।

महिलाओं और माताओं की महिमामयी साधना के द्वारा उसी महिमा और महत्ता को समाज जीवन में दिनोदिन अधिकतम महत्व प्राप्त करानेकी दिशामें प्रयत्न, प्रार्थना और पुरुषार्थ को समन्वित करते हुए हमें आगे बढते जाना है, जिससे समाज में हमारा उच्चतम महिलार्थ प्रमाणित हो सके।

विश्व के इतिहास में ये सौ वर्ष महिलाओं की जाग्रति के लिए अत्यन्त महत्व के सिद्ध हो रहे हैं। दुनिया के विभिन्न देशों में महिलाओं ने पुरुषों के समान अपने अधिकार और उत्तराधिकार प्राप्त करने के लिए महानतम प्रयत्न किए हैं। उसके लिए सुसंगठित होकर भारी तप-त्याग भी किया है।

वर्तमान युग अखिल विश्व के लिए विशेष रूप से उत्क्रांतिकारी नवयुग है। हम भारतवासियों के लिए यही नवजीवन-प्रदायक गांधीयुग कहलाता है। गांधीजी ने स्वराज्य साधना में बहनों का नेतृत्व जगाकर

उन्हें प्रगति के पथपर अग्रसर किया। उनका समाज में मान बढ़ाया और नवयुग के अनुरूप नूतन रूप में उन्हें सम्मानित किया है।

अपने राष्ट्र में महिलाओ को राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी का गहरा स्नेह श्रद्धा और सहानुभूतिपूर्ण नेतृत्व एव भरपूर प्रोत्साहन मिला है। अब युगदर्शी ऋषि विनोबा का 'स्त्री शक्ति जागृति' के रूप में सतत चिन्तन और प्रोत्साहन मिल रहा है। अत अब पुरुषो के पुरुषार्थ की तरह महिलाओ के लिए महिलार्थ' शब्द क्यो न अपना लिया जाए? जिससे महिलाएँ स्वतत्र रूप से अपनी असाधारण विशेषताओ का विकास करते हुए महिलार्थी' कहलाने में विशेष गौरव का अनुभव कर सकें।

पुरुषो के 'पुरुषार्थ की तरह समाज में ' महिलाओ का महिलार्थ' प्रचलित हो सके तो वह सब दृष्टि से प्रेरणादायी होगा। इस दृष्टि से योग वसिष्ठ में विशेष रूप से पुरुषार्थ का उपदेश दिया गया है उसे महिलाओ के सम्मान में महिलार्थ के रूप में ढालने का प्रयत्न आवश्यक है।

कल्याण' के योग वसिष्ठ विशेषाक में राजगुरु श्री वसिष्ठजी ने राजा रामचन्द्रजी को पुरुषार्थ के सम्बध में उपदेश देते हुए कहा था —

हे रघुनन्दन!

इस ससार में सदा अच्छी तरह पुरुषार्थ करने से सबको सब कुछ मिल जाता है। जैसे चन्द्रमा से शीतलतायुक्त आल्हाद प्राप्त होता है उसी प्रकार साधन के परिपक्व होने पर हृदय में सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति रूप अतिशय शीतल आनन्द का उदय होता है। यह आत्यन्तिक आनन्द पुरुष के प्रयत्न से ही प्राप्त हो सकता है, अन्य हेतु से नहीं। शास्त्रज्ञ सत्पुरुषो के बताए हुए मार्ग से चलकर अपने कल्याण के लिए जो मानसिक वाचिक और कायिक चेष्टा करते हैं वही पुरुषार्थ है, और वही सफल चेष्टा है।"

इसी तरह शुद्ध बुद्धि से राग आदि दोषो से रहित होकर श्रेय वस्तु की प्राप्ति के लिए ज्ञान वैराग्य की विशिष्ट साधना महिलाओ को करनी है।

जगद्गुरु श्री शंकराचार्य-विरचित 'अन्नपूर्णास्तोत्र' की समाप्ति पर इसी आशय की बडी गहरी भावना भरी प्रार्थना इस तरह से की गई है —

> अन्नपूर्णे सदापूर्णे शंकरप्राणवल्लभे ।
> ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि च पार्वति ।।
> माता च पार्वती देवी पिता देवो महेश्वर ।
> बान्धवा शिवभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ।।

महिलाओ की जीवन-साधना की दृष्टि से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के स्वरूप की यह प्रेरणा वास्तव में अत्यन्त प्रेरक है। इसमे शंकरप्राण-वल्लभा अन्नपूर्णा माता पार्वतीजी से ज्ञान-वैराग्य की सिद्धता के लिए 'भिक्षां देहि' कहा गया है। ऐसी ज्ञान-वैराग्य की सिद्धता से ही महिला-ओंका महिलार्थ सिद्ध हो सकता है।

समाज जीवन में नित नया उत्साह और आनन्द बढता रहे इसके लिए तरह-तरह के पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय उत्सव मनाए जाते है। उनमें महिलाओ का मगलमय और कलामय योगदान ही विशेष रूप से प्रभावशाली होता है। ऐसे उत्सवो से उत्साह बढता है, बढते हुए उत्साह से बाल-गोपालो का उत्कर्ष होता है, तरुणगणो की प्रतिभा खिलती है, उनके आचार-विचार और सस्कारो की उज्वलता बढती है, उसीसे राष्ट्र का उत्थान होता है।

ये सारी बातें अपने गृह-जीवन का सुचारु रूप से सचालन करने वाली सकुशल महिलाओ और सबका सब तरह से सदा हित, कल्याण चाहने वाली ममतामयी माताओ के द्वारा ही सहजता से सफल हो सकती है।

इसके लिए महिलाओ को अपने शुभ साधन और साधना के द्वारा पूर्वजन्म के अशुभ प्रारब्ध को जीत लेना चाहिए, और इस जन्म में प्रगति के पथपर आगे बढते जाना चाहिए। मतलब —

महिलाओ को अपने पूर्वजन्म के अशुभ या दु खदायक प्रारब्ध को इस जन्म के शुभ कर्मों से विशुद्ध एव पुष्ट हुई बुद्धि के द्वारा पीछे

ढकेल कर आगे ससार-सागर मे पार होने के उद्देश्य की सिद्धि के लिए अपने भीतर दैवी सम्पत्ति के सग्रह के निमित्त सदा सद्प्रयत्न करना चाहिए।

बाल्यावस्था से लेकर भलीभांति अभ्यास में लाए हुए सत्-शास्त्रानुशीलन एव सत-सज्जनो के और सन्यासियो के सत्सग आदि सुअवसरो का लाभ उठाते हुए सद्गुणो के सवर्धन द्वारा सतत सावधान व सजग रहते हुए आत्म-साधना करने से परम स्वार्थ रूप आत्म-साक्षात्कार प्राप्त होता है। उसे साध्य करने का प्रयत्न महिलाओं और माताओ को विशेष रूप से करना चाहिए। कन्याओ को बाल्यावस्था से उस तरह का मनमोहक वातावरण और उसी तरह का उत्तम शिक्षण-प्रशिक्षण घर-घर में दिया जाना चाहिए।

तभी प्राचीनतम चिरस्थाई भारतीय सस्कार परम्परा, भारत माता के प्रागण मे प्रवाहित हो सकेगी और तभी भारतीय महिलाओ का महिलार्थ नूतन रूप म सवर्धित हो सकेगा।

योग वसिष्ठ में श्री वसिष्ठजी ने श्रीरामजी को समझाया है कि— "पूर्वजन्म के पौरुष से भिन्न दैव कोई वस्तु नही है। पूर्वजन्म का पुरुषार्थ ही दैव है। पूर्वकृत कर्मों के फलस्वरूप प्रारब्ध बनता है, और वर्तमान जन्म का पुरुषार्थ प्रत्यक्षत बलवान है, इसलिए अधिकारी मनुष्य को पुरुषार्थ का सहारा लेकर सत्शास्त्रो के अभ्यास और सत्सग द्वारा बुद्धि को निर्मल बनाकर ससार-सागर से अपना उद्धार कर लेना चाहिए।

मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी ने राजा रामचन्द्रजी को यह उपदेश प्राचीन काल में दिया था। अब इस अर्वाचीन काल में बीसवी शताब्दी का यह वैज्ञानिक गति-प्रगति का युग 'नारी जागृति' की दृष्टि से विशेष महत्व का युग है। इसलिए उपरोक्त कथन हम महिलाओ के लिए इस तरह से उपयोगी हो सकता है —

हमारी पूर्वजन्म की जीवन-साधना से हमारे लिए हमारा जो महिलार्थ सिद्ध हुआ हो, वही हमारा 'दैव' है। उसे ही हमें अपना 'अहोभाग्य' समझना चाहिए और अपने पूर्वकृत कर्मों के फलस्वरूप

हमारा जो 'प्रारब्ध' बना है, या इस जन्म की साधना के लिए जो बुनियादी सस्कार-साधन हमें मिला है, उसके सहारे इस जन्म की उन्नतिप्रद साधना हमें करनी है। इसके द्वारा हमें अपने इस जन्म के 'महिलार्थ' को *साध्य करना है।*

ऐसे समझनेवाली अधिकारी महिलाओ को अपने में निहित अपने महिलार्थ का सहारा लेकर, याने महिलाओ में स्वभावत और निसर्गत जो असाधारण विशेषताएँ हैं, उन्हें पहचान कर आगे बढ़ना है। उसके लिए सद्ग्रन्थ और सत्शास्त्रो का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए सत्सग के सहारे हमें अपनी बुद्धि को निर्मल बनाकर ससार सागरसे अपना उद्धार कर लेने का सतत प्रयत्न करना है।

ऐसी साधना से अपने अन्तर में निहित समतारूप परम आनन्द से पूर्ण परमार्थ वस्तु (परब्रह्म) को जाना जा सकता है।

इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए युगदर्शी ऋषि विनोबाजी ने *परमधाम पवनार में ब्रह्म विद्यामदिर की सस्थापना की है। यह ब्रह्म* निष्ठ बहनों के लिए निष्ठावान बहनो के द्वारा ही सचालित हो रहा है। कुलगुरु ऋषिश्रेष्ठ विनोबाजी के सत्य-प्रेम-करुणामय नेतृत्व में बहनें अखड रूप से ज्ञान-कर्म-भक्तिमय साधना वहाँ कर रही हैं। ऐसे परम पावन त्रिवेणी-सगम का पुण्य-प्रसाद हमें भी प्राप्त हो रहा है। फलस्वरूप महिलाओं के महिलार्थ की सिद्धता के प्रति गहरा अनुराग और श्रद्धा बढ़ती जा रही है।

'स्त्री-शक्ति-जागृति' के इस युग में समाज की इन सात स्त्री-शक्तियों का सर्वतोमुखी विकास बचपन से महिलाओ में होगा तभी समाज में इन सद्वृत्तियो का सहज रूप से आचार, विचार और सस्कार प्रचारित हो सकेगा।

इसके लिए इन सप्त-शक्तियों के स्वरूप को जानना, पहचानना और अपनाना आवश्यक है।

हिन्दुस्तान में अर्वाचीन काल में स्त्रियो को अपने उद्धार के लिए प्रेरणा देनेवाले जो महापुरुष हो गए, उनमें एक थे महात्मा गाँधी।

उन्होंने स्त्री हृदय को इतना पहचान लिया था कि स्त्रियाँ उनके पास सहजता से अपना दिल खोलती थी। उन्होंने कहा है —

'स्त्री अबला नही है।'

अर्थात वह सबला है। क्योंकि वह मही की तरह महिमावान महिला है। इसीलिए अब अपने घर-कुटुम्ब परिवार और अपने देश और दुनिया के सामने हम 'सबला' के रूप में अपना असली स्वरूप प्रगट करने के लिए अपने महिलार्थ को सिद्ध करना ही है।

महिलाओ की यह आत्म साधना दिनोदिन बढती रहे। चन्द्र की सोलह कलाओ की भाँति विविध कलाओं से सजा हुआ उनका घर हो। सूर्य किरणो की भाँति चमकती हुई उनकी बुद्धि हो। गगाजल के समान पवित्र और निर्मल उनका मन हो। इधर से उधर बहती हुई हवा की तरह गतिमान उनकी प्रतिभा हो। आकाश के समान सुविशाल उनका हृदय हो और धरती के समान दृढ और धैर्यवान उनकी भूमिका हो। ऐसी सत्य, सयम, सेवामय महिलाओ का वेदोपनिषद् के समान गहरा अध्ययन हो। भारतीय सस्कृति से भरपूर उनके सस्कार हो। माता की ममता से परिपूर्ण उनका व्यवहार हो। बालको में बचपन से सद्‌गुणो की सुन्दर स्पर्धा वे जगाने वाली हो और समाज में दैवी सम्पदा को वे बढाने वाली हो। उसीके अनुसार शिक्षा में क्रातिकारी परिवर्तन लाने में उनका कुशल योगदान हो।

❖

आचार्य वंशीधर की स्मृति में

आचार्य चन्द्र भूषण

"नई तालीम के लिए मेरा जीवन समर्पित है। मैं जीवन की अंतिम श्वास तक नई तालीम की सेवा करता रहूँगा।' विगत अखिल भारत नई तालीम सम्मेलन सेवापुरी के उपरान्त स्वर्गीय आचार्य वंशीधर जी ने मुझ से कहा कि वे उत्तर प्रदेश नई तालीम समिति के मंत्री पद से मुक्त होना चाहते हैं। इसके पक्ष में उनका तर्क यह था कि अस्वस्थता के कारण इस पद का कार्य अधिकतर संयुक्त मंत्री के नाते मैं ही कर रहा था। अतएव उन्हें मंत्री पद पर बने रहना उचित नहीं लगता है। मैंने आचार्य जी से पद पर बने रहने का आग्रह पूर्वक निवेदन किया। किंतु उन्हें सन्तोष न हुआ और घर जाकर उन्होंने मुझे पत्र लिखा जिसमें उपरोक्त वाक्य लिखे और यह लिखा कि पद से मुक्त होकर भी नई तालीम का काम वे पूर्ववत् करते रहेंगे। बहुत आग्रह करने पर ही उन्होंने मंत्री पद पर बने रहना स्वीकार किया था और मुझे लिखा कि अध्यक्ष जी से सलाह लेकर उत्तर प्रदेश नई तालीम समिति की एक बैठक तत्काल बुलाएँ जिससे नई तालीम सम्मेलन की उपलब्धियों के क्रियान्वयन पर विचार कर काम आगे बढ़ाया जा सके उनके सुझाव के अनुसार ही १५ जनवरी ७७ को समिति की बैठक लखनऊ में हुई। इस बैठक में भाग लेने के लिए चलने के पूर्व आचार्य जी को कफ के साथ रक्त का अंश दिखाई दिया। उन्हें श्वास की बीमारी थी। कफ में रक्त जाना उनकी रुग्णता का लक्षण था। किंतु कुटुम्बीजनों को इस प्रकार आश्वस्त किए जानेपर कि वे ठीक हैं और उनका स्वास्थ्य ठीक रहेगा, समिति की बैठक में भाग लेनेके लिए अपने इलाहाबाद निवास से उन्होंने लखनऊ के लिए प्रस्थान किया। इससे पूर्व बैठक के लिए प्रस्तुत विषय सूची के प्रत्येक बिंदु पर अपना विचार लिखकर सभी सदस्यों की सेवा में प्रस्तुत करने की तैयारी उन्होंने कर ली थी। १५ जनवरी को उन्होंने लखनऊ बैठक में भाग लिया और पूरे समय तक वे

ही बैठक में छाए रहे। उस दिन की बैठक की कार्रवाई से वे बहुत प्रसन्न थे और बार-बार हम लोगों से कहते रहे 'देखो मेरा स्वास्थ्य बिलकुल ठीक है। बच्चे नाहक चिंतित हो रहे थे।" १६ जनवरी को हम लोग उनके साथ ही इलाहाबाद आए और उनके निवास तक गए। उन्होंने हम सबका बड़ा ही आतिथ्य किया और स्नेह पूर्वक विदा दी। उस समय हममेसे किसी ने यह नही सोचा था कि उनसे हमारी वही अंतिम भेंट होगी।

२२ जनवरी ७७ की क्रूर काल रात के साढे ग्यारह बजे उन्हें श्वास रोग का दौरा पडा। चिकित्सा हेतु डाक्टर आए और उन्हें अस्पताल ले जाया गया। अस्पताल में पहुँचाते ही उन्हें पुन. दौरा पडा और उन्हें प्राणवायु दिए जाने की तैयारी हो रही थी, कि उनके हृदयकी गति रुक गई। इससे पूर्व अक्तूबर में भी उनका स्वास्थ्य खराब हुआ था और इसी तरह का दौरा उन्हें पडा था और चार घटे बाद वे होश में आए थे। स्वास्थ्य थोड़ा ठीक होते ही उन्होने मुझे लिखा कि 'चार घटे की सुखद मृत्यु के बाद जब मुझे होश आया तो मैंने अपने को अस्पताल में पाया।इस बीमारी से वे ठीक हो गए थे और अखिल भारत नई तालीम सम्मेलन के लिए प्रस्तावित सभी विषयो पर अपने लेख बडे ही परिश्रम से उन्होने तैयार किए थे। उन्होने मुझे लिखा भी कि स्वागत समिति के महा मत्री के नाते सम्मेलन की अन्य व्यवस्था के लिए तो वे कुछ नही कर पा रहे है, किन्तु वैचारिक स्तर पर सम्मेलन के लिए वे पूरी तैयारी में लगे हैं। सम्मेलन के अवसरपर प्रस्तुत उनके विचार कितने मौलिक तर्क सगत तथा दिशा सूचक थे, इसका अनुभव सम्मेलन में उपस्थित सभी लोगों ने किया। नई तालीम के मूल विचारों में समझौता उन्हें असह्य था। सम्मेलन में कई बार वे उत्तेजित भी हो गए। सम्मेलन में प्रस्तुत निवेदन में कई सशोधन उनके सुझाव पर ही स्वीकार हुए थे।

आचार्य वशीधर उत्तर प्रदेश शासन के शिक्षा विभाग में सन् १९४० से सन १९६७ तक रहे। एम ए. करने के बाद उन्होने शिक्षक प्रशिक्षण एल टी. बेसिक किया और इसी ट्रेनिग कालेज में

शिक्षक नियुक्त हुए। शिक्षा विभाग की सेवा में वे विभिन्न पदों पर रहे। किन्तु उनकी सेवा काल का अधिकांश समय बेसिक प्रशिक्षण विद्यालयों में ही बीता। सेवा काल के अंतिम ६ वर्षों में वे बेसिक ट्रेनिंग कालेज, स्नातकोत्तर। कालेज, वाराणसी में आचार्य के पद पर रहे। वाराणसी में इस ट्रेनिंग का प्रारम्भ आचार्यजी ने ही किया था। उसके पूर्व वह विधालय लखनऊ और उससे भी पूर्व इलाहाबाद में चलता था। बेसिग ट्रेनिंग कालेज में बुनियादी शिक्षा का जो मूर्तरूप उनके समयमें देखने को मिला, वह अन्यत्र कम ही दिखाई दिया है। शरीरश्रम के समय वे स्वयं घण्टों फावडा चलाते अथवा टोकरी सिर पर रखकर ढोते थे इसी में उन्हें रक्त चाप की बीमारी हुई, जिससे उनका स्वास्थ्य जर्जर हुआ और अंत में इसी रोग से उनका प्राणान्त भी हुआ। उद्योग का वातावरण हो या सांस्कृतिक कार्यक्रम सबमें वे स्वयं दक्ष थे। सांस्कृतिक कार्यक्रम के तो वे प्राण ही थे। प्रशिक्षण विद्यालयों की अखिल भारतीय प्रतियोगिताओं में उनके आचार्य काल में प्रति वर्ष प्रथम पुरस्कार बेसिक ट्रेनिंग कालेज वाराणसी को ही मिला। इसके साथ ही विद्यालय के शिक्षण का उच्च स्तर सतत बना रहा। वे स्वयं शिक्षाके सिद्धान्त पढ़ाते थे। उद्योग, श्रम, शिक्षण के साथ ही विभिन्न क्रियाकलापोंसे विद्यालय प्रांगण ओत प्रोत रहता था। आचार्य जी छात्रों और प्रवक्ताओं के श्रद्धा के पात्र थे। सब उन्हें प्यार से बडी भाई कहा करते थे। उनके कार्यालय में आपसमें भाईचारे का व्यवहार था; बडे-छोटेका नहीं। विद्यालय प्रांगण में स्थित अमराइयों में शिक्षण कार्य गुरुकुल पद्धति का प्रतिरूप प्रस्तुत करता था। उनके प्राचीन शिष्य शिक्षा विभाग के उच्च अधिकारी हैं, पर वे सब सदा उनका चरण स्पर्श ही करते थे। यह उनकी लोक- प्रियता का प्रमाण है।

शिक्षा विभाग की सेवा में वे जब तक रहे, बुनियादी शिक्षा को सही दिशा देने में प्रयत्नशील रहे। बेसिक प्रशिक्षण महा-विद्यालय, बी. टी. सी., जे. बी. टी. सी. का पाठ्यक्रम उन्हीं के प्रयास से संशोधित हुआ। अखिल भारत नई तालीम सम्मेलनों में वे उत्तर प्रदेश का प्रतिनिधित्व बराबर करते थे। उनका जीवन वास्तविक

आचार्य का जीवन था। अध्ययन, चिंतन मनन उनकी दिनचर्या का अग था। ' सादा जीवन और उच्च विचार " उनके जीवन का आदर्श था। योग्य अध्यापक होन क साथ ही व एक अच्छे लेखक भी थे उत्तर प्रदेश शिक्षा विभाग म प्राइमरी स लकर माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर उनकी लिखी विभिन्न पाठ्य पुस्तकें आज भी चल रही हैं। बुनियादी शिक्षा पर भी उन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं। धर्म क उदभव और विकास में भी उनकी गहरी अभिरुचि थी। शिव पर उनका लख बहुत ही मौलिक और शोधपूर्ण हैं। बाल साहित्य में उनकी विशेष अभिरुचि थी।

बाल साहित्य को उनकी देन विशेष उल्लेखनीय है। छोटी छोटी कहानियो क माध्यम स बालको को नैतिक शिक्षा और धर्म सम्बन्धी अनक ज्ञानप्रद पुस्तकें उन्होंन लिखी है।

विद्यार्थी जीवन स ही व राष्ट्रीय आन्दोलनो में भाग लेते रहे। १९३१ में इलाहाबाद में वे सत्याग्रह आन्दोलन में कूद पड। स्वतन्त्रता संग्राम म उन्हें जल यात्रा भी करनी पडी। राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लन क फलस्वरूप आप विद्यालय से निष्कासित हो गए और अपनी शिक्षा पूरी करन क लिए उन्हें राजस्थान जाना पडा। व बहुत दृढ निश्चयी व्यक्ति थ। किसी कार्य को हाथ में लते तो उसे पूरा करके ही दम लते थ। उनकी निर्भीकता साहस और कर्तव्य परायणता अनुकरणीय थी। अपने अधिकारियो की धौंस म आकर उन्होंने कभी कोई काम नही किया। परन्तु कभी भी उन्होंने अपनी विनम्रता नहीं खोई। वे अत्यधिक ईमानदार थे। उनमें करुणा थी। कितने ही निर्धन छात्र-छात्राओ को उनसे बराबर सहायता मिलती रहती थी उनके दर पर कोई भी सहायता की आकांक्षा से पहुँचा पीडित व्यक्ति कभी निराश नहीं लौटा। कितनो की कठिनाइयो का आभास मात्र हो जाने पर स्वेच्छा से उनकी सहायता किया करते थे। अपने आधीन आठ बच्चे के पिता एक लिपिक की वे बराबर सहायता करते थे। त्योहार के दिन काम के बहाने उन्हें बुलाते और कुछ धन बच्चों की मिठाई आदि क लिए उन्हें देकर उस दिन बिना कोई काम कराए विदा कर दते थे। ऐस दयालु अधिकारी और आचार्य आज विरले ही हैं।

राजकीय सेवा से मुक्त होने पर निष्क्रिय होकर घर बैठना अथवा धनार्जन हेतु कोई धधा करना उन्हें गवारा नही था। उन्होने अपना शेष जीवन पुन समाज की सेवा के लिए समर्पित कर दिया। सर्व सेवा सघ को उन्होने अपनी सेवाएँ दी और अवैतनिक कार्य करते रहे। पूज्य विनोबाजी ने आचार्यकुल का नवीन विचार दिया। आचार्य-कुल के सगठन हेतु सयोजन का काम स्वर्गीय श्री बशीधर जी को सौंपा गया। १९६९ से ७५ तक पूरे देश में बडे परिश्रम और लगन से उन्होने आचार्य कुल का गठन और सचालन किया। सर्व सेवा सघ की प्रबन्ध समिति के भी वे सदस्य रहे। उनका अध्ययन और लेखन का क्रम निर्बाध चलता रहा। नई तालीम पत्रिका के सम्पादन का काम उन्होने वर्षो तक किया। वे अत तक नई तालीम तथा आचार्य कुल पत्रिकाओ के सम्पादक रहे। इन पत्रिकाओ के लिए वे बराबर लिखते रहे है। सर्व सेवा सघ की नई तालीम समिति के वे सदस्य थे। नई तालीम के कार्य के लिए तो वास्तव में ही उनका जीवन समर्पित था। जीवनकी अतिम श्वास तक उन्होने नई तालीम की सेवा की है। मृत्यु से पूर्व उन्होंने अनौपचारिक शिक्षा पर लेख नई तालीम पत्रिका में छपने के लिए भेजा था। कोठारी शिक्षा आयोग की सस्तुतियों के अनुसार १०+२+३ की नई शिक्षा पद्धति में नई तालीम की सकल्पना को सही दिशा देने के लिए उन्होने अन्तिम श्वास तक सघर्ष किया। सेवापुरी नई तालीम सम्मेलन के समय अस्वस्थता के बावजूद वे अकेले जूझते रहे। उनके निकट जो लोग रहे है, वे जानते है कि विगत दो वर्षो से उन्हें नई तालीम के भविष्य की चिंता अधिक रहती थी। सार्वजनिक कार्यों में लगना और किसी पद पर के दायित्व का निर्वाह तो बहुत से लोग करते हैं किन्तु किसी लक्ष्य के लिए बिना किसी लाभ अथवा पद के लोभ से पूर्णत जीवन समर्पित कर देने वाले महान व्यक्ति विरले ही होते है। आचार्य बशीधर जी उन्ही दुर्लभ विभूतियो में से थे। ईश्वर हमें शक्ति दें कि हम उनके चरण चिन्हो पर चल सकें।

रजि० सं० WDA/1 लायसेंस नं० ५

मुद्रक शंकरराव लोंढे, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा

नयी तालीम

'गांधीजी और विज्ञान

नित्य नई तालीम

नई शिक्षा संरचना

सयानों की तालीम

क्या आप जानते हैं

वर्षा मंगल

नई प्रणालि और बुनियादी शिक्षण
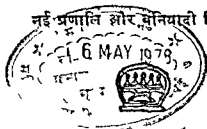
अखिल भारत नयी तालीम समिति

सेवाग्राम

वर्ष : २५] जून–जुलाई, १९७७ [अंक : ६

होगा। हाँ, शासन की भी यह जिम्मेवारी तो स्पष्ट है कि इन उद्योगों को आवश्यक संरक्षण दिया जाए और उनके क्षेत्र सुरक्षित कर दिए जाएँ। खादी व ग्रामोद्योगों को मिलों की अन्यायपूर्ण होड का सामना करना पडे यह राष्ट्रीय सयोजन नीति के विरुद्ध माना जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में खादी कमीशन की ओर से केन्द्रीय शासन के सामने एक सुनिश्चित योजना बनाकर प्रस्तुत की जानी चाहिए ताकि शीघ्र ही नीति सम्बन्धी कुछ ठोस निर्णय किए जा सकें।

'हमें इज्जत चाहिए'

लोकसभा का पिछला आम चुनाव कई दृष्टि से अनुपम ही रहा। उसमे लोकशक्ति के चमत्कार के हमें कई भाँति के दर्शन हुए। जनता की गजब की समझदारी, निर्णयशक्ति की परिपक्वता का प्रत्यक्ष परिचय मिला। एक प्रमुख कांग्रेस कार्यकर्ता ने मुझे एक ऐसी जानकारी दी जिसका प्रभाव मेरे मन पर बहुत गहरा पडा। पश्चिम उत्तर प्रदेश में आगरा व मथुरा के बीच किसी देहाती इलाके में एक सार्वजनिक सभा हुई। श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने आधा घंटे तक करीब पचास हजार के जनसमूह को समझाया कि कांग्रेस ने अपने बीस-सूत्री कार्यक्रम द्वारा किस प्रकार गरीब जनता की सेवा की है। उस क्षेत्र में हजारों एकड जमीन बाँटी है, सैंकडो मकान बनवा दिये हैं। सडकों, स्कूलों व अस्पतालों का जाल बिछा दिया गया है। भविष्य में इसी तरह का और भी विकास कार्य जारी रखा जाएगा।

इसी बीच सभा में एक साफा बाँधे पचहत्तर वर्ष का बुजुर्ग खड़ा हो गया। उसने अपने दोनों हाथ ऊँचे करके जोर से कहा—'प्रधानमन्त्रीजी, यह तो सब होता रहेगा। और भी सडकें, स्कूल, अस्पताल बन जाएँगे। लेकिन हमें तो 'इज्जत' चाहिए। आपने हमारी इज्जत ले ली!' इतना कहते ही वह सभा से चलने लगा। उसके साथ सारी भीड भी उठकर चली गई। इन्दिराजी यह दृश्य देख स्वयं भी उस मीटिंग से दूसरी सभा को सम्बोधित करने के लिए रवाना हो गईं।

यह है हमारी ग्रामीण जनता की संस्कृति। उन्हें केवल भौतिक विकास के कार्यक्रमों से ललचाया नहीं जा सकता। वे गरीब हैं, अपढ़

है। किन्तु उनके जीवन में एक सम्पन्नता है जो आध्यात्मिक ही कही जा सकती है। जनता पार्टी ने अपने चुनाव घोषणा-पत्रमें लिखा था कि वह रोटी के साथ आजादी की सुरक्षा करेंगे। किन्तु इस शब्दावली को भी विदेशी ही समझनी चाहिए। हम सभी के दिमाग इस समय भी पाश्चात्य संस्कृति साहित्य से भरे हैं। लेकिन देहाती बुजुर्ग ने 'इज्जत' का जो शब्द इस्तेमाल किया वह अनोखा है। वही भारत की सभ्यता का सही प्रतीक है। हमारा माथा इन ग्रामीण-जना के सामने सहज ही झुक जाता है। इन्हो ने हिन्दुस्तान की आत्मा व तहजीब को हजारों वर्ष से जिन्दा रखा है। वे ही भविष्य में भी उसे जीवित रखेंगे।

में कहा कि बुनियादी शिक्षा केवल कुछ-शिक्षा व कुछ-श्रम नहीं है, वह उत्पादक-क्रियाओं द्वारा वैज्ञानिक प्रशिक्षण है। अतः समवाय-पद्धति (कोरिलेशन) का विशेष महत्व हो जाता है। स्कूलों में श्रम के साथ सर्व-धर्म समभाव का वातावरण भी निर्माण करना निहायत जरूरी है। 'सेक्यूलर' स्टेट का असली अर्थ यही है कि सभी नागरिक अपना अपना मजहब जानने के अलावा दूसरे धर्मों की भी सामान्य जानकारी रखें और उनके प्रति समान आदर का भाव भी रहे।

दस वर्ष के बुनियादी शिक्षण के बाद ही दो वर्ष के विभिन्न उद्योगों की ट्रेनिंग दी जानी चाहिए ताकि कम से कम आधे नवयुवक काम धन्धों में लगकर अपनी जीविका चला सकें। इन दो वर्षों के पाठ्यक्रमों में 'एकेडेमिक' व 'व्यावसायिक' का भेद न किया जाए और सभी विद्यार्थियों को भाषा व सामाजिक विज्ञान के साथ उद्योगों का कुशल प्रशिक्षण दिया जाए ताकि वे स्वावलम्बी बन सकें और नौकरियों की तलाश में मारे मारे न घूमें।

विश्वविद्यालयीन शिक्षण सामान्यतः तीन वर्ष का हो। किन्तु यदि कोई युनिवर्सिटी चाहे तो उसे २+१ का रूप दे सकती है और तीन वर्ष के बाद 'आनर्स' डिग्री दी जाए। लेकिन इन उच्चस्तरीय पाठ्यक्रमों में भी व्यावसायिक प्रशिक्षण को प्रधानता दिया जाना जरूरी है।

सम्मेलन की यह भी सामान्य राय रही कि यद्यपि देशभर में राष्ट्रीय शिक्षा का ढाँचा १०+२+३ रहे, फिर भी राज्यों को उसके अन्तर्गत आवश्यक परिवर्तन करने का अधिकार होना चाहिए ताकि वे कुछ विशेष प्रयोग कर सकें।

हम आशा करते हैं कि नये केन्द्रीय शिक्षामंत्री शीघ्र ही अपनी नीति का प्रतिवेदन तैयार करके लोकसभा के बजट अधिवेशन में पेश कर सकेंगे। हम एक बार फिर आग्रह करेंगे कि गाँधीजी की बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों को नये शिक्षाक्रम के सभी स्तरोंपर ईमानदारी से

लागू करना चाहिए। नही तो राजघाट पर ली गई शपथ का कोई विशेष महत्व नही रह जाएगा।

खादी और ग्रामोद्योग :

मई १३ और १४ को नई दिल्ली में भारतीय खादी ग्रामोद्योग संघ की ओर से खादी कार्यकर्ताओ का एक सम्मेलन आयोजित किया गया था। देश भर के लगभग तीन सौ चुने हुए रचनात्मक कार्यकर्ता उसमें शरीक हुए। हमें भी उसम भाग लेने का अवसर मिला। तारीख १४ मई को प्रधानमन्त्री आदरणीय मोरारजी भाई देसाई ने सम्मेलन को लगभग डेढ घटा सम्बोधित किया।

प्रधानमन्त्रीजी ने खादी व ग्रामोद्योग के कार्यकर्ताओ की कठिनाइयो को दूर करने का आश्वासन दिया और कहा कि वे चाहते हैं कि इन विकेन्द्रित ग्रामोद्योगो द्वारा देश की बेकारी व अर्ध बेकारी की समस्या को हल किया जाए। साथ ही साथ उन्होने इस बात को आवश्यक कहा कि खादी व अन्य ग्रामीण उद्योग एक निश्चित समय के भीतर स्वावलम्बी बन जाएँ और 'सबसिडी' का आधार छोडकर अपने ही पैरो पर खड़े हो जाएँ। उन्होने यह निश्चित सलाह भी दी कि खादी कमीशन को बम्बई से हटाकर वर्धा लाया जाए जहाँ इस प्रकार के रचनात्मक कार्य के लिए योग्य वातावरण मिल सकेगा। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी व श्रद्धेय जमनालालजी ने खादी व ग्रामोद्योग का काम वर्धा व सेवाग्राम में ही प्रारम्भ किया था। कमीशन को वही यह कार्य जारी रखना चाहिए। सम्माननीय मोरारजी भाई ने यहाँ तक कह दिया कि अगर खादी ग्रामोद्योग कमीशन के कार्यकर्ता बम्बई छोड़कर वर्धा जानेको तैयार न हो तो कमीशन ही बन्द कर दिया जा सकता है, और नये सिरे से यह काम वर्धा में शुरू किया जाए।

हम आशा करते हैं कि खादी ग्रामोद्योग कमीशन के नये पदाधिकारी प्रधानमन्त्रीजी के इस सुझाव पर बहुत गम्भीरता से विचार करेंगे और शीघ्र ही योग्य निर्णय करेंगे। यह भी बिलकुल सही है कि खादी व अन्य ग्रामीण उद्योग केवल सरकारी सहायता के बल पर स्थाई ढग से नही चल सकेंगे। उन्हें स्वावलम्बी व जन आधारित बनाना ही

सम्पादक–मण्डल :
श्री श्रीमन्नारायण – प्रधान सम्पादक
श्री वजूभाई पटेल
श्रीमती मदालसा नारायण

वर्ष २
अंक

अनुक्रम

हमारा दृष्टिकोण		
गांधीजी और विज्ञान	२३४	जवाहरलाल नेहरू
नित्य नई तालीम	२६९	विनोबा
नई शिक्षा सरचना	२७३	डॉ. श्रीमन्नारायण
हिं. सा. सम्मेलन हैद्राबाद अध्यक्षीय भाषण	२८४	वियोगी हरि
समानोत्तरी तालीम	२९०	धीरेन्द्र मुजुमदार
क्या आप जानते हैं	२९५	सरला देवी
वर्षा मगल	३०१	मदालसा नारायण
नई प्रणालि और बुनियादी शिक्षा	३०६	मदनमोहन
नई तालीम समितिकी शिफारिसें	३०९	
सेवाग्राम आश्रम वृत्त	३११	

जून–जुलाई '७७

* 'नई तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नई तालीम' का वार्षिक शुल्क बारह रुपए हैं और एक अक का मूल्य २ रु.
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी संख्या लिखना न भूलें।
* 'नई तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ. भा. नई तालीम समिति, सेवाग्रामके लिए प्रकाशित ः
राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

हमारा दृष्टिकोण

शिक्षा-सम्मेलन

वर्ष : २५
अंक : ६

गत १७ मई को केन्द्रीय शिक्षा मंत्री डा प्रतापचन्द्र चन्दर की ओर से लगभग पैंतालीस शिक्षा शास्त्रियों का एक सम्मेलन नई दिल्ली में बुलाया गया। डा चन्दर चाहते थे कि १०+२+३ के नये शिक्षा क्रम के सम्बन्ध में इन विद्वानों की राय ली जाए ताकि नई जनता सरकार शिक्षा सुधार सम्बन्धी अपनी नीति निर्धारित कर सके। यह सम्मेलन दिन भर चलता रहा और लगभग आठ घंटे तक विचार विनिमय हुआ। हमें भी चर्चा में भाग लेने का मौका दिया गया। डाक्टर चन्दर ने जिस व्यवस्थित व गंभीर ढंग से सम्मेलन का संचालन किया उसका प्रभाव हम सभी पर बहुत अच्छा पड़ा।

सम्मेलन में कई विद्वज्जनों ने राय जाहिर की कि पहले दस वर्षों में विद्यार्थियों को महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित बुनियादी तालीम के सिद्धांतों के आधार पर समाजोपयोगी और उत्पादक क्रियाकलापों द्वारा शिक्षा दी जानी चाहिए। वर्तमान पाठ्यक्रम बहुत ही बोझिल बना दिए गए हैं। विषयों व पाठ्यपुस्तकों की संख्या कम की जाए ताकि उत्पादक कार्यक्रमों के लिए छात्रों को अधिक समय मिल सके। हमने भी बहुत स्पष्ट शब्दों

में कहा कि बुनियादी शिक्षा केवल कुछ-शिक्षा व कुछ-श्रम नहीं है, वह उत्पादक क्रियाओं द्वारा वैज्ञानिक प्रशिक्षण है। अतः समवाय-पद्धति (कोरिलेशन) का विशेष महत्व हो जाता है। स्कूलों में श्रम के साथ सर्वधर्म समभाव का वातावरण भी निर्माण करना निहायत जरूरी है। 'सेक्यूलर' स्टेट का असली अर्थ यही है कि सभी नागरिक अपना अपना मजहब जानने के अलावा दूसरे धर्मों की भी सामान्य जानकारी रखें और उनके प्रति समान आदर का भाव भी रहे।

दस वर्ष के बुनियादी शिक्षण के बाद ही दो वर्ष के विभिन्न उद्योगों की ट्रेनिंग दी जानी चाहिए ताकि कम से कम आधे नवयुवक काम धन्धों में लगकर अपनी जीविका चला सकें। इन दो वर्षों के पाठ्यक्रमों में 'एकेडेमिक' व 'व्यावसायिक' का भेद न किया जाए और सभी विद्यार्थियों को भाषा व सामाजिक विज्ञान के साथ उद्योगों का कुशल प्रशिक्षण दिया जाए ताकि वे स्वावलम्बी बन सकें और नौकरियों की तलाशमें मारे-मारे न फिरें।

विश्वविद्यालयीन शिक्षण सामान्यतः तीन वर्ष का हो। किन्तु यदि कोई युनिवर्सिटी चाहे तो उसे २+१ का रूप दे सकती है और तीन वर्ष के बाद 'आनर्स' डिग्री दी जाए। लेकिन इन उच्चस्तरीय पाठ्यक्रमों में भी व्यावसायिक प्रशिक्षणको प्रधानता दिया जाना जरूरी है।

सम्मेलन की यह भी सामान्य राय रही कि यद्यपि देशभर में राष्ट्रीय शिक्षा का ढाँचा १०+२+३ रहे, फिर भी राज्यों को उसके अन्तर्गत आवश्यक परिवर्तन करनेका अधिकार होना चाहिए ताकि वे कुछ विशेष प्रयोग कर सकें।

हम आशा करते हैं कि नये केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री शीघ्र ही अपनी नीति का प्रतिवेदन तैयार करके लोकसभा के बजट अधिवेशन में पेश कर सकेंगे। हम एक बार फिर आग्रह करेंगे कि गाँधीजी की बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों को नये शिक्षाक्रम के सभी स्तरोंपर ईमानदारी से

लागू करना चाहिए। नहीं तो राजघाट पर ली गई शपथ का कोई विशेष महत्व नहीं रह जाएगा।

खादी और ग्रामोद्योग :

मई १३ और १४ को नई दिल्ली में भारतीय खादी ग्रामोद्योग संघ की ओर से खादी कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन आयोजित किया गया था। देश भर के लगभग तीन सौ चुने हुए रचनात्मक कार्यकर्ता उसमें शरीक हुए। हमें भी उसमें भाग लेने का अवसर मिला। तारीख १४ मई को प्रधानमन्त्री आदरणीय मोरारजी भाई देसाई ने सम्मेलन को लगभग डेढ़ घंटा सम्बोधित किया।

प्रधानमन्त्रीजी ने खादी व ग्रामोद्योग के कार्यकर्ताओं की कठिनाइयों को दूर करने का आश्वासन दिया और कहा कि वे चाहते हैं कि इन विकेन्द्रित ग्रामोद्योगों द्वारा देश की बेकारी व अर्ध बेकारी की समस्या को हल किया जाए। साथ ही साथ उन्होंने इस बात को आवश्यक कहा कि खादी व अन्य ग्रामीण उद्योग एक निश्चित समय के भीतर स्वावलम्बी बन जाएँ और 'सबसिडी' का आधार छोड़कर अपने ही पैरों पर खड़े हो जाएँ। उन्होंने यह निश्चित सलाह भी दी कि खादी कमीशन को बम्बई से हटाकर वर्धा लाया जाए जहाँ इस प्रकार के रचनात्मक कार्य के लिए योग्य वातावरण मिल सकेगा। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी व श्रद्धेय जमनालालजी ने खादी व ग्रामोद्योग का काम वर्धा व सेवाग्राम में ही प्रारम्भ किया था। कमीशन को वहीं यह कार्य जारी रखना चाहिए। सम्माननीय मोरारजी भाई ने यहाँ तक कह दिया कि अगर खादी ग्रामोद्योग कमीशन के कार्यकर्ता बम्बई छोड़कर वर्धा जानेको तैयार न हों तो कमीशन ही बन्द कर दिया जा सकता है, और नये सिरे से यह काम वर्धा में शुरू किया जाए।

हम आशा करते हैं कि खादी ग्रामोद्योग कमीशन के नये पदाधिकारी प्रधानमन्त्रीजी के इस सुझाव पर बहुत गम्भीरता से विचार करेंगे और शीघ्र ही योग्य निर्णय करेंगे। यह भी बिलकुल सही है कि खादी व अन्य ग्रामीण उद्योग केवल सरकारी सहायता के बल पर स्थाई ढंग से नहीं चल सकेंगे। उन्हें स्वावलम्बी व जन आधारित बनाना ही

होगा। हाँ, शासन की भी यह जिम्मेवारी तो स्पष्ट है कि इन उद्योगों को आवश्यक संरक्षण दिया जाए और उनके क्षेत्र सुरक्षित कर दिए जाएँ। खादी व ग्रामोद्योगों को मिलों की अन्यायपूर्ण होड का सामना करना पडे यह राष्ट्रीय सयोजन नीति के विरुद्ध माना जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में खादी कमीशन की ओर से केन्द्रीय शासन के सामने एक सुनिश्चित योजना बनाकर प्रस्तुत की जानी चाहिए ताकि शीघ्र ही नीति सम्बन्धी कुछ ठोस निर्णय किए जा सकें।

'हमें इज्जत चाहिए'

लोकसभा का पिछला आम चुनाव कई दृष्टि से अनुपम ही रहा। उसमें लोकशक्ति के चमत्कार के हमें कई भाँति के दर्शन हुए। जनता की गजब की समझदारी, निर्णयशक्ति की परिपक्वता का प्रत्यक्ष परिचय मिला। एक प्रमुख काँग्रेस कार्यकर्ता ने मुझे एक ऐसी जानकारी दी जिसका प्रभाव मेरे मन पर बहुत गहरा पडा। पश्चिम उत्तर प्रदेश म आगरा व मथुरा के बीच किसी देहाती इलाके में एक सार्वजनिक सभा हुई। श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने आधा घटे तक करीब पचास हजार के जनसमूह को समझाया कि काँग्रेस ने अपने बीस-सूत्री कार्यक्रम द्वारा किस प्रकार गरीब जनता की सेवा की है। उस क्षेत्र में हजारो एकड जमीन बाँटी है, सैकडो मकान बनवा दिये हैं। सडको, स्कूलो व अस्पतालो का जाल बिछा दिया गया है। भविष्य में इसी तरह का और भी विकास कार्य जारी रखा जाएगा।

इसी बीच सभा में एक साफा बाँधे पचहत्तर वर्ष का बुजुर्ग खडा हो गया। उसने अपने दोनो हाथ ऊँचे करके जोर से कहा—. 'प्रधानमत्रीजी, यह तो सब होता रहेगा। और भी सडकें, स्कूल, अस्पताल बन जाएँगे। लेकिन हमें तो 'इज्जत' चाहिए। आपने हमारी इज्जत ले ली!' इतना कहते ही वह सभा से चलने लगा। उसके साथ सारी भीड भी उठकर चली गई। इन्दिराजी यह दृश्य देख स्वय भी उस मीटिंग से दूसरी सभा को सम्बोधित करने के लिए रवाना हो गईं।

यह है हमारी ग्रामीण जनता की सस्कृति। उन्हें केवल भौतिक विकास के कार्यक्रमो से ललचाया नही जा सकता। वे गरीब है, अपढ

है। किन्तु उनके जीवन में एक सम्पन्नता है जो आध्यात्मिक ही कही जा सकती है। जनता पार्टी ने अपने चुनाव घोषणा-पत्र में लिखा था कि वह रोटी के साथ आजादी की सुरक्षा करेंगे। किन्तु इस शब्दावली को भी विदेशी ही समझनी चाहिए। हम सभी के दिमाग इस समय भी पाश्चात्य संस्कृति साहित्य से भरे हैं। लेकिन देहाती बुजुर्ग ने 'इज्जत' का जो शब्द इस्तेमाल किया वह अनोखा है। वही भारत की सभ्यता का सही प्रतीक है। हमारा माथा इन ग्रामीण-जनों के सामने सहज ही झुक जाता है। इन्हीं ने हिन्दुस्तान की आत्मा व तहजीब को हजारों वर्ष से जिन्दा रखा है। वे ही भविष्य में भी उसे जीवित रखेंगे।

गांधीजी और विज्ञान

' जवाहरलाल नेहरू :

कुछ दिनों पहले मैंने जेल में एक छोटी-सी किताब पढ़ी थी, किताब का नाम था—'साइन्स इन द चेन्जिग वर्ल्ड' (बदलती हुई दुनिया में विज्ञान)। इस पुस्तक में मैंने आपके द्वारा प्रसारित एक व्याख्यान का उद्धरण भी पढ़ा। इस उद्धरण ने मुझे अचरज में डाल दिया और मुझे उससे थोड़ा दुख भी हुआ। आपके इस कथन के अनुसार यह ज्ञात पड़ता है कि आप यह मानते हैं कि तालस्ताय और गांधी के अनुयायी 'रिटर्न टु नेचर' की बात करते हैं, अर्थात् वे यह चाहते हैं कि लोग विज्ञान को एकदम त्याग दें और आदिवासियों, या कम से-कम मध्ययुगीन आदमी, के ढग से रहने-सहने लगें। आपके द्वारा कथित अश में यह भी कहा गया है कि यदि इस बात के मुताबिक आचरण किया जाए तो आठ या नौ करोड़ आदमियों की जान लेना आवश्यक हो जाएगा। यह भी कहा गया है कि इस बडी सख्या में मनुष्य जाति की हानि तैमूर या चगेज खा ने जो कुछ किया था उससे कई गुनी बडी ठहरेगी और उनके अत्याचार तो इसके सामने नगण्य ही कहे जाएँगे।

तालस्ताय के अनुयायी क्या कहते हैं—इस विषय में मुझे कुछ कहने का हक नहीं है। किन्तु मैं गांधीजी के घनिष्ट सम्पर्क में रहा हूँ और जिन्हें आप गांधीवादी कहते हैं, उनके साथ भी पिछले चौदह वर्षों से अपने सम्बन्ध के कारण मैं कुछ कहने और जानने का दावा कर सकता हूँ। यों तो राजनीतिक अर्थों में मैं इन पिछले तमाम वर्षोंमें गांधीवादी ही रहा हूँ। मेरा ख्याल है कि आपने अनजाने ही क्यों न हो, गांधीजी की बात का इस प्रकार उल्लेख करके एक बडा अन्याय किया है।

मैं इस पत्रमें गांधीजीके व्यक्तित्व के बारेमें कुछ कहने का इरादा नहीं रखता। गांधीजी एक परिपूर्ण मनुष्य है, और उनके अनेक पहलू है। इनमेंसे अनेक पहलू ऐसे है जो आधुनिक ढंगसे सोचने-वाले आदमी को हैरत में डाल देते हैं। मूल रूप में गांधीजी एक धार्मिक आदमी है, जब कि आधुनिक व्यक्ति मूल रूपमें धर्म से हट हुआ होता है। उनके विचार और खास कर त्याग के एक आदर्श के रूप में जोर देकर रखने का उनका तरीका कई लोगों को विचित्र लगता है। हमारे आज के जमाने के लोग स्त्री व पुरुष सम्बन्धी उनके विचारों को भी गैर-मामूली मानते है। ये सारी बातें गांधीजी के व्यक्तिगत-दर्शन से सम्बन्धित है, ऐसा मैं कह सकता हूँ। और जो लोग उन्हें एक धार्मिक और नैतिक व्यक्ति तथा अगुआ के रूप में ही देखते है, वे उनके इन विचारो को कम ज्यादा प्रमाण मे मानते भी है। इसमें कोई शक नही कि गांधीजी बजाप्ते खुद जिन्दगी मे जो कठिन तौर-तरीका अपनाए हुए है, उसके बारे में उनका यह ख्याल नहीं है कि कुछ गिने-चुने आश्रमवासियों को छोडकर आम लोग भी उसे अपना लेंगे। वे इस बात की उम्मीद जरूर करते हैं कि उनके ये गिने चुने साथी एक मिसाल कायम करेंगे और धीरे धीरे उसका असर आम लोगो पर पड़ता ही चला जाएगा।

विज्ञान के बारे में उनका रुख खिलाफ नहीं है। बल्कि वे तो विज्ञान का स्वागत करते हैं और कई तरीको से उससे होनेवाले फायदों को जहाँ-तहाँ लागू भी करते है। प्राय लोग जानबूझकर उनके बारे में गलतफहमी कर लेते है और फिर कहते फिरते है कि वे विरोधी बातें करते है। जैसे वे शल्य-चिकित्सा (आपरेशन) कराने को तैयार हो जाते है, मोटर-गाडी में यात्रा करते है, छापे की मशीन का उपयोग करते है, या तार भेजते है और टेलीफोन भी करते है। इसमें तो कोई शक नहीं है कि वे मूलत, एक धार्मिक व्यक्ति है, इसलिए उनका स्वभाव विज्ञान के तौर-तरीको में बाहरी ढंग से सच को खोजने के बजाय उसे भीतर खोजने का है।

जहाँ तक मैं जानता हूँ, उन्होंने कभी ऐसा नहीं कहा कि बड़े उद्योग पर उत्पादन करना बिलकुल समाप्त कर देना चाहिए; वे यह जरूर कहते हैं कि जहाँ तक बने उद्योग-धन्धों का विकेन्द्रीकरण करना चाहिए, जिसमें उत्पादन की बड़ी-बड़ी इकाइयाँ, स्थापित करने के बजाय, छोटी-छोटी इकाइयाँ स्थापित की जा सकें। वे साइन्स की खोजों और वैज्ञानिक तरीकों का इसी काम को अंजाम देने के ख्याल से पूरा पूरा उपयोग करना चाहते हैं। उनका ख्याल है कि आधुनिक परिस्थितियों में यह सर्वथा अनुकूल है। फिर भी अगर ऐसा न हो तो वे दूसरी बातों के लिए भी पूरी तरह से तैयार हैं। किसी भी हालत में जहाँ तक गाँधीजी का सवाल है, यह बात उठती ही नहीं कि वे, जो सुविधाएँ साइन्स आदमी को दे सकता है, उसकी तरफ से आँखें बन्द कर लें।

संक्षेप में, विज्ञान और उद्योग की तरफ गाँधीजी की दृष्टि यही है। हो सकता है यह दृष्टि सही न हो और यह भी हो सकता है कि इसके पक्ष में वे जो तर्क देते हैं, वे भी सदोष हों। मगर बेशक इसका यह मतलब तो नहीं निकलता कि वे साइन्स से इन्कार करते हैं और मशीन से उत्पादन को एकदम मिटा देना चाहते हैं। यह मुमकिन है कि वे जिस तरह से सोचते हैं, अगर वैसा किया जाए तो आज दुनिया में जितना उत्पादन हो रहा है, उससे उत्पादन कुछ कम हो, और इस अर्थ में यह आगे बढ़ने के बजाय पीछे हटने जैसी बात कहलाए। इसे मान लें तो भी यह हमारी आज की इस व्यवस्था से तो कम पागलपन की बात है, जो उत्पादक के लाभ के विचार से जानबूझकर कृषि और उद्योग दोनों के उत्पादन पर रोक लगाती है, और लाखों लोगों को जिन चीजों की जरूरत है ऐसी चीजें और अन्न की—कीमतें ऊँची बनाए रखने के लिए, पैदा करने के बाद भी नष्ट कर देती है।

गाँधीजी का उत्पादन की छोटी इकाइयाँ स्थापित करने का विचार भी उनके सभी राजनीतिक अनुयायियों को पूरी तरह मंजूर नहीं है। मैं खुद भी वैसा विचार नहीं रखता। और यहाँ यह बात साफ कर देना चाहता हूँ कि भारतीय काँग्रेस और हमारे राष्ट्रीय आंदोलन ने इसे माना नहीं है। केवल एक बात को छोड़ दें तो गाँधीजी ने

कांग्रेस से यह अपनी बात स्वीकार करने के लिए कभी कहा भी नहीं है। सारी दुनिया जानती है कि कांग्रेस को उन्होंने जो बात स्वीकार करने को कही है,वह है हर छोटे-न बड़े घर में चल सकने वाला चरखा। कांग्रेस ने भारत के किसानों को चरखे में अपनाकर सूत कातने के लिए प्रोत्साहित किया है, सो इसलिए नहीं कि हम मशीन या विज्ञान के विरोध में हैं; बल्कि इसलिए किया है कि हमारी आज की परिस्थितियों के साथ यह बात मेल खाती है। भारतीय किसान के लिए चरखे पर कातने की बात की सिफारिश करना मशीन के खिलाफ बात करना है, ऐसा कहना बिल्कुल निरर्थक है। चरखा किसी दूसरे धन्धे की जगह लेने वाला भी नहीं है। हमारे देश में किसानों बारह महीने का काम नहीं है, किसान-को काफी वक्त तक खाली बैठे रहना पड़ता है। फसल बोने और काटने वगैरह के मौसम में उन्हें बहुत काम रहता है और साल का बहुत सा समय फिर ऐसा भी गुजरता है जिसमें उनके पास कोई काम नहीं रहता। इस खाली वक्त में भी किसान और उसके कुटुम्ब के लोग चरखे पर सूत कातें और इस तरह थोडी अतिरिक्त आमदनी कर लें। इस तरह आप देखेंगे कि यह उनके लिए एक दोयम दरजे का धन्धा है, एक सहायक उद्योग है। अगर खाली वक्त में इससे बेहतर कोई धन्धा मिल जाए तो किसान को उससे रोका नहीं जाएगा। मगर जब कोई दूसरा धन्धा उसके सामने है ही नहीं, तो फिर जो आसानी से हरेक के पास पहुँचाया जा सकता है और जिससे किसान की थोडी बहुत आमदनी बढ सकती है, वह चरखा किसी चीज के खिलाफ क्यों माना जाए? जमीन पर हमारे देश की ज्यादातर आबादी काम करती है, चरखा उनके लिए बहुत बड़ा सहारा हो सकता है। यह बात समझने की है कि दुनिया में जैसा हुआ है उसके पिछले सौ साल से आज तक हमारे गाँव की आबादी शहरों के मुकाबले में ज्यादा बढ रही है।

ये जो करोडो लोग गाँवो में बेकार या अर्द्ध बेकार हालत में है उन्हे पूरा काम देने का सबसे अच्छा तरीका तो देश में उद्योग धन्धो का बढाया जाना ही है। यदि वैज्ञानिक ढंग से खेती की जाए तो किसान की मेहनत और वक्त दोनो बचेंगे और फसल भी ज्यादा होगी। मगर

उसका फौरी नतीजा तो यह होगा कि बेकारी बढेगी। चरखा इस समस्याको हल नही कर सकता, बेकारी को पूरी तरह से नहीं हटा सकता, फिर चाहे बेकारी पूरे वक्त की हो या आधे वक्त की। अगर राज्य चलाने की सत्ता हमारे हाथ में होती तो इसमें कोई शक नहीं है कि हम उद्योग-धन्धो के साथ-साथ और भी कई तरह के उपायो की आजमाइश करते। मगर आज जो हालत है, उसमें तो हम लाचार है और देश के आर्थिक स्तर को ऊँचा करने के लिए छोटे-छोटे स्तर पर छोटे-छोटे काम ही कर सकते है। इसमें भी कोई सदेह नही है कि अपने सीमित दायरे में चरखा और उससे सम्बन्धित दूसरे ग्रामोद्योग जहाँ जहाँ लागू किए गए है, वहाँ-वहाँ उन्होने लोगो को राहत दी है। चरखे का व्यापक प्रचार करने के विरोध में एक जोरदार तर्क तो यह है कि वह चरखा अपनाने वालो की हालत थोडी बहुत सुधार देता है और इस तरह किसानी और आर्थिक क्षेत्र के उस ढाँचे को कायम रखने में मदद करता है, जिनकी आज दुनिया में कोई जगह नही है, और जो दूसरी सभी जगहो से धीरे धीरे खत्म हो रहे है। कोई भी सिरे का समाजवादी इस तरह की बैसाखी लगाकर टूटे हुए ढाँचे को खडा करने के खिलाफ जरूर ही बोलेगा।

ये कुछ छोटी-मोटी बाते है। इसके सिवाय फिर कुछ बातें राजनैतिक दायरे की है? जिनके कारण छोटे धन्धे और चरखे आदि पर जोर दिया गया। उदाहरण के लिए विदेशी कपडे का बहिष्कार। काँग्रेस को यह बहिष्कार सफल करने के लिए चरखे को प्रोत्साहन देना आवश्यक जान पडा। चरखे पर सूत कातना और करघे पर कपडा बुनना एक दूसरी दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है और वह है मानवीय दृष्टि। इसके कारण हमारे देश के पढे लिखे लोग हमारे गाँवो के बिना पढे लिखे लोगो के सम्पर्क में आए और अँग्रेजी शासन के इकतरफा शिक्षण ने जो खाई पैदा कर दी थी, उस खाई को भरने में भी इससे बहुत मदद मिली।

❀

नित्य नई तालीम

युगदर्शी विनोबा

[ब्रह्म-विद्यामन्दिर पवनार में दिए गए प्रवचन के आधार पर]

हमको कबूल करना चाहिए कि इस वक्त नई तालीम का काम बहुत कठिन हालत में है। मैंने एक व्याख्यान में कहा था कि नई तालीम नित्य नई तालीम है। १९३७ – ३८ मे नई तालीम का आरम्भ हुआ।

इन वर्षों में जनता की आकांक्षाओं में— सरकार के द्वारा जो काम हुआ, उसके लिए भी और अपने जीवन के लिए भी— असन्तोष है। नई आकांक्षाएँ पैदा हुई हैं और नए असन्तोष पैदा हुए हैं। . ...

जमाने का सवाल तो है ही, लेकिन मानस शास्त्र है कि जिन लोगों ने काफी त्याग किया है वे भी अपने बच्चों को ज्यादा त्याग न करना पडे ऐसा चाहते हैं। .. एक वीकनेस है। ..

मनु ने कहा था कि बच्चों को ताडन करना चाहिए। "पचवर्षाणि लालयेत् दसवर्षाणि ताडयेत्" पाँच वर्षों तक लालन याने प्री बेसिक और दस साल तक ताडन याने बेसिक। ताडन का अर्थ छडी लगाना नहीं, उसका अर्थ सख्त जीवन, हार्ड लाइफ। और पन्द्रह साल के बाद मित्र हुआ तो जिम्मा उठाएगा। (प्राप्ते तु षोडषे वर्षे पुत्र-पुत्रीम् मित्रवदाचरेत्) यह हमारे देश की योजना थी कि पन्द्रह साल के बाद वह स्वावलम्बी बने।

मेरा मन इस प्रकारसे सोचता है कि नई आकांक्षाओंकी पूर्ति हम हमारी तालीम में करें। और उसको हम बेहतर तालीम कहे।

हम शिक्षक हैं तो (विभिन्न भाषा के समाज में अपने आप प्रचलित होनेवाले शब्दोंकी) यादियाँ बना सकते हैं। (बच्चों को उनके शुद्ध उच्चार और शुद्ध रूप सिखा सकते हैं। बाद में इंग्लिश भाषा भी बच्चों को सिखाई जा सकती है) प्रचलित शब्दोंकी यादियाँ सायंस के लिए बनाएँगे, नई तालीम के लिए बनाएँगे, कृषि विज्ञान के लिए बनाएँगे। अपनी मातृ भाषा का उत्तम ज्ञान बच्चों को होना चाहिए। उत्तम याने व्याकरण युक्त व्युत्पत्ति युक्त ताकि बच्चा जितना पढता है उतना अच्छी तरह समझ ले। बाद में अँग्रेजी सिखा सकते हैं। हम इस तालीम को सुधरी हुई तालीम यानी बेहतर तालीम कहेंगे।

उसके साथ आध्यात्मिक विषयकी बुनियाद हो। उस शब्द से डरना नहीं चाहिए। दूसरे रचनात्मक काम हैं उन कामों में भी इस ज्ञान का रंग लगे।

लोकमान्य की कहानी है, वे मंडला जेल में थे तब उनके लिए एक रसोइया रखा हुआ था। उस रसोइए को वे रोज एक घंटा संस्कृत सिखाते थे। उन्होंने उसको कहा कि भाई तेरा मुझ पर इतना उपकार है, तुम मुझे रोज खिलाते हो इसलिए मैं तुमको सिखता हूँ। यह मेरा तुम पर कोई उपकार नहीं। तो उनको प्रेरणा हुई कि वे उसको थोडा ज्ञान दें। यह प्रेरणा जिनको नहीं हुई, उनको मैं पढा हुआ मनुष्य नहीं मानता। ज्ञान में उनको रस नहीं।

सेवाग्राम के बारे में —

वहाँ जो प्रयोग करना चाहते हो खेती वगैरह उसको मैं बहुत पसंद करता हूँ। जो बच्चे आना पसन्द करेंगे, उनको लेकर पूरी नई तालीम का ढाचा दें। तो इस मामले में आपके साथ मेरी पूरी सहानुभूति रहेगी, मानसिक सहानुभूति।

दिवाकर जी कुछ पहले मुझे मिलने के लिए आए थे। उन्होंने पूछा था कि गांधी स्मारक निधि तालीम संघ को मदद करे। तो मैंने

कहा कि जरूर मदद करनी चाहिए। वह निधि नहीं होती तो अलग बात है। फिर दूसरी मदद के लिए सोचा जाता। और वहाँ उन्होंने तय किया है कि हम सरकारी मदद नहीं लेंगे। अगर माँगे तो उसको सरकार मदद करेगी। हम थोड़े भी ढीले रहे तो सरकार पैसे का ढेर लगाएगी। उस हालत में गाँधी निधि जरूर मदद करे। ये इधर-उधर गाधी स्मारक करते हैं। पर इससे (नई तालीम से) बढ़कर गाँधी स्मारक क्या होगा?

लेकिन आपको तीन पाँव पर चलने की कसरत करनी होगी। एक तो आप महाराष्ट्र में हैं इसलिए उसकी जो उत्तम संस्कृति है, उसे लेनी चाहिए। हरेक प्रान्त में उत्तम संस्कृति होती है, सामान्य संस्कृति होती है और विकृति होती है। विकृति लेने की जरूरत नहीं, सामान्य संस्कृति भी लेने की जरूरत नहीं। उत्तम संस्कृति का दर्शन होना चाहिए और वह हो ऐसा प्रयत्न हम करें। दूसरा अखिल भारत का दर्शन वहाँ हो और तीसरा समग्र विश्व का दर्शन हो। वेद के शब्दों में विश्व मनुष्य बनाने का काम हम कर रहे हैं। लड़का पढ़ने के लिए आया तो जाते समय ये तीन चीजें साथ ले जाए और विश्व मानुष बन कर जाए ऐसा होना चाहिए।

जहाँ तक सेवाग्राम का ताल्लुक है, वहाँ के बच्चों की बजाय वहाँ के माता पिता के साथ आपका अगर सांस्कृतिक सम्बन्ध रहा और अगर आप आर्थिक सेवा करने के बजाय सांस्कृतिक सम्पर्क रखें तो ज्यादा अच्छा होगा। बच्चों के बारे में दुनिया में जो शिक्षा का पैटर्न है, उसको बहुत से लोग पसन्द करेंगे। उसमें से कोई ऐसे मानव मिलेंगे जो आपकी शिक्षा पसन्द करेंगे।

मैंने भी मेरे पास बच्चे रखे थे। तालीम का काम मैं लगभग १९६३ से करता आया हूँ। जब मैं कालेज में था और पढ़ता था तब से पचास साल से वह चलता आया है। कोई इंग्लिश सीखने के लिए आता था तो मैं उसको टालस्टाय की कहानियाँ, वर्ड्सवर्थ की कविता या बायबल पढ़ाता था। हिन्दी सीखने आया तो रामायण पढ़ाता था।

तो उसमें से मैंने अपना मतलब निकाला। भाषा तो सिखानी है, लेकिन उसका आधार क्या ? व्याकरण आदि चर्चा जरूर करो, लेकिन दुनिया का आधार जो टेक्स्ट है, वह आध्यात्मिक है। अब रामायण है, उत्तम भाषा उत्तम साहित्य तो है ही। लेकिन वह आध्यात्मिक भी है। बहुतों को लगता है कि हमारी भाषाएँ बहुत सारी कंगाल हैं। और यह बात इस अर्थमें सही है कि आधुनिक विज्ञान हमारी भाषा में कम है। लेकिन रामायण जैसे ग्रन्थ पढ़ेंगे तो हमारी भाषा कंगाल नहीं है बल्कि कितनी समृद्ध है यह बात ध्यान में आएगी।

बच्चों के सामने मैंने व्याख्यान दिए थे। उनके साथ बात करते करते व्याख्यान हुए थे। मैंने कहा कि वे जैसे के वैसे छापे जाएँ कि कब उन्होंने प्रश्न पूछे, और वे हँसे, कब तालियाँ बजाई पूरा चित्र उसमें खड़े हो। ऐसे व्याख्यान तालीम के लिए जरूरी हैं। तो इस प्रकार की पुस्तकें बन सकती हैं।

❦

"मैं शिक्षा को स्वावलंबी बनाने के लिए इसलिए आतुर हूँ कि हमारे बच्चे पुरुषार्थी बनें, अपने पैरोंपर खड़ा होना सीखें और सरकारी नौकरियों के पीछे न दौड़ें। हमारे ऋषियों ने कहा था कि सच्ची शिक्षा वही है जो विद्यार्थियों को मुक्ति प्रदान करे—'सा विद्या या विमुक्तये'। वर्तमान प्रणाली तो हमारे बच्चों को अपंग व परावलम्बी बना रही है। इस व्यवस्था को बुनियाद से बदलना जरूरी है।"

—महात्मा गांधी

नई शिक्षा संरचना १०+२+३

डॉ. श्रीमन्नारायण

सर्व साधारण में १०+२+३ के नाम से प्रचलित नई शिक्षा संरचना (प्रणाली) अब भारत सरकार तथा लगभग सभी प्रादेशिक सरकारों द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के रूपमें मान्य कर ली गई है। इस प्रणाली की सिफारिश कोठारी आयोग द्वारा जून १९६६ में की गई थी। अक्टूबर १९७२ में सेवाग्राम में मैंने एक राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन आयोजित किया था जिसका उद्घाटन श्रीमती इंदिरा गाँधीने किया था तथा जिसमें प्रदेश के शिक्षा मंत्रियों के अतिरिक्त अनेक कुलपतियाने भाग लिया था। इस सम्मेलन ने कोठारी आयोग की सिफारिशों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए इस प्रणाली को सार्वभौम रूप में अपनाने की भारत सरकार से प्रार्थना की थी।

शिक्षा मंत्रालय द्वारा सन् १९७३ में प्रकाशित अपनी पाँचवीं योजना और शिक्षा शीर्षक पुस्तिका में सभी प्रादेशिक सरकारों द्वारा १०+२+३ की शिक्षा प्रणाली ग्रहण किए जाने की सिफारिश की गई थी। पाँचवें पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में भी इस एकरूप प्रणाली को स्वीकृति दी गई थी और प्रादेशिक सरकारों को अपनी अपनी योजनाओं में इसे शामिल करने को कहा गया था। तदनुसार अब नीति के अनुरूप इसे लागू करने का निश्चय लगभग सभी प्रदेशों में कर लिया गया है।

निश्चित की गई संरचना, पुरानी प्रणालियों का अत्यंत विकसित रूप है तथा देश में प्रचलित विभिन्न शिक्षा प्रणालियों में एकरूपता लाने वाला है। चूंकि शिक्षा का समावेश हमारे संविधान की स्वीकृत सूचियों में हो गया है अतः विभिन्न प्रदेशों में नई संरचना को अधिक सरलतापूर्वक लागू किया जा सकता है। शिक्षा में सुधार का आशय न तो पूरे रूप में अभी ग्रहण ही हुआ है और न उसे इस रूप में केन्द्रीय

और प्रादेशिक सरकारों द्वारा लागू ही किया गया है। यही कारण है कि उसका कार्यान्वियन या तो आकस्मिक, अनियमित या अव्यवस्थित होता है या फिर अधूरी तैयारी वाला और पूर्वचिन्तन-विहीन होता है। परिणामत सारे देशकी शिक्षण सस्थाओ में शिक्षको, विद्यार्थियो एव छात्रों के अभिभावको से सबधित अनेक समस्याएं उत्पन्न हो जाती है।

यद्यपि शिक्षा की कालावधि एक वर्ष से बढ गई है फिर भी किसी समाज को कोई ठोस लाभ मिलना सभव नही हो पाया वरन् शिक्षितो की वेकारी की समस्या ज्यो की त्यो गभीर बनी रही। ऐसा मुख्यत इसलिए हुआ कि इस शिक्षा सरचना को समझने और लागू करने में हमने कई महत्वपूर्ण बातें छोड दी। जिन बातो और विकृतिये की ओर हमने ध्यान नही दिया उनका उल्लेख मैं यहाँ करना चाहूँगा जिससे केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारे, देर सबेर ही क्यो न हो, आवश्यक एव त्वरित (शीघ्र) उपाय योजना कर सकें।

'कार्यानुभव' के विचार को ही ठीक तौरसे नही समझा गया है। कोठारी आयोग ने बुनियादी शिक्षा सबधी महात्मा गाँधी की कल्पना-को अपनी सिफारिशो के लिए साररूप मे ग्रहण किया था। उन्होने इस बातकी सिफारिश की थी कि "बुनियादी शिक्षा के आवश्यक सिद्धान्त, शिक्षा प्रणाली की सरचना के रूप को गढने में मार्गदर्शक होंगे।' बुनियादी शिक्षा के ये अतर्निहित सिद्धान्त इस प्रकार वर्णित थे— (१) उत्पादकता, (२) पाठ्यक्रमका उत्पादक वृत्तियो तथा व्यक्तिगत और सामाजिक वातावरण के साथ समन्वयात्मक सम्बन्ध, (३) शालाओं और स्थानीय समाज के बीच घनिष्ट सम्पर्क।

विश्व विद्यालयीन आयोग ने भी 'कार्यानुभव' के अपने द्वारा प्रतिपादित अर्थ को बुनियादी शिक्षा मे प्रतिपादित उत्पादक कार्य के अनुरूप ही बताया। अत आयोगने यह सिफारिश की थी कि कार्यानुभव को प्राथमिक, माध्यमिक एव विश्व विद्यालयीन स्तरपर शिक्षा का अगीभूत अग माना जाए।

शिक्षा विभाग द्वारा जारी किए गए एक पैम्फलेट (पुस्तिका) में तथा पाँचवी पचवर्षीय योजना में यह दिशाका निर्देश किया गया कि

'विकास की आवश्यकताओ और रोजगार के अवसरों के साथ शिक्षा को प्रभावी रूपसे जोड़ा जाए तथा कार्यानुभव अनिवार्यतः पाठ्यक्रम का अंगीभूत अंग रहे, जिससे 'छात्र स्वतंत्र रूपसे आजीविका के साधन जुटा सकें, कृषिके समुन्नत व्यवहारों से परिचित हो सकें। पशुपालन, ग्रामोद्योग, शिल्प आदिका समावेश कार्यानुभव में होना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्र में तो यह विशेष रूप से आवश्यक है। इस बात पर भी बल दिया गया था कि शैक्षणिक गतिविधियों में ग्राम पंचायतों और सहकारी समितियों का भी सक्रिय सहयोग समाविष्ट किया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद ने अपने 'कार्यानुभव की निर्देशिका' शीर्षक पुस्तिका में कार्यानुभव को शिक्षा का आभ्यंतर अंश बनाने पर काफी बल दिया है तथा यह भी कहा है कि शिक्षा संस्थाओं द्वारा तैयार की गई वस्तुएँ बाजार में बिकने योग्य हों और काम में आने लायक हों। तथा उससे जो प्राप्ति हो उसका अधिकांश हिस्सा संबंधित छात्र को स्कूली गणवेश या दोपहर के भोजन के रूप में प्राप्त हो।

एन सी ई आर टी द्वारा तैयार किए गए दस वर्षीय स्कूली पाठ्यक्रम में कार्यानुभव के लिए निर्धारित समय एकदम अपर्याप्त है। प्राथमिक स्तर पर यह स्कूल के पूरे समय का केवल २० से २५ प्रतिशत है, माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर पर सप्ताह की ४८ तालिकाओं में से ५ तालिका ही इसके लिए निर्धारित की गई है। हाल ही में प्रकाशित (द करीकुलम फॉर टेन ईयर स्कूल) 'दस-वर्षीय शालाओं का पाठ्यक्रम' शीर्षक में कहा गया है कि पहले के वर्षों की अपेक्षा कार्यानुभव के लिए लगाया जानेवाला समय आनुपातिक रूप में कम हो गया है, क्योंकि विज्ञान, समाज विज्ञान, तथा गणित अधिक समय ले लेते हैं। निश्चय ही यह पर्यवेक्षण बुनियादी शिक्षाके अंतर्हित आवश्यक सिद्धान्तों के संबंध की गलत धारणा पर आधारित है।

महात्मा गाँधी ने अनेक बार स्पष्ट किया कि बुनियादी शिक्षा शिक्षा+कार्य नहीं है वरन् कार्य के माध्यम से शिक्षा है। यही कारण है कि उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि विविध शास्त्रीय विषयों का ज्ञान कक्षाभवनों में नहीं दिया जाना चाहिए। वह तो खेतों, कार्य-शालाओं, कुटीरों, घरों में उन तक पहुँचाया जाए जिससे बालक अपने पाठ वास्तविक उत्पादक तरीकों से सीख पाएँ। गाँधीजी का उद्देश्य उत्पादन कार्य के महान उपाय द्वारा शिक्षा मे आत्मनिर्भरता की ओर था। इसलिए नहीं कि वे यह चाहते थे कि प्रदेश शिक्षा पर कम खर्च करें वरन् इसलिए कि वे अधिकतम आत्मनिर्भरता को कार्यक्षमता का 'अम्ल परीक्षण' मानते थे।

दिसंबर १९३७ में जाकिर हुसेन कमेटी द्वारा बुनियादी विद्यालयों के लिए बनाए गए पाठ्यक्रम में विद्यालयों के निर्धारित पूरे समय में से आधा समय उत्पादक कार्यों के लिए निर्धारित था जिसे अब 'कार्यानुभव' की संज्ञा दी गई है। वाराणसी के समीप शिवपुरी में नवंबर १९७६ में आयोजित अखिल भारतीय बुनियादी सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए उपराष्ट्रपति श्री बी डी जत्तीने भी इस बात की सिफारिश की थी कि स्कूल में निर्धारित समय का आधा समय कार्यानुभव तथा सम्बद्ध कार्यक्रमों को ही दिया जाना चाहिए।

जब तक ऐसा नहीं किया जाता तथा विज्ञान गणित आदि अनेक विषय शहरों तथा ग्रामों में उत्पादक तरीकों या प्रात्यक्षिकों द्वारा नहीं सिखाए जाते तब तक नई शिक्षा संरचना का प्रामाणिक या निर्णायक महत्व तरल हवा में वाष्प रूप होता रहेगा और बुनियादी शिक्षा के आवश्यक सिद्धान्तों के सभी स्तरोंपर समाविष्ट करने की कोठारी आयोग की सिफारिश स्वप्न मात्र रह जाएगी।

तथाकथित शैक्षणिक विषयों का अध्यापन और उत्पादक क्रियाकलापों का सहसम्बन्ध गाँधीजी की बुनियादी तालीम का विशुद्ध सारभाग है। इसीलिए कार्यानुभव के द्वारा 'शिक्षण तथा शिक्षण के समय उपार्जन' वे मूलभूत मूल्य हैं जो नई सरचना के अतर्गत कार्यानुभव के सभी कार्यक्रमों को अनुशासित करते हैं। कार्य द्वारा अनुस्थापित

प्रणाली के अभाव में प्रस्तावित शिक्षा सुधार व्यर्थ, खर्चीला परिश्रम, सिद्ध होगा।

'पुस्तकीय-ज्ञान को उपयोगी शिक्षा में परिवर्तित करने की मूलभूत समस्या की कोरी पुकार मात्र से भविष्य मे कोई सार्थक परिणाम नही होगा। भविष्य में नया पाठ्यक्रम अनिवार्य रूप से 'कार्यात्मक' प्रकृति का हो, जिसका गृह-जीवन, उत्पादक उद्योग, सामाजिक और व्यक्तिगत (प्राकृतिक) वातावरण से निकट का सम्बन्ध हो। तभी शिक्षा के क्षेत्र में सार्थक क्राति सभव हो सकगी।

नई शिक्षा सरचना में उच्च माध्यमिक स्तर पर दो वर्षीय पाठ्यक्रम वास्तव में महत्वपूर्ण आधारभूत निर्णायक है। जब कि माध्यमिक शिक्षा का दस वर्षीय पाठ्यक्रम मूलत कार्यानुभव के कार्यक्रम के माध्यम स शालाओ को समाज के समीप लाने और सभी छात्रो को उपयोगी शिक्षण देने की मशावाला है।

दो वर्षो के प्रमाण-पत्र-पाठ्यक्रमो का मूल उद्देश्य विविध व्यवसायो का प्रशिक्षण देना है जिससे विश्व विद्यालय आयोग के परामर्शानुसार दस वर्षीय माध्यमिक पाठ्यक्रम में उत्तीर्ण कम से कम ५० प्रतिशत छात्र इन पाठ्यक्रमो का लाभ उठा सक तथा स्वतत्र आजीविका अर्जित कर सकें या फिर उपयुक्त तकनीकी काम प्राप्त कर जीवन में स्थिर हो सकें। यह तो स्पष्ट है कि ये प्रमाण-पत्र पाठ्यक्रम सात्रिक स्वरूप (आशिक समय) के होंगे। जिससे महाविद्यालयो और विश्वविद्यालयो में प्रवेश पानेवालो की भीड पर्याप्त मात्र में कम हो जाए।

एन सी ई आर टी द्वारा प्रकाशित 'उच्च माध्यमिक शिक्षा और उसका व्यवसायीकरण' नामक पुस्तिका में यह ठीक ही इगित किया गया है कि इन पाठ्यक्रमो की सरचना लचीली होनी चाहिए जिससे छात्र मनोनुकूल या सामाजिक आवश्यकताओ के अनुरूप तकनीकी या व्यवसायिक प्रशिक्षण का चुनाव कर सकें।

इस बात की भी सिफारिश की गई है कि विविध क्षेत्रीय उच्च माध्यमिक शालाओमे के अतिम चुनावसे पहले जिलेवार सुनियोजित

आर्थिक सर्वेक्षण किया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ आज के भारत के गाँवों में ट्रेक्टरों तथा खेती के अन्य औजारों के सुधारने, नलकूपों को ठीक करने और जलचलों को सुधारने तथा बिजली स्थापना के रखरखाव के लिए प्रशिक्षित युवकों की भारी माँग है।

गाँवों मे खुल रही राष्ट्रीयकृत बैंको की नई शाखाओं, जीवन बीमा निगमो की इकाइयों तथा विभिन्न सहकारी संगठनो की व्यवस्था के लिए बडी सख्या में प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता है।

खेती के कार्यक्रमो, बागवानी या उद्यान, विज्ञान, दुग्ध शालाओं के विकास तथा वनविद्या हेतु के लिए भी प्रशिक्षित व्यक्तियो की आवश्यकता है। अत द्विवर्षीय प्रमाण पत्र (डिप्लोमा) पाठ्यक्रम मे इन विविध सामाजिक आवश्यकताओ की पूर्ति को सक्षम ढंग से जुटाने की व्यवस्था होनी चाहिए। जैसा कि सेवाग्राम आयोजित शिक्षा सम्मेलन में इगित किया गया था कि यद्यपि दो वर्षो के प्रमाण पत्र (डिप्लोमा) पाठ्यक्रमो का स्वरूप टरमिनल (स.त्रिव) ढग का होगा फिर भी छात्र के लिए भविष्य में कभी भी उच्च अध्ययन का मार्ग पूरी तरह खुला रहना चाहिए। यदि ये तकनीकी पाठ्यक्रम किसी प्रकार की 'अधगलियाँ' सी बन जाते है, तो फिर देश के सर्वोत्कृष्ट बुद्धिमानों को वे आकर्षित नही कर सकगे और तेजस्वी छात्रों की प्रवृत्ति अगर ऐसे पाठ्यक्रमों से कतराने की ओर होगी, तो उनका भावी विकास सदा के लिए कही अवरुद्ध न हो जाए।

चूँकि दो वर्ष के पाठ्यक्रम के पीछे बुनियादी कल्पना उच्च माध्यमिक स्तर पर बडी सुदृढ है, एन सी ई आर. टी. द्वारा उपस्थित अध्ययन के प्रत्यक्ष पाठ्यक्रम मे भिन्न भिन्न चित्र प्रस्तुत किया गया है। + २ का पाठ्यक्रम छात्र की रुचि के अनुसार व्यावसायिक और शैक्षिक इन दो धाराओं मे विभाजित किया गया है। अत व्यावसायिक धारा के छात्रों को उनके लिए नियत समय का ५० प्रतिशत अंश प्रात्यक्षिकी में लगाना पड़ेगा। बचा हुआ आधा समय भाषाओं तथा सर्वसाधारण अध्ययन (सामाजिक अर्थशास्त्रीय तथा वैज्ञानिक अर्थात् विज्ञान, समाज शास्त्र तथा मानविकी, जिसमें साहित्य का समावेश है) में लगेगा।

यह सचमुच अच्छी और उपयोगी सरचना (पद्धति) है। लेकिन एन सी ई आर टी योजना निरूपित करती है कि शास्त्रीय धारा के चाहनेवालो को किसी भी प्रकार के व्यावसायिक कार्य के लिए विशेष समय देने को नही कहा जाएगा। उनके समय का ७५ प्रतिशत विज्ञान, साहित्य समाविष्ट मानविकी के लिए ही निर्धारित रहेगा तथा शेष २५ प्रतिशत समय भाषा और सर्वसाधारण अध्ययन के लिए दिया जाएगा। यह राष्ट्रीय शिक्षा अनुसधान तथा प्रशिक्षण परिषद द्वारा प्रस्तुत योजना की भारी भूल है। नई शिक्षा योजना के + २ के चरण में इस प्रकार की योजना द्वारा वर्तमान अध्ययन-कक्ष-पद्धति को ही स्थायी प्रश्रय मिलेगा और महाविद्यालयो तथा विश्वविद्यालयो की वर्तमान भीड कम न होगी। उच्च माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण की सारी चर्चा निष्क्रिय एव निरर्थक हो जाएगी। स्वभावत अधिकांश छात्रो का झुकाव शास्त्रीय धारा की ओर होगा और बहुत ही कम युवक 'मद-बुद्धि' का उपनाम पाना पसन्द करेंगे।

फिर भी एन सी ई आर टी के पैम्फलेट में यह कहा गया है कि शास्त्रीय धारा के छात्रो के लिए कार्यानुभव अवश्य अनिवार्य होना चाहिए और इन छात्रो द्वारा प्रतिवर्ष एक माह खेतो में, कारखानो में, कर्मशाला या शिल्पशालाओ व कार्यालयो मे शिक्षा उम्मीदवार (शिशिक्षु) के रूप में अवश्य विताए जाने की व्यवस्था होनी ही चाहिए।

यदि हम इसे शास्त्रीय पाठ्यक्रमो म अगीभूत नही करेंगे तो स्पष्ट है कि ऐसी इच्छा केवल कागज पर ही रह जाएगी। मै गभीरता-पूर्वक आशा करता हूँ कि शिक्षा मत्रालय इस महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर अविलम्ब ध्यान देगा। अन्यथा नई शिक्षा सरचना जिस आशा से खडी की गई है उसकी पूर्ति नही हो पाएगी।

भाषा, विज्ञान, सामाज विज्ञान तथा साहित्य समाविष्ट मानविकी के विविध व्यावसायिक पाठ्यक्रमो की एक मुख्य धारा का होना वांछनीय होगा। यूनेस्को कमीशनने शिक्षाकी प्रगति (१९७२) के सबध में अपनी अविस्मरणीय रिपोर्ट 'लर्निग टु वी' मे ठीक ही पर्यवेक्षित किया है कि अध्यापन के विविध सर्वसाधारण वैज्ञानिक तकनीकी और

व्यावसायिक आदि कठोर विभाजनों को समाप्त कर दिया जाना चाहिए तथा प्राथमिक और माध्यमिक स्तर की अपेक्षा एक ही समय में केवल तकनीकी, प्राविधिक, प्रात्यक्षिक तथा उत्पादक उद्योगों का प्रशिक्षण देना ठीक होगा।

जैसे भी हो, जो कम से कम परिवर्तन आवश्यक है, वह यह कि व्यावसायिक और प्रात्यक्षिकी के लिए अकादमिक धारा के संपूर्ण समय में २५ प्रतिशत समय अनिवार्य रूप से, समाविष्ट किया जाए। इस न्यूनतम परिवर्तन के बिना +२ स्तर (चरण) का उद्देश्य विफल हो जाएगा या संभव है कि वह पराजित ही हो जाए।

विश्वविद्यालयीन स्तर पर कोठारी कमीशन ने सिफारिश की थी कि प्रथम उपाधि-पाठ्यक्रम तीन वर्ष से कम का न हो। कमीशन ने विश्वविद्यालयों में औद्योगिक शिक्षा के महत्व पर बल दिया जिससे उच्च शिक्षा केवल 'सफेद पोश नौकरी पेशा (बाबू), के लिए न रह जाए। विश्वविद्यालयों मे प्रवेश, क्षेत्रीय मानवशक्ति की आवश्यकता तथा रोजगार के अवसरों को ध्यान में रखकर रहे। उसने यह सुनिश्चित सिफारिश की थी कि यू. जी. सी. की पूर्वानुमति तथा उपयुक्त आर्थिक व्यवस्था के बिना कोई विश्वविद्यालय शुरू न किए जाएँ।

पाँचवी पचवर्षीय योजना के रूप रेखांकित प्रारूप में भी कहा गया है कि 'विश्वविद्यालयीन पाठ्यक्रमों को फिर से गढ़ा जाए जिससे कि छात्र अपना अध्ययन पूरा करने पर समाज का उत्पादक सदस्य बन सके, चाहे कम से कम ही क्यों न हो, फिर भी शिक्षा को 'प्रत्यक्ष समस्याओं और सामाजिक उपयोगिताओं के साथ जोड़ने का सुझाव दिया।' इसके अतिरिक्त योजना आयोग ने नई भर्ती की नीति में ऐसे परिवर्तन की सिफारिश करते हुए जो कहा उसमें नौकरियों की स्पर्धा में विश्वविद्यालयो की उपाधियो की सुविधा कारगर न रहे ऐसी नीति माध्यमिक शालाओं को छोड़नेवालों को नौकरी पाने के लाभ की आशा से उच्च अध्ययन की ओर भागने वालों की संख्या में कमी करेगी ऐसी सभावना है।

नई शिक्षा संरचना में प्रथम उपाधि पाठ्यक्रम सार्वभौमिक रूप से तीन वर्ष का होगा। विश्वविद्यालयीन पाठ्यक्रम को अधिक उत्पादक और व्यावहारिक बनाने की दृष्टिसे अब तक कोई उपाय योजना शायद ही की गई है। सेवाग्राम सम्मेलन ने सिफारिश की थी कि स्टेट-फार्म्स, इंडस्ट्रियल इस्टेट तथा कार्यशालाओं को चुने हुए क्षेत्रों में महाविद्यालयों से सम्बद्ध कर दिया जाए जिससे छात्र श्रम की प्रतिष्ठा को समझ सकें और अध्ययन काल में कुछ कमा भी सकें। यूनेस्को कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में यह महत्वपूर्ण सुझ व दिया था कि व्यावसायिक और कृषि प्रतिष्ठान अपने यहाँ विश्वविद्यालयीन स्तर का व्यावसायिक प्रशिक्षण देने की ओर उन्मुख हों।

अत यह आवश्यक है कि विश्वविद्य लय आयोग की सिफारिश के अनुसार व्यावहारिक बनाए जाने की दृष्टि से बुनियादी शिक्षा के आवश्यक सिद्ध न्त महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों में भी लागू किए जाएँ। यदि माध्यमिक शिक्षा का सच्चे अर्थोंमें व्यवसायीकरण कर दिया जाता है और उसकी समाप्ति पर ५० प्रतिशत छात्र समाज की आवश्यकता के अनुरूप लाभप्रद व्यवसायों में अपेक्षित कर दिए जाते हैं तो महाविद्यालयों की भीड़ अपने आप वर्षों तक के लिए कम हो जाएगी। आचार्य विनोबा भावे के सुझावों के अनुसार यदि नौकरी चाकरी की सुविध ओं को विश्वविद्यालयीन उपाधियों से विच्छेदित करके सार्वजनिक या वैयक्तिक रूप से शिक्षालयोंमें विशिष्ट स्थान प्राप्ति के लिए विशेष परीक्षण के आधार पर परीक्षाएँ ली जाने लगें तो महाविद्यालयों में प्रवेश की आवश्यकता और अधिक कम हो जाएगी।

इस उद्दिष्ट की प्राप्ति, सरकारी नौकरी के लिए भर्ती की आयु मर्यादा घटा दी जानी चाहिए जिससे छात्र केवल नौकरी पाने के आकर्षण से विश्व विद्यालयों में भर्ती होने की ओर आकृष्ट न हों। दुर्भाग्य से इन सुधारों को हाथ में लेने के स्थान पर राज्य सरकारों ने अपने अपने क्षेत्रों में राजनैतिक कारणोंवश नए विश्वविद्यालय स्थापित किए हैं। संकीर्ण राजनैतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के हेतु शिक्षा के साथ खिलवाड़ करने की तनिक भी प्रवृत्ति निंदनीय है।

कोठारी आयोग ने सिफारिश की थी कि चुनी हुई संस्थाओं को पाठ्यक्रम में नए परिवर्तनों, अध्यापन पद्धतियों तथा छात्रों के मूल्यमापन को वृद्धिगत करने की दृष्टि से स्वायत्त महाविद्यालयों के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए। यद्यपि भारत में कई विश्व विद्यालयों ने इस प्रकार स्वायत्त महाविद्यालयों की स्थापना या प्रावधान कर रखा है फिर भी अभी तक इस दिशा में कठिनाई से कोई मूर्त कदम नहीं उठाया गया है। मैं इस विचारका हूँ कि प्रारम्भावस्थामें प्रत्येक विश्व-विद्यालय के अंतर्गत एक या दो महाविद्यालयों को स्वायत्त स्तर दिया जाए जिसमें वे कोई स्पष्ट सुन्दर परिणाम दिखा सकें। इसके लिए ऐसे महाविद्यालयों के लिए यू जी सी द्वारा दी जानेवाली आर्थिक सहायता केवल नाममात्रकी रहे। अन्यथा ये स्वायत्त महाविद्यालय राष्ट्रीय दृश्य पटल पर कुछ-कुछ 'जामुनी धब्बों' की तरह हो जाने की ओर प्रवृत्त हो जाएँगे और बढोतरी के गणन योग्य न होंगे।

सब स्तरोंपर सुधार की जाँच की आवश्यकता पर पहले भी और अब भी अनेकों बार सरकारों और विश्वविद्यालयों द्वारा बल दिया गया है। यहाँ भी प्रगति बडी मंद और परिधीय है। अंकन पद्धति के स्थान पर एक मात्र श्रेणी पद्धति के परिवर्तन से या 'प्रश्न कोषों' के आरम्भ पर्याप्त नहीं है। सेवाग्राम सम्मेलन ने प्रत्येक विषय के सतत आंतरिक मूल्यांकन का तथा केवल उनकी बौद्धिक उपलब्धि (सिद्धि) का ही नहीं वरन् उनके उत्पादक तथा प्रगतिशील क्रियाकलापों में क्रियाशील रूप से सम्मिलित होने का भी विस्तृत रेकार्ड रखने पर काफी बल दिया है।

शिक्षा पद्धति के मूल तानेवाने में अध्ययन कक्ष के क्रियाकलापों-को उत्पादनके उत्पादक कार्यक्रमों तथा समाजसेवा द्वारा परिवर्तित किए बिना प्रचलित परीक्षा पद्धति के पंगुकारी परिणाम-नवयुवकों की शारीरिक, मानसिक और चारित्रिक क्षमताओं पर होते रहेंगे।

मैं उत्कट आशा करता हूँ कि केन्द्रीय और राज्य सरकारें तथा उसी प्रकार विश्वविद्यालय भी हमारे राष्ट्रीय कार्यक्रमों में शिक्षा-

सुधार को अत्युच्च प्राथमिकता देंगे जिससे आए हुए गतिरोध के स्थान पर बुनियादी तालीम के क्षेत्र में महात्मा गांधी द्वारा ४० वर्ष पूर्व सुझाए गए गतिशील और उपयोगी ज्ञान-मार्गों को स्थान दिया जाए। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अपने देश में बुनियादी तालीम का काफी परीक्षण किए जाने पर भी नई शिक्षा संरचना द्वारा भी बहुत सीमित सफलता प्राप्त करने की संभावना है।

जब मैं बहुत वर्षों पहले ९० वर्षीय प्रो. जान दोई से न्यूयॉर्क में मिला और गांधीजी की बुनियादी तालीम संबंधी एक पुस्तक उन्हें भेंट की तो उन्होंने कहा, "यह जानकर मुझे प्रसन्नता है कि मेरी प्रकल्प पद्धति से गांधीजी की कल्पना कई कदम आगे है! मैं यह चाहता हूँ कि मेरे पास इन विचारों के महत्त्वपूर्ण परिणामों की प्राप्ति के लिए शक्ति और समय रहता।"

यूनेस्को कमीशन ने भी प्राथमिक और माध्यमिक स्तरों की अभिव्यक्ति के लिए एकमत से 'बुनियादी तालीम' नाम का प्रयोग किया है। लेकिन हम लोग भारत में 'बुनियादी' शब्द के प्रति असहानुभूतिपूर्ण हैं और उसके स्थानपर सोवियत संघ में प्रयुक्त 'कार्यानुभव' संज्ञा पसंद करते हैं जिसे अब वे उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे हैं।

जो हो यदि प्राथमिक स्तर से विश्वविद्यालयीन स्तर तक की हमारी शिक्षा प्रणाली में 'बुनियादी तालीम' के मूलभूत सिद्धान्तों का ईमानदारीपूर्वक समावेश कर लिया जाता है तो मैं शब्दों के विवाद में नहीं पड़ना चाहूँगा।

★

४

ध्यान देता है, तो उसका सृजन अधिकाधिक विकसित हो जाता है। हिन्दी के लेखको के लिए यह अधिक आवश्यक है। एकांगी बनकर बैठ जाना उनके लिए श्रेयस्कर नही। दक्षिण का साहित्य तो दूर रहा, हिन्दी के पास-पडोस के साहित्य से भी उनका विशेष परिचय नहीं रहता। यह शोचनीय बात है।

प्राचीन साहित्य कभी-कभी प्राय अकारण नकार दिया जाता है, जैसे उसका अस्तित्व ही न हो अथवा किसी अजायबघर में रखी हुई वह कोई जीर्ण-शीर्ण चीज हो। और, नये साहित्य के पौधे को, जिसकी कोपलें अभी फूट ही रही है और जो समाज के नवीनीकरण का प्रस्तोता है, अधिकतर उपेक्षित दृष्टि से देखा जाता है, यहाँ तक कि उसको बेकार बकवास कहा जाता है। विवेक इस प्रकार की समीक्षाओ को देखकर स्तब्ध हो जाता है।

नये साहित्य और नये साहित्यकारो के बारे में भी यही बात है। उनसे तथा उनकी रचनाओ से परिचित होना पुरानी लकीर पर चलने वाले बचे-खुचे साहित्यकार पसन्द नही करते। उर्दू के साहित्य में ऐसा बहुत कम देखने को मिलता है। जोडने वाली कडियो को उसमे तोडा नही गया। पुरानो का अदब किया जाता है और नयो का हौसला बढाया जाता है। इससे पुराने और नये के बीच जानकारी का सिलसिला कायम रहता है। यह शुभ चिन्ह है।

प्रकाशन पर दो शब्द

अनेक ऐसे प्रकाशनो पर दृष्टि जाती है, जो चारित्र्य के पतन का कारण बनते जा रहे है। कुरुचिवर्धक साहित्य की तरफ बन्धुवर बनारसीदास चतुर्वेदी ने, एक जमाना हुआ, जब ध्यान आकृष्ट कराया था। इस प्रकार के साहित्य के प्रकाशको का कोप-भाजन बनने के लिए शायद ही कोई तैयार होगा। बेचारा साहित्य-लेखक उनके हाथ मे बहुत करके बिक भी गया है। एक और समस्या है। सुरुचिवर्धक पुस्तको के ग्राहक पर्याप्त सख्या में मिल नही रहे, जिनका पहला सस्करण भी अनबिका स्टाक में पडा रहता है। केन्द्रीय या राज्य सरकारें कुशलता-पूर्वक प्रयत्न करने पर, अमुक सख्या में अच्छी पुस्तकें भी खरीद लेती

हैं, पर वे योग्य पाठकों तक नहीं पहुँच पाती। अच्छी अच्छी संस्थाएँ इस प्रकार की समस्याओं से आज पीडित हैं।

संस्कृति और साहित्य

मेरी धारणा है कि देश की मूल प्रकृति से और संस्कृति से साहित्य अलग नहीं रह सकता। संस्कृति की उपेक्षा की गई, तो साहित्य भी आज नहीं तो कल उपेक्षित और विस्मृत हो जाएगा। संस्कृति से आशय है सम्यक् अर्थात् देश और समाज के अनुकूल और अनुरूप कृति से। भारत की संस्कृति संयम अर्थात् आत्मानुशासन की पुख्ता बुनियाद पर खड़ी है। इसे नजरन्दाज कर दिया गया, तो साहित्य निष्प्रभ हो जाएगा। वह विलासोन्मुख होकर आत्मविकास की प्रक्रिया में बाधक बन जा सकता है। अतः प्राणशक्ति संस्कृति के मूल में ही निहित है। मन होता है कि संस्कृति और साहित्य के स्वस्थ समन्वय पर क्यों न एक काल्पनिक रूपक बाँधा जाए, जिससे एक ही रास्ता मिल जाए।

नागरी लिपि क्यों ?

थोड़ा-सा अब लिपि के बारे में। आशय नागरी लिपि से है। ध्वन्यात्मक होने के कारण मुक्त कंठ से अनेक विद्वानों ने नागरी लिपि को वैज्ञानिक लिपि माना है। भाषा के सम्बन्ध में प्रादेशिक मतभेदों का होना स्वाभाविक है। राजनीति इस तरह के मतभेदों को बढ़ाने में चूकती नहीं। परन्तु लिपि के सम्बन्ध में ऐसी कोई बात नहीं। यह कहना या मानना कोई अर्थ नहीं रखता कि नागरी लिपि हिन्दुओं की है या उत्तर भारतीयों की है। जो भी प्रान्त और जो भी कौम या जो भी धर्मावलम्बी चाहे, वह अपनी बात को और अपने मत को नागरी लिपि में बखूबी लिख सकता है और पढ़ सकता है। मराठी भाषा नागरी को अपनी ही लिपि मानती है। यही बात गुजराती की है। बंगला भाषा भी थोड़े से हेरफेर के साथ नागरी लिपि में लिखी जा सकती है। दक्षिण भारत की भाषाओं की बात अलग है। तमिल भाषा में ध्वनियाँ कम हैं और उसी के अनुरूप उनकी अपनी लिपि है। किन्तु वे भाषाएँ भी नागरी में लिखी जा सकती हैं, और लिखी भी गई हैं। राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति, वर्धा ने तमिल, तेलुगु, कन्नड और

सभापति का अभिभाषण

(अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के हैदराबाद में हुए ३९ वें अधिवशन के अवसर पर दिए गए वियोगी हरिजी के अध्यक्षीय भाषण का सारांश।)

सार्वभौम दृष्टि

भारतीय संस्कृति की दृष्टि सदा ही राष्ट्र की अखंडता या समग्रता पर रही है। पुराकाल से हमारे सामने 'अखिल भारत' रहा है। हिन्दी का भी यही सार्वभौम दृष्टिकोण रहा है। चार धामों और सात पुरियों तथा अन्य तीर्थस्थानों की सतत पैदल यात्रा करते हुए साधु-सन्तों ने सर्वत्र हिन्दी को ही माध्यम बनाया था। इसी प्रकार व्यापारियों का भी योगदान रहा। तब कहाँ थी यांत्रिक प्रचार की बात? ऐसे आदि प्रचारक हमारे लिए सदैव प्रणम्य हैं।

हिन्दी और दक्षिणी भारत

युग में परिवर्तन आया। परिस्थितियाँ वे न रहीं। राजनीति का सर्वत्र प्रवेश हुआ। शंका होने लगी कि भारत के मंगल के लिए जिन महानुभावों ने अपना स्वर ऊँचा किया, वह अँग्रेजी में था। सामान्य जनता तक वह कैसे पहुँच पाता? राजनीति के मंचपर आते ही महात्मा गांधी ने नब्ज को पहचान लिया कि रोग कैसा है और कहाँ पर है। जनता को छोड़कर पराधीन राष्ट्र की समस्या हल नहीं हो सकती थी। राष्ट्र की भाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है इस निष्कर्ष पर वे तुरन्त पहुँच गए। अन्य नेता-नेताओं पर भी इसका प्रभाव पड़ा। गांधीजी का विश्वास सिर्फ कहने पर, नहीं, बल्कि करने पर था। उन्होंने सबसे पहले राष्ट्र-भाषा हिन्दी की स्थापना के लिए जो सक्रिय कदम उठाया वह था अपने कनिष्ठ पुत्र देवदास को इस मिशन को लेकर दक्षिण भारत के प्रदेशों

में भेजना। वैसा ही कार्य था यह, जैसा सम्राट् अशोक द्वारा अपने पुत्र महेन्द्र का बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ लंका देश में भेजना। परिव्राजक स्वामी सत्यदेव और देवदासजी की सहयात्रा मणि कांचन-योग के समान थी। हिन्दी दक्षिण प्रदेशों में फैलने लगी। शुद्ध राष्ट्रीय भावना से दक्षिणवासियों ने हिन्दी को अपना लिया। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा तथा हैदराबाद हिन्दी प्रचार संघ एवं अन्य संस्थाएँ इस राष्ट्रीय ऐक्यप्रयास के यशस्वी प्रमाण हैं। लाखों लोगों ने हिन्दी को सीखा और सीख रहे हैं। ऐसे भी कतिपय व्यक्ति हिन्दी में पूर्ण दक्षता प्राप्त करके निकले जो हिन्दी-भाषियों से भी अधिक शुद्ध हिन्दी बोलते और लिखते हैं। इस अनुष्ठान के संकल्प में कोई राजनैतिक हेतु नहीं था। इसके पीछे शुद्ध राष्ट्रीय भावना और सांस्कृतिक निष्ठा ही देखने में आती है।

हिन्दी का यात्रा-रथ

जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी नहीं है, उन सबने 'स्वेच्छा से' केवल राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर हिन्दी को अपना योगदान दिया है। आज तो एक मात्र यही प्रश्न रह गया है कि अंग्रेजी की अनुचित वरीयता को समाप्त किया जाए।

साहित्य चित्रांकण एवं मूल्यांकन

साहित्यकार किसी के भय से या किसी लोभ से अपने आपको निर्लिप्त रखेगा। किसका साहस होगा जो उसे डरा धमका सके या पुरस्कारों और अलंकरणों का प्रलोभन देकर उसे खरीद सके ? सर्व-मंगलकारी स्थायित्व साहित्य में तभी आता है, जब कि साध्य में साहित्य-साधक एकरूप हो जाए। एकाग्र साधना के समक्ष स्थायित्व स्वतः अपना स्थान बना लेता है। बरसाती बाढ़ उस सबको बहा ले जाती है, जो उपादेय नहीं होता। जल तक स्वच्छ और निर्मल दीखने लग जाता है।

साहित्यकार संकीर्ण से हटकर जब विस्तीर्ण को देखता है, मतलब यह कि प्रादेशिक भाषाओं के तथा विश्व के साहित्य पर भी

ध्यान देता है, तो उसका सृजन अधिकाधिक विकसित हो जाता है। हिन्दी के लेखको के लिए यह अधिक आवश्यक है। एकांगी बनकर बैठ जाना उनके लिए श्रेयस्कर नही। दक्षिण का साहित्य तो दूर रहा, हिन्दी के पास-पडोस के साहित्य से भी उनका विशेष परिचय नहीं रहता। यह शोचनीय बात है।

प्राचीन साहित्य कभी-कभी प्राय अकारण नकार दिया जाता है, जैसे उसका अस्तित्व ही न हो अथवा किसी अजायबघर में रखी हुई वह कोई जीर्ण शीर्ण चीज हो। और, नये साहित्य के पौधे को जिसकी कोपल अभी फूट ही रही है और जो समाज के नवीनीकरण का प्रस्तोता है अधिकतर उपक्षित दृष्टि से देखा जाता है, यहाँ तक वि उसको वेकार वकवास कहा जाता है। विवेक इस प्रकार की समीक्षओ को देखकर स्तब्ध हो जाता है।

नये साहित्य और नय साहित्यकारो के बारे में भी यही बात है। उनसे तथा उनकी रचनाओ से परिचित होना पुरानी लकीर पर चलने वाले बचे खुचे साहित्यकार पसन्द नही करते। उर्दू के साहित्य मे ऐसा बहुत कम दखने को मिलता है। जोडने वाली कडियो को उसमें तोडा नही गया। पुरानो का अदब किया जाता है और नयो का हौसला बढाया जाता है। इसस पुरान और नये के बीच जानकारी का सिलसिला कायम रहता है। यह शुभ चिन्ह है।

प्रकाशन पर दो शब्द

अनेक ऐसे प्रकाशनो पर दृष्टि जाती है, जो चारित्र्य के पतन का कारण बनते जा रहे है। कुरुचिवधक साहित्य की तरफ बन्धुवर बनारसीदास चतुर्वेदी ने एक जमाना हुआ जब ध्यान आकृष्ट कराया था। इस प्रकार के साहित्य क प्रकाशको का कोप भाजन बनने के लिए शायद ही कोई तैयार होगा। बचारा साहित्य लेखक उनके हाथ में बहुत करके बिक भी गया है। एक और समस्या है। सुरुचिवर्धक पुस्तका के ग्राहक पर्याप्त सख्या में मिल नही रहे जिनका पहला सस्करण भी अनबिका स्टाक में पडा रहता है। केन्द्रीय या राज्य सरकारें कुशलता पूर्वक प्रयत्न करने पर, अमुक सख्या में अच्छी पुस्तकें भी खरीद लेती

है, पर वे योग्य पाठकों तक नहीं पहुँच पातीं। अच्छी अच्छी संस्थाएँ इस प्रकार की समस्याओं से आज पीडित हैं।

संस्कृति और साहित्य

मेरी धारणा है कि देश की मूल प्रकृति से और संस्कृति से साहित्य अलग नहीं रह सकता। संस्कृति की उपेक्षा की गई, तो साहित्य भी आज नहीं तो कल उपेक्षित और विस्मृत हो जाएगा। संस्कृति से आशय है सम्यक् अर्थात् देश और समाज के अनुकूल और अनुरूप कृति से। भारत की संस्कृति संयम अर्थात् आत्मानुशासन की पुख्ता बुनियाद पर खडी है। इसे नजरन्दाज कर दिया गया, तो साहित्य निष्प्रभ हो जाएगा। वह विलासोन्मुख होकर आत्मविकास की प्रक्रिया में बाधक बन जा सकता है। अतः प्राणशक्ति संस्कृति के मूल में ही निहित है। मन होता है कि संस्कृति और साहित्य के स्वस्थ समन्वय पर क्यों न एक काल्पनिक रूपक बाँधा जाए, जिससे एक ही रास्ता मिल जाए।

नागरी लिपि क्यों ?

थोडा-सा अब लिपि के बारे में। आशय नागरी लिपि से है। ध्वन्यात्मक होने के कारण मुक्त कंठ से अनेक विद्वानों ने नागरी लिपि को वैज्ञानिक लिपि माना है। भाषा के सम्बन्ध में प्रादेशिक मतभेदों का होना स्वाभाविक है। राजनीति इस तरह के मतभेदों को बढाने में चूकती नहीं। परन्तु लिपि के सम्बन्ध में ऐसी कोई बात नहीं। यह कहना या मानना कोई अर्थ नहीं रखता कि नागरी लिपि हिन्दुओं की है या उत्तर भारतीयों की है। जो भी प्रान्त और जो भी कौम या जो भी धर्मावलम्बी चाहे, वह अपनी बात को और अपने मत को नागरी लिपि में बखूबी लिख सकता है और पढ सकता है। मराठी भाषा नागरी को अपनी ही लिपि मानती है। यही बात गुजराती की है। बंगला भाषा भी थोडे से हेरफेर के साथ नागरी लिपि में लिखी जा सकती है। दक्षिण भारत की भाषाओं की बात अलग है। तमिल भाषा में ध्वनियाँ कम हैं और उसी के अनुरूप उनकी अपनी लिपि है। किन्तु वे भाषाएँ भी नागरी में लिखी जा सकती हैं, और लिखी भी गई हैं। राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति, वर्धा ने तमिल, तेलुगु, कन्नड और

मलयालम की चन्द चुनी हुई कविताओं को नागरी लिपि मे प्रकाशित किया है। उन्हें पढने मे कोई दिक्कत नही आती। सिन्धी भाषा के लिए नागरी लिपि का उपयोग किया जाए या नही इस प्रश्न पर पिछले कुछ वर्षो से एक आन्दोलन चल रहा है। जो सिन्ध-निवासी अपनी भाषा को अरबी लिपि में लिखने के अभ्यस्त है, वे उसे छोड़ने और नागरी लिपि को अपनाने मे हिचकिचाते हे। लेकिन उन्ही का एक प्रभावशाली वर्ग सिन्धी भाषा को नागरी लिपि मे लिखने का प्रबल पक्षपाती हो गया है।

भारत की समस्त प्रादेशिक भाषाएँ नागरी लिपि को अपना लें, इस बात का समर्थन बहुत पहले राष्ट्रीय एव वैज्ञानिक दृष्टि से जस्टिस शारदाचरण मित्र ने अकाट्य तर्कों द्वारा किया था। 'देवनागर' पत्र भी इसी उद्देश्य से निकाला था, जिसके कालमो में विभिन्न भारतीय भाषाओं को नागरी लिपि मे छापा जाता था।

आचार्य विनोबाजी ने नागरी लिपि का समर्थन इतने जोर से किया है कि वह सर्वोदय कार्यक्रम का एक अनिवार्य अग ही बन गया है। कई प्रादेशिक भाषाओ के सर्वोदय-समर्थक पत्र नागरी लिपि मे निकल रहे हैं। विनोबाजी का स्वप्न तो यहाँ तक है कि विश्व की ऐसी भाषाएँ, जिनकी लिपि अत्यन्त जटिल है और जो रोमन लिपि में लिखी जाती हैं, वे नागरी लिपि को स्वेच्छया अपना ले। जो तर्क वे देते है वे सर्वथा वैज्ञानिक हैं। इस कार्य में हिन्दी सस्थाओ को अपना प्रबल योगदान देना चाहिए। विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं का साहित्य नागरी लिपि में प्रकाशित करने की योजना उन्हें बना लेनी चाहिए।

हिन्दी के प्रश्न को और इसी प्रकार दूसरे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय प्रश्नों को सरकार के रहम पर छोड़ देना क्षोभकारक है। राजकीय लोगों ने ससद में तथा विधान सभाओ में हिन्दी के राजभाषा-पद को लेकर जब कभी आवाज उठाई तो उनकी वाणी मे प्रायः तेजस् देखने में नही आया। लगा कि उनका रोष बुझा हुआ है। कभी कभी रिरियाना भी सुना व देखा गया। मेरी मान्यता है कि राष्ट्र की भाषा किसी शासन के न तो बनाने से बनती है और न बिगाड़ने से बिगड़ती है। हिम शृंगो को,

गंगा और कावेरी को अथवा सागर को किस शासन ने बनाया ? राष्ट्र की भाषा एवम् अन्य प्रबल प्रादेशिक भाषाओं को अपनी पद-प्रतिष्ठा और अस्तित्व कायम रखने के लिए किसी का मोहताज नहीं होना चाहिए।

प्रचार को अब अधिक महत्व न देकर साहित्य के निर्माण-कार्य में प्राण-पण से जुट जाना चाहिए। प्रेरक तथा शक्तिवर्धक साहित्य का निर्माण हो, जिसके अन्दर एक-दूसरे को जोड़ने की शक्ति हो, तोड़ने की न हो। साहित्य निर्माण किसी की फरमाइश पर नहीं होना चाहिए। ज्ञान विज्ञान स्वाधीन रहकर ही तेजस्वी हो सकता है।

उपसंहार

शब्द-ब्रह्म की उपासना और साधना जिस किसी से जो कुछ भी बन पड़ी उसकी वाणी में बनावट नहीं रहेगी। बनावट तभी होती है जब कोई अपने कहे या लिखे का असर दूसरों पर जबरन मढ़ देना चाहता है। लेकिन उसका कहा और उसका लिखा देखते-देखते बेअसर हो जाता है। प्रकृति के इस सनातन नियम को तोड़ डालने की कौन जुर्रत करेगा ?

हमारी वाणी सदैव शुभ्रवसना रहे। उसके श्वेत परिधान पर किसी भी रंग के छींटे न पड़ें। वाग्देवी की उपासना के लिए जो सामग्री जुटाई जाए वह श्वेत हो शुभ्र हो और निर्मल हो। 'कुन्देंदु तुषारहारधवला' यह विमल रूप सदा हमारे ध्यान में बसा रहे। रंग रंग की सामग्री पूजा के थाल से दूर ही रखें। संघर्ष के स्थान पर सहयोग से काम लिया जाए, और कटुता का स्थान सहज ही मधुरता ग्रहण कर ले।

साहित्य का उद्भव सदा सद्विचारों से होता है इस परम सत्यको भुला न दिया जाए।

★

सयानों की तालीम

श्री धीरेन्द्र मजूमदार

पिछले कई सालो से हम इस बात के प्रयोग मे लगे है कि बच्चो को तालीम किस प्रकार से दी जाए। उस प्रयोग के सिलसिले मेँ हमने तालीम के तीन मुख्य जरिये सोचे है –(१)बुनियादी दस्तकारी, (२) सामाजिक वातावरण, और (३) प्राकृतिक वातावरण। यानी हम चाहते है कि बच्चे जीवन क आवश्यक सामान की उत्पत्ति के अनुभव से और अपने सामाजिक जीवन के असर से अपने बौद्धिक विकास की खुराक पा सक। दस्तकारी में जिस प्रकार खेती व कताई बच्चो की बुनियादी आवश्यकताओ को पूरा करती है, उसी प्रकार बच्चो के सामाजिक वातावरण म उसके माता पिता और अन्य बडे सम्बन्धी मुख्य रूप से असर डालने वाले लोग होते हैं। अत हमें बच्चो के साथ साथ गाँव के प्रौढ जनो की शिक्षा की व्यवस्था करनी है जिससे वे सही वातावरण का असर ले सकें। इसके लिए हमें गाँव के प्रौढ स्त्री-पुरुष दोनो की शिक्षा की समस्याओं पर विचार करना होगा।

वैसे तो आज हमारे देश में कुछ अरसे से प्रौढ शिक्षा की बात काफी जोरो से की जा रही है। पिछले दिना जब काँग्रेस ने प्रान्तीय सरकारो का जिम्मा लिया था, उस समय प्रौढ शिक्षा की व्यापक चेष्टा की गई थी। लेकिन ये सब चेष्टाएँ प्रौढ शिक्षा की ओर न होकर प्रौढ-साक्षरता की दिशा में थी। नतीजा यह हुआ कि शिक्षा तो हो ही नही पाई, साक्षरता भी टिक न सकी। जिन्हें साक्षर बनाया भी गया, वे कुछ दिनों के अनभ्यास से सब भूल गए।

वस्तुत प्रौढो की सही शिक्षा के बिना केवल साक्षरता टिक नही सकेगी। हम अपनी शालाओ में चाहे जितनी शिक्षा दें, बच्चे घरके

प्रतिकूल वातावरण में सब भूल जाएँगे या उनकी शिक्षा विकृत हो जाएगी। जिनको थोडा भी देहातो का अनुभव है, वे जानते है कि किस प्रकार माता-पिता बच्चो को हँसी-हँसी में भद्दी गालियाँ सिखाते है और किस प्रकार वे बच्चो के सामने अशिष्ट व्यवहार तथा अनाचार का प्रदर्शन करते है। केवल इतना ही नही, वे इस प्रकार की अशिष्टता और दुराचार में अपने बच्चो को भी साथी कर लेते है।

अब प्रश्न यह है कि हम प्रौढ-शिक्षा की व्यवस्था किस प्रकार से करें? किसी शाला में आकर वे बैठ नही सकते, न वे शिक्षा पाने के लिए कुछ समय ही दे सकते है। अत हमें उनके मौजूदा कार्यक्रमो में प्रवेश करके ही शिक्षित करना होगा। देहातियों का मुख्य कार्यक्रम है खेती में काम करना, बाजार जाना, कचहरी जाना इत्यादि। हमें इस पर विचार करना है कि क्या उनके इन विभिन्न कार्यों के साथ-साथ घूमकर उनको शिक्षित करना व्यावहारिक या सम्भव होगा? उनके घर-घर घूमकर कुछ बौद्धिक विकास करना तो शायद सम्भव हो, लेकिन हमारी आज की स्थिति में मुख्यत इस प्रकार से शिक्षा देना कठिन होगा। अत हमको ऐसी योजना बनानी है, जिससे कि देहाती प्रौढ जन सम्मिलित रूप से हमारे पास आ सके। व्यापक रूप से सम्मिलित कार्यक्रम बनाने की शक्ति व साधन आज हमारे पास नही है, लेकिन जितने है वे भी कम नही है।

प्रौढ-शिक्षा मे स्त्रियो की शिक्षा का स्थान सबसे बडा है। वस्तुत. समाज के स्वरूप का बनना-बिगडना उन्ही पर निर्भर है। फिर बच्चो की दृष्टि से भी उनकी तालीम की व्यवस्था पहले होनी चाहिए। बच्चो के जन्म से वे ही उनकी बुनियादी गुरू होती है। उस समय माताएँ जो सस्कार डालती है, वे प्राय अन्त तक रह जाते है। सिर्फ जन्म से ही क्यो जन्म के पहले से ही माता की शिक्षा पर बच्चो का शारीरिक व मानसिक सस्कार निर्भर है। सौभाग्य से हमारे पास इस काम के लिए सारे साधन मौजूद है। आवश्यकता है केवल सयोजित चेष्टा की। आज लाखो कत्तिनें हमसे घनिष्ट रूप से सम्बन्धित हैं। चरखा-सघ से नियमित आर्थिक सम्बन्ध होने के कारण उन्हें सम्मिलित

रूप से एकत्रित करना आसान है। कस्तूरबा-निधि के शाखा संयोजकों के पास धन तथा स्त्री-शिक्षा का कार्यक्रम है और तालीमी संघ के पास शिक्षा की कला है। अगर तीनों संस्थाएँ साथ मिलकर विचार करें, तो वे ऐसा कार्यक्रम निकाल ही लेंगी जिससे कम समय तथा धन खर्च न करके हम उनको सर्वांगीण शिक्षा दे सकेंगे। अगर हम ६ माह या ८ माह का परिश्रमालय चलाने की योजना बनाएँ, तो उन्हें स्वावलम्बन की दृष्टि, चरखे की शास्त्रीय कला, साक्षरता, सफाई व स्वास्थ्य, समाज-विज्ञान, शिशु-पालन, प्रसूति-विज्ञान आदि उनकी आवश्यकता की सभी बातें बता सकेंगे। आज हमारे पास लाखों ऐसी स्त्रियों का विराट् क्षेत्र पड़ा है। अगर इतनों को ही ढंग से शिक्षित बना दें, तो हम भारत के ग्रामीण समाज मे क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकते है। जैसे-जैसे यह क्षेत्र पूरा होता जाएगा, वैसे-वैसे उनकी संख्या भी बढ़ती ही रहेगी।

प्रौढ़-पुरुषों के लिए हमारे पास इतने व्यापक रूप से तैयार क्षेत्र न रहने पर भी काम शुरू करने के लिए काफी साधन है। चरखा संघ से सम्बन्धित प्राय हजारों परिवार बुनाई धुलाई-धुनाई आदि का काम करते हैं। ग्राम-उद्योग के सम्बन्ध से कुछ परिवार उद्योग का काम करते ही है। और गो-सेवा संघ ने भी अब तक कुछ परिवारों से अपना सम्बन्ध जोड ही लिया होगा। इन तमाम परिवारों के लोगों से हमारा घनिष्ट सम्बन्ध होने से तालीम की व्यवस्था आसानी से हो सकेगी।

अब समस्या यह है कि हम इनको तालीम किस प्रकार की और किस तरह से दें। हमने अध्ययन किया, सोचा, प्रयोग किया और एक असली तरीका बच्चों की तालीम का निकाल ही लिया। उसी तरह तालीमी संघ के सेवक शिक्षा-शास्त्र के विशारद है ही। उनके पास होशियार दिमाग है। उनको चाहिए कि वे उन देहातों में जाएँ, जहाँ ये कारीगर काम करते है। उनकी परिस्थितियों का अध्ययन करें, उनके काम के तरीकों को देखें, उनकी फुरसत और उनकी प्रकृति तथा प्रवृत्तियों का अध्ययन करें, फिर उन पर विचार व प्रयोग करें। मुझे विश्वास है कि हमारे शिक्षा-विशारदों को इस प्रकार के प्रयोग से प्रौढ़ों के लिए एक दिलचस्प शिक्षा कला निकाल लेना मुश्किल न होगा।

इसके अलावा एक और बड़े क्षेत्र हैं, जहाँ विस्तृत रूप से प्रौढ़-शिक्षा का प्रयोग किया जा सकता है। वह है देहातों के त्योहार व अनुष्ठान। हमारे ग्रामसेवक जहाँ भी जाएँगे, वहाँ के लोग कुछ त्योहार मनाते ही हैं और कुछ अनुष्ठान भी करते हैं। इसके लिए कुछ चुने हुए त्योहारों को हम इस ढंग से संगठित कर, जिनके मारफत काफी तालीम दी जा सके। ईद और दीपावली के अवसर पर लोग अपने घरों को साफ करते ही हैं। इन त्योहारों को खास तौर से सहयोग के आधार पर सारे गाँव की सफाई के लिए संगठित किया जा सकता है जिससे हम सफाई का विज्ञान, उसका तरीका और क्षेत्रों की समुचित जानकारी दे सकते हैं। इन अवसरों पर घरों की सजावट साथ-साथ कला का विकास करने का बहुत बड़ा मौका रहता है। इनके जरिए साम्प्रदायिक मेल भी किया जा सकता है। होली के अवसर पर भजन-मंडलियों के संगठन से और होली-मिलन के शिष्टाचार के आयोजन से सांस्कृतिक शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है। दशहरे के दिनों में रामलीला, नाटक आदि से समाज विज्ञान की शिक्षा दी जा सकती है। नागपंचमी को तो बहुत अच्छी तरह काम में लाया जा सकता है। गाँव गाँव में खेल-कूद, अखाड़े आदि के जरिए कई बातों की तालीम दी जा सकती है।

कुछ देहातों की सम्मिलित चेष्टा से योम मीलाद नबी, योसु-जयन्ती, गाँधी-जयन्ती, पितृपक्ष के अनुष्ठान बनाए जा सकते हैं। योम मीलाद नबी के अवसर पर हजरत मुहम्मद के जीवन के प्रति श्रद्धार्पण के साथ-साथ ऐसे कार्यक्रम का संगठन किया जा सकता है, जिससे पुराने जमाने में खलीफों के प्रोत्साहन से अरबी, फारसी, भारतीय तथा चीनी दर्शन और संस्कृति का कैसे समन्वय होता था और उसके परिणाम स्वरूप सूफियों की और संतों की विचारधारा में कैसे समता रही है, इत्यादि बातें बताकर साम्प्रदायिक एकता की मनोवृत्ति पैदा की जा सकती है। पितृपक्ष में महाभारत के कथा-पाठ द्वारा, भारत के पितरों को याद करने के साथ-साथ प्राचीन भारत का इतिहास और दूसरे सभी देशों से हमारा सम्बन्ध किस तरह रहा इसका ब्योरा बताकर, अन्तरराष्ट्रीय भावना पैदा की जा सकती है। गाँधी-जयन्ती के अवसर पर चरखा

यज्ञ के अनुष्ठान के साथ भारत की वर्तमान आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक समस्याओं की तथा उनके हलकी रूपरेखा बतायी जा सकती है। इसके अलावा बहुत से स्थानीय त्योहारों को चुनकर उनके जरिए व्यापक शिक्षा का एक पूरा शास्त्र बनाया जा सकता है। जिस तरह कारीगरी के मारफत प्रौढ़ शिक्षा की कला का आविष्कार करना है, उसी तरह अनुष्ठानों के द्वारा शिक्षा का सम्पूर्ण विज्ञान मनाने पर भी हम गम्भीर विचार करना है।

प्रौढ़ शिक्षा का एक और जरिया हो सकता है। देहातों के लोग पानी सींचते हुए हल जोतते हुए, खेत निराते हुए पशु चराते हुए, गाना गाया करते हैं। हम कृषि विज्ञान का पूर्ण ज्ञान उससे सम्बधित गानों द्वारा उन्हें द सकते हैं। हाँ एक बात की ओर ध्यान देना आवश्यक है। प्राय विज्ञान की ज्ञान में आकर लोग सगीत की कला के मिठास को नष्ट कर देते हैं। गाने के रग को कायम रखते हुए इस विषय के तमाम ज्ञान के प्रसार की हमें चेष्टा करनी होगी।

मैं मानता हूँ कि शायद इन तरीकों से हम लोगों को पूरा साक्षर नही बना सकेंगे। लेकिन ऊपर बताए गए तरीकों से हम प्रौढ़ों का बौद्धिक तथा सांस्कृतिक विकास कर दें तो उनके दिल में साक्षर होने की आकांक्षा अपने आप पैदा होगी। फिर चीन में जैसा बाल शिक्षण का आन्दोलन चलाया गया वैसा आन्दोलन यहाँ अपने आप चल सकेगा। उस समय हमारा काम सुझाव देने का ही होगा।

मैंने ऊपर जो कुछ कहा वह दिशा-सकेत मात्र है। पूरी योजना तो बनानी होगी।

०

क्या आप जानते हैं ?

सरला देवी

डा शमाखर कहते हैं कि चीन में लोगों ने हिसाब लगाया है कि एक विद्यार्थी को एक साल तक विश्व विद्यालय में पढाने में तीस "किसान-वर्ष" का श्रम लगता है। विश्वविद्यालय में स्नातक बनने में पाँच साल की पढाई लगती है। उस पाँच साल की शिक्षा के बाद स्वभावत उस विद्यार्थी की इच्छा होती है कि बहुत से अन्य स्नातकों की तरह वह भी शंगहाई के एक आधुनिक उपनगर में जाकर रहे और अपने समकक्ष साथियों के साथ एक पारस्परिक प्रशंसा समूह बनाए। लेकिन चीन की व्यवस्था में सख्ती है, इसलिए वह ऐसा नहीं कर पाता। "तुम पर डेढ सौ किसान वर्ष का खर्च हुआ है। इसके बाद, किसानों को उस कर्जे को लौटाने का कर्तव्य आ जाता है। इसलिए तुम शंगहाई न जाकर एक दूरस्थ पिछडे हुए इलाके के गाँव में जाकर रहोगे जहाँ अभी तक कोई शिक्षित व्यक्ति नहीं रहा है, और वहाँ पर तुम प्रयोग करोगे कि तुम उनकी क्या सेवा कर सकते हो।"

वह स्नातक ज्यादातर पाता है कि उसकी पाँच साल की पढाई बेकार गई है। किसान की उपयोगिताके लिए उसमें कुछ नहीं है। तब वह अपने महाविद्यालय जाकर कहता है 'देखिए—यदि अपना कर्ज चुकाने के लिए हमें किसानों की सेवा करनी है, तो महाविद्यालयों में आप हमें ऐसी बातें सिखाइए, जो किसान के लिए उपयोगी हो सकें।" निकम्मी पढाई पाने पर फिर भी चीन के विद्यार्थियों में चीन की पारस्परिक सामान्य बुद्धि और वास्तविकता का ख्याल रहता है— इसलिए शायद वहाँ पर काफी जल्दी में उच्च शिक्षा का ढाँचा बदल सकेगा। (लेकिन भारत में— पाठ्यक्रम में परिवर्तन के बदले शायद विद्यार्थी बेकार रहना पसन्द करेंगे ?)

अन्तमें डा शुमाखर ईवा निइलच का प्रश्न दोहराता है—"हम शिक्षा संस्थाओं को क्यो चलाते है ? ताकि नई प्रेरणाएँ पैदा हो जाएँ। आखिर में यह तो विवेक की बात है, कि यदि समाज ने तुम्हारी शिक्षा की व्यवस्था पर खर्च किया है, तो उसका कुछ हिस्सा समाज को लौटाना चाहिए। यह नतीजा दो प्रकारों से आ सकता है। या तो उसके लिए एक व्यापक अनुकूल नैतिक वातावरण बन जाए, या फिर जबर्दस्ती हो।" लेकिन आजकल भारत म इन दोनो परिस्थितियो का अभाव है। अनुकूल नैतिक वातावरण तो है ही नही, और भारत में हमारा पक्का अनुभव यह भी है कि कानून से कुछ होता नही है—कानून से बचने के लिए दर्जनों मार्ग निकल सकते हैं—चाहे शारदा एक्ट, चाहे नशाबन्दी अत बेचारे भारत में क्या होगा ?

पलायनवाद या सृजन ?

पिछले साल वाशिंगटन में "प्रजातान्त्रिक पुन कल्पनासघ (डेमोक्रेटिक रीकन्स्ट्रक्शन फेडरेशन) नामक संस्था की स्थापना हुई थी। उनके निर्देशक सिद्धान्त निम्न प्रकार है —

"यदि समाज मे परिवर्तन लाना हो तो यह काम राजनीतिमे फँसे हुए लोगो से नही हो पाएगा। ऐसा परिवर्तन तब होता है जब जनता समझने लगती है कि दैनिक जीवन मे उपस्थित अर्न्तविरोध और प्रतिरोध असहनीय हो गए हैं। तथा उस परिस्थिति मे जिन्दा रहना बेकार है। ऐसी परिस्थिति मे एक रचनात्मक दृष्टि भी पैदा हो सकती है। तब चर्चा और उदाहरण के द्वारा यह दिखाना सम्भव हो जाता है कि समाज मे या अपने व्यक्तिगत जीवन मे जो क्षय हुआ है, वह भी एक साधन बन सकता है। इस प्रकार की शक्ति को खोजने में मुक्ति का प्रथम चरण उत्पन्न होता है।

"अमेरिका के नागरिक ज्यादातर एक अन्तर्विरोध की परिस्थिति में रहते है। समाज का भौतिक आधार उनके जीवन बसर करने के व्यवसाय से, उनकी आन्तरिक आकांक्षाओ और आशाओ से बिलकुल भिन्न रहता है। लेकिन यदि उस आधार की जड में समाज में किस

प्रोफेसर जॉर्ज सी लोज् हार्वर्ड विश्वविद्यालय के वाणिज्य विभाग में वाणिज्य व्यवस्था के शिक्षक लिखते हैं—अब हमें समाज में न्याय के, सामानता के, स्वतन्त्रता के, लक्ष्य के पुराने विचारों को फिर एक बार जागृत करना पडेगा। उन्हें एक ऐसे समानता के सामाजिक तरीके में जमाना पडेगा जो अखिल विश्व में फैलाया जा सकता है। हमें अभी वही काम करना पडेगा जो हम हजार वर्षों से (याने ईसा की सिखावन के बादसे) सम्हालते रहे हैं। हमें व्यापारी वर्ग की योग्यता और शक्ति समाज के उपयोग में लेना पडेगा। उसे समाज पर रोपना पड़ेगा इस समाकलनात्मक प्रक्रिया से, विचार और आचार, दोनों में, केन्द्रीय सस्थाओं का स्वरूप अपने आप बदल जाता है, यह संत विनोबा नहीं बोल रहे हैं-- यह अमेरिका के सब से प्रसिद्ध और प्रामाणिक विश्वविद्यालयके वाणिज्य व्यवस्था का शिक्षक ही बोल रहा है।

अपनी किताब मे उन्होंने दिखाने की कोशिश की है कि तीन सौ वर्ष पूर्व से, विज्ञान की प्रगति की अनिवार्यता पर जो श्रद्धा बैठी थी, शुरू में उसके पीछे यह दृष्टि थी कि इससे मानव जी उबानेवाले श्रम से राजनैतिक दबाव से मुक्त हो जाएगा, तथापि उसका उलटा नतीजा निकला। समस्त विश्व की पशुबल सत्ता के नीचे मानव तथा उसका व्यक्तित्व बहुत बुरी तरह कुचला जा रहा है।

उस ढाचे के विरुद्ध अब अमेरिका में माध्यमिक तकनीक में कार्यक्रम बहुत तेजी से बढ रहा है। उसके लिए कई सगठन भी बन रहे हैं। माध्यमिक तकनीक के लिए कोई परिशुद्ध व्याख्या तो नही है, लेकिन उसका सगठन छोटे स्थानीय पैमाने पर होना चाहिए, ताकि स्थानीय लोग ही उसकी उपयोगिता या अनुपयोगिता का फैसला कर सकें। वायुमण्डल पर उसका ज्यादा दबाव नही होना चाहिए। उसमें बडी पूंजी की आवश्यकता नही होनी चाहिए और वह सामान और साधनों के उपयोग में किफायती होना चाहिए। वह विकेन्द्रित सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था की ओर प्रेरणा दायी हो।

कार्ल हेस, माध्यमिक तकनीक के एक मुख्य प्रणेता लिखते हैं — 'हम कहते रहते है कि लोग अपनी व्यवस्था अपने हाथों मे ले सकते हैं,

यह बात बहुत लोगो को पसन्द नही आती है। विशेषज्ञ लोग सोचते है कि विकास, विज्ञान तथा तकनीक का भारी तन्त्र थोडे से विशेषज्ञ लोगो के हाथो में सीमित रहना चाहिए। साधारण लोगो में उस तन्त्र को दिशा-दर्शन देने और उसका नियन्त्रण करने की शक्ति नही है। यह धारणा वैज्ञानिक पद्धति, सरकार तथा गिर्जे (याने व्यवस्थित धर्म) के आभासिक अंतर्विरोध की वजह से ही पैदा हुई है। लेकिन आजकल उसका उपयोग संस्थाओ, निगमो और सरकारो की सत्ता को बढाने के लिए होता है। यदि हम यक्ष को फिर से उसके सच्चे आयाम मे प्रस्थापित कर दें तो हम मानव शासन के स्थान पर मानवीय विचार की एक सरल धारणा की ओर बढ सकेंगे। भौतिक सुख की खोज में, तीन सौ वर्ष से, पश्चिम में मनुष्य वैज्ञानिक तथा भीमकाय औद्योगिक विकास के पीछे पागल रहा है। लेकिन अब स्पष्ट हो रहा है कि कम से कम पश्चिम में लोग बहुत तेजी से समझने लगे है कि प्रकृति उस भीमकाय सरचना के असीमित भागो के बोझ को नही सहन कर सकती है और सकुचित बनने की, दबने की उसकी माँग के नीचे मानव मन भी स्वस्थ नही रह सकता है। इसलिए अब पश्चिम में बहुत बडे पैमाने पर अच्छे शिक्षित तथा साधारण शिक्षित युवक और युवतियाँ एक दूसरे प्रकार के जीवन की खोज में निकल रहे है। जिसमें एक ऐसी अवैयक्तिक अव्यक्त भीमकाय व्यवस्था पर निर्भर रहने के बदले में जिसमें ये व्यक्ति नही बल्कि यन्त्र का पुर्जा बन जाते हैं। ये एक स्वयप्रेरित जीवन में अपने व्यक्तित्व का, स्वतन्त्र विकास करने के साथ ही साथ एक स्वावलम्बी जीवन बिता सकें जिसमें ये आवास, खुराक,व वस्त्र और ऊर्जा की स्थानीय आवश्यकताओ की पूर्ति अपने हाथों से, या एक छोटे से समाज के द्वारा कर सकें।

अब तीन सौ वर्ष के कडुवे अनुभव के बाद, पश्चिम में भौतिक भीमकाय बाढ का पल्डा हलका होने लगा है और स्वावलम्बन श्रम तथा मुक्ति के पलडे का वजन बढने लगा है। लेकिन अभी तक औसत में ' तीसरी दुनिया " के नौजवान उस पुराने पलडे की पूजा करते रहे है जिससे पश्चिम के नौजवान बहुत तेजी से छोडना चाहते हैं।

वास्तव में अध्यात्म के विरुद्ध विज्ञान की जो धारणा चली थी, वह धार्मिक रूढ़ियों के दबाव के विरोध में एक प्रति क्रिया मात्र थी, उसके पीछे न तो कोई गहरा चिंतन था, और न कोई दीर्घ कालीन योजना थी। उस भौतिक वाद के विरुद्ध जो जोश उठ रहा है, लगता है कि शायद उसमें दो दृष्टियाँ है। कुछ विद्वान लोग हिंसा और स्वार्थ की बढती हुई वृत्तियों के साथ वर्तमान मानवीय असतोष का वैज्ञानिक विश्लेषण करके उसकी एवज में एक दूसरे विचार और व्यवस्था की खोज कर रहे है जिसमें मानव का व्यक्तित्व सुरक्षित रह सके, तथा व्यक्ति और सृष्टि की मेल से हर व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व— शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक समाजका मुख्य लक्ष्य रह सके। ये विचारक, जिन में अर्थशास्त्र, विज्ञान तथा राजनीत के विद्वान है, प्रचारित गांधीजी द्वारा हमारी पुरानी भारतीय संस्कृति द्वारा दिये हुए विचार और आचार से बहुत निकट पहुँच रहे है।

दूसरी तरफ कुछ लोग है, जो एक पलायनवाद से बचने के लिए एक दूसरे पलायनवाद की ओर बढ रहे है। अपने हाथो में एक रचनात्मक काम लेने के बदले में ये एक आध्यात्मिक नशे की खोज में मादक औषधियों का उपयोग करके वास्तविक स्थिति को भूल कर उससे बचने का प्रयत्न कर रहे है।

दुर्भाग्यवश आजकल ऐसा लगता है कि भारत के शिक्षित नौजवानो पर इस दूसरी श्रेणी के लोगो का प्रभाव हो रहा है। भारत के नौजवान वर्तमान सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था से, तथा उसपर आधारित शिक्षा से परेशान है, यह एक स्वाभाविक बात है, यह मानवता का चिन्ह है— लेकिन पलायनवाद से रीति रिवाज, आदतों, सांस्कृतिक ढाँचे को फेकने से कोई रचनात्मक लाभ नही होगा। जिस प्रकार सरिता का पानी मरुस्थल में बिगडकर व्यर्थ जाता है— उसी प्रकार युवक शक्ति को बिगडना नही चाहिए, बल्कि एक ठोस सृजनात्मक दृष्टि पैदा होनी चाहिए।

गाँधीजी की सूक्ष्म दृष्टि तथा पाश्चात्य दुनिया के कडुवे अनुभव दोनों उन्हें एक ही सृजनात्मक मार्ग का दिग्दर्शन दे रहे है।

■

वर्षा-मंगल

: श्रीमती मदालसा नारायण

अब 'वर्षा-रानी' की हुकूमत जोर-शोर से प्रारम्भ हो गई है। इस रानी के प्रधान-मन्त्री हैं श्री सिंधु-देव। वे युगानुयुग से परम्परागत प्रमुख अमात्य हैं। इस कुल का नमक खा-खाकर सिंधु देव का रोम-रोम आज दुनिया के लिए खारा बना हुआ है, पर प्रधान मन्त्रीजी का दिल महान है, देह वयोवृद्ध है और दिमाग अनुभव सिद्ध है, चित्र-विचित्र अनमोल अपरिमित है।

तन-मन से और प्रेम से वे निरन्तर अपने राजघराने की चाकरी करते आए हैं। महामन्त्री दुनिया भर का खार खाकर भी अपने राज-कुल पर तो सदैव मधुर मिठास ही बरसाते रहे हैं। सिंधु देव, आज परम प्रसन्न हैं। अपनी प्राणों से भी प्यारी 'वर्षा-रानी' के सिंहासनारूढ होने से उनका मन पुलकायमान हो उठा है, उनका तन तरह तरह की भावनाओं और शुभकामनाओं से आनंद तरंगित हो उठा है।

महामन्त्री आज अपने दल-बल के साथ अपनी नवोढा सद्गुणी रानी की सेवा में सब प्रकार से तत्पर दिखाई दे रहे हैं।

भूतपूर्व ग्रीष्मरानी के अराजक शासन से प्रधान-मन्त्री अत्यन्त तंग आकर सुस्त और उदास हो चुके थे। उनकी व्याकुलता और दिलकी अकथ परेशानियाँ देखकर देखने वालों का बदन पसीज उठता था, और राजकी सारी प्रजा शासनकी शुष्कतासे त्राहि-त्राहि पुकारने लग गई थी।

वे सारी दिक्कतें अब दूर होने लग गई।

मेघरूप सप्तरंगी सिंहासन पर नूतन वर्षा-रानी के आरूढ होते ही नभोमंडल रंग-बिरंगी आशाओं से सुशोभित हो उठा है।

क्यों न हो? वर्षा-रानी का रूप, गुण, कीर्ति और कुलीनता सभी तो अवर्णनीय है न? इस रानी के संस्कारों में बचपन से पतित-पावनता और प्रजा-प्रेम के भाव झलकने लगे थे। और आज तो प्रजा की नम्रता देख-देखकर रानी के रोम-रोम में 'काम, काम-आराम, हराम' का राग रमा हुआ है। रानी का सिंहासन ही इस बात का प्रमाण है। इस सिंहासन को खुद रानी ने अपनी कल्पना के आधार पर बनवाया है। यह सिंहासन प्राचीन और अर्वाचीन दोनों प्रकार के विज्ञान के तत्व-सार के सम्मिश्रण से बनाया गया है। इसमें आठ पहिए और चार पंख भी लगे हुए हैं। इस पर बैठकर रानी अपने राज्य में जब जहाँ जाना चाहे वहाँ बड़ी सहूलियत से जा-आ सकती है।

रानी के दरबार की कोई खास जगह नियुक्त नहीं है। सिंहासना-रूढ़ होकर घूमते हुए जब जहाँ उसका जी करे और उसे जरूरत मालूम दे वहीं उसका दिन का दरबार लग जाता है और वह स्वयं प्रजा की शिकायतें सुनकर उनको आवश्यक आश्वासन और आदेश देना पसन्द करती है।

इस प्रकार हफ्ते भर के भीतर ही वर्षा-रानीने अपनी उदास प्रजा को उत्साहित कर लिया है और 'दिन भर काम करके शाम को आराम से राम का नाम गाने का' आदेश रानी ने स्वयं घर-घर पहुँचा दिया है। रानी के प्रेम के प्रभाव से एक क्षण का भी विलम्ब किए बगैर जनता बड़े चाव से खेतों में हल जोतने भी लग गई है।

तुम चाहो तो चारों ओर का चक्कर लगाकर स्वयं नजरों से इस शुभ परिवर्तन को देख सकती हो, मृदु तुम अपने घर में अपनी बाँहों को न देख लो पहले? बाद में पवनार, सेवाग्राम, मगनवाडी, गोपुरी आदि जगहों में देखो, अपने कालेज में भी तुम्हें विद्यार्थी इस बार तो कुछ न कुछ काम करते नजर आ ही जाएँगे। फिर असली ग्रामवासियों की और किसानों की तो बात ही क्या है? ये है प्रजा-प्रेमी रानी के प्रेम का प्रभाव।

परम ज्ञानी भूदानी बाबा पर रानी की बडी श्रद्धा है। उनकी वाणी द्वारा रानी अपने आदेशो का प्रचार अब उत्तर प्रदेश में भी कराने लगी है।

अब वर्षा-रानी अपनी प्रजा को अन्न-वस्त्र के लिए तडपते हुए नहीं देख सकती। जो उसके आदेशो का तत्परता से पालन करेंगे उनका पालन पोषण अपने आप होगा। जो रानी के आदेशो का पालन बहुमत से नही करेंगे रानी के राज में वे जिन्दा नही रहेंगे। रानी अपनी 'बाढ' रूपी भुजाओ में लपेट कर उन्हे अपने आप में समेट लेगी। यही उसकी कठोर शासन-प्रियता और कठोरता है।

आओ, इस बात को अच्छी तरह समझ लें, औरो को भी समझाएँ और सावधान हो जाएँ।

ऐसी यह रानी कौन है, इसका कुल कौन-सा है ? यह जानने का कुतूहल तुमको होगा। तो सुनो —

वर्षा-रानी के माता-पिताकी कथा आज तक एक रहस्यमयी गाथा ही बनी हुई है। राजकुल के अपने सुपरिचित वयोवृद्ध सिंधुदेव के सिवा इस बात का असली भेद अब तक दूसरा कोई नही जान पाया है।

प्रजा, अनेक युगो से इतना ही देखती और सुनती आई है कि उसके राजकुलमें कभी कोई कुमार नही हुआ। केवल तीन सनत्वालाएँ हुई हैं। वे ही राज परम्परा को क्रमश कायम रखे हुए हैं। उनके नाम वर्षा कुँवर, शीत कुँवर और ग्रीष्म कुँवर है। इन राजकुमारियों का जन्म 'सागर-कुल' में हुआ था। उसकी संक्षिप्त कहानी इस प्रकार है —

अनादि काल की कथा है। माता भागीरथी और पिता सागर-राज का भारत में एक छत्र राजा था। सुवर्तिर द्वीप उनकी राजधानी थी। उनका राजमहल बडा अनोखा था। साधारण राजमहलो की तरह उनका महल न ऊँचा था, न उसका कोई शिखर था, न वह किसी को दूर से कही दिखाई दे सकता था। पर वह बहुत विशाल था।

द्वीप के चारो ओर के तट पर वह बसा था। राज की प्रजा चारो ओर से, समान अन्तर से, समान हक से राज निवास को देख सकती थी, उसके निकट पहुँच सकती थी, और एक कुटुम्ब के भाव से आनन्दित और सुसगठित रहती थी। राजा और प्रजा विविध रूपिणी शक्तियो के उपासक थे। द्वीप के अतरतल में एक अनुपम अद्भुत मदिर था। सर्वांतस्तल मे 'महारानी शक्तिमतीका मदिर' के नाम से लोग उसे जानते थे। वहाँकी आराधना और साधना की रीति भी कुछ अनोखी थी। सर्वजनो के अन्तर द्वार से होकर लोग स्वतन्त्र रूप से सीधे प्रतिमा-दर्शन के लिए नित्य जब चाहें तब जा सकते थे और मनचाही शक्ति, स्फूर्ति, प्रेरणा प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकते थे।

राजमाता भागीरथी और पिता सागरराज शक्तिमती महारानी के अनन्य भक्त थ। उनकी प्रार्थनाएँ बहुधा सामूहिक जन हित के लिए ही हुआ करती थी।

एक बार राजमाता और राजपिता दोनो सर्वांतर तट पर स्थिर आसन लगाकर बैठे थे वे ध्यानस्थ होकर परस्पर सम्मिलित उपासना में लीन थे। प्रजा के प्रति उनका पुत्रवत् गहरा स्नेह था। इसीसे जब तक उन्हें कभी स्वतत्र रूप से पुत्रेषणा प्रतीत नही हुई थी, या यूँ कहें कि उन्हें प्रजा के सुख उन्नति का ध्यान चिंतन करने में अब तक व्यक्तिश अपने लिए सोचने का समय ही नही मिल पाया था, पर अब देवी महारानी की दया से प्रजा में सब प्रकार का सुख, सतोष छाया हुआ था कही किसी बात का सताप या उलझन उपस्थित नही थी। इसलिए आज जब राजमाता भागीरथी देवी और राजपिता सागरदेव एकाग्रचित्त से सम्मिलित उपासना में लीन हुए तो उन दोनो का चित्त अपनी प्यारी प्रजा के सुख-सतोष के ख्याल से अत्यन्त शान्त और प्रसन्न था। ध्यान समाप्त करने की उन्हें जल्दी नही थी देवीरानी क सदगुणो का ध्यान और चिन्तन करते करते उनके चित्त में मुग्ध भाव भर उठे थे, उसकी रेखाएँ उनके चेहरो पर भी चमकने लगी थी, अन्तर में उनकी ध्यानावस्था अधिक गहरी होती जा रही थी कि अब महादेवी के दया

प्रेम के प्रभाव में एक स्नेह भरा कुतूहल दोनो के दिलो में लगा। और अकस्मात् एक कल्पना, एक कामना, एक साथ दोनो के दिलोमेंजागृत हो गई। उनके भाव और विचार सम अनुभूति में एकाकार हो गए। उनकी सम्मिलत एकात्मता अपने आप इतनी घनिष्ट और गहरी हो गई कि उनके भाव अतस्तल की अति गम्भीर गहराई तक जा पहुँचे, जहाँ महारानी शक्तिमति अपने स्नेहशक्ति सिंहासन पर विराजमान थी और अपने भक्तो के भावो को ग्रहण करने के लिए आतुर बैठी थी।

अब तक तो नित्य राज माता और पिता के अनेक प्रजा हित के भाव उन तक पहुँच जाया करते थे और देवी अपने ढग से उनका सतोप प्रजा तक पहुँचा दिया करती थी। पर आज तक अब वे इतजार ही में रही थीं कि अचानक भक्तिमति भागीरथी माता और पिता सागर का एक सम्मिलित भाव देवी के आगे जा पहुँचा। उसे देख पहले तो देवी महारानी को भी कुछ आश्चर्य हुआ, पर दूसरे ही क्षण उनके मुख पर मुस्कराहट फैल गई। वह भाव था सन्तान की कामना का। जो भी हो देवी का आसन डोल उठा। वे स्वय अपने सर्वातिस्तल के स्थान से ऊपर को उठने लगी और उनसे रहा ही नही गया। वे आस्ते आस्ते अतर तटपर आकर राजा रानी की सम्मिलित उपासना की एकरूपता देख दग रह गई। अपना आसन डोलने के कारण का उन्हें अब पता चला। भक्तो के मन का मुग्ध भाव देख वे प्रसन्न हो उठी। वें वरदान देने को उद्यत हुईं। राजा रानी के मस्तक पर सम्मिलित रूप से तीन बार वरद हस्त फिराकर देवी स्तब्ध खडी रही। दो आत्मा व अश की ऐसी सदेह एकात्मकता प्रत्यक्ष में इससे पूर्व कभी नही देखी गई थी।

❧

नई प्रणाली और बुनियादी शिक्षा

डॉ मदनमोहन शर्मा

शिक्षा और समाज का अत्यत घनिष्ट सबध है। प्रत्येक समाज में शिक्षा किसी न किसी रूप में एक पीढी से दूसरी पीढी तक हस्तान्तरित होती है। प्रत्येक समाज और राष्ट्र का यह दायित्व है कि वह विज्ञान और तकनीकी के विकास के साथ अपने आपको सामजस्य बनाए रखने के लिए सुनिश्चित शैक्षिक नीति अपनाए।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय जनजीवन के मौलिक विचारो, मूल्यो, आदर्शो व भावनाओ में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए है। इन परिवर्तनो को शिक्षा के द्वारा उचित दिशा प्रदान किया जाना आवश्यक है। शिक्षा उस प्रक्रियाका नाम है जिसके बलपर मनुष्य अपनी परिस्थितियो पर विजय पाता है, जीवन की नाना प्रकारकी समस्याओ को सुलझाता है एव कर्तव्यो का पालन करता है।

छात्र की शिक्षा तब तक पूर्ण नही कही जा सकती जब तक कि वह वास्तविक जीवन की परिस्थिति में किसी न किसी कार्य अनुभव में भाग न ले और अपने निर्वाह के लिए अपने पैरोपर खडा न हो। ऐसा होने पर ही शोषण-रहित समाज की स्थापना, राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि, जीवनमयी शिक्षा का दिया जाना तथा शिक्षण में सजीवताका आना सभव है और तभी छात्र को अपने पैरोपर खडा होने मे सहायता मिलेगी। कार्यानुभव, व्यवसायीकरण तथा व्यावहारिक पाठ्यक्रम आज की शिक्षा के आवश्यक अग है। छात्र शारीरिक एव मानसिक दृष्टि से समृद्ध बनने के साथ साथ स्वावलबी भी बनें।

आधुनिक युग में यदि शिक्षा स्वावलबन की ओर अग्रसर न कर सकी तो कोरी पुस्तकीय शिक्षा जीवन की समस्याओ को सुलझाने में सहायक न हो सकेगी। स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश और समाज के निर्माण हेतु मस्तिष्क और हाथ दोनो का निकट सम्बध आवश्यक है। नित्य प्रति के उपयोगी कार्य आज शिक्षा के विषयो का रूप लें यह आवश्यक है। 'शिक्षा जीवन के लिए' इसी सिद्धान्त को अब दृष्टि से ओझल नही किया जा सकता। मन मस्तिष्क और शरीर को शिक्षा के साथ

प्रत्यक्ष जोडा जाना इसलिए आवश्यक है कि मानवका सतुलित निर्माण और सर्वांगीण विकास हो सके। इससे पुस्तकीय ज्ञान और कार्य की दुनिया के बीच पडी दरार पाटी जा सकेगी तथा शिक्षा और दोनो के बीच एकीकरण सभव होगा और तभी छात्र स्वावलबी जीवन बिता सकेंगे।

शिक्षा सबधी विचार करते समय हमें यह भी नहीं भूलना है कि भारत एक ग्राम-प्रधान देश है। ग्राम प्रधान भारत में ग्रामीण युवक युवतियो के सर्वतोमुखी विकास को दृष्टि में रखकर उनकी आवश्यकता की ओर उचित ध्यान देना है।

देश की उपर्युक्त सभी आवश्यकताओ के समन्वित रूप को ध्यान में रखकर बुनियादी शिक्षा के रूप में गाँधीजी ने एक ऐसी शिक्षा-योजना की कल्पना की थी जिससे सारा का सारा देश जीवनोपयोगी वस्तुओ के मामले में आत्म निर्भर हो जाए। गाँधीजी की दूर दृष्टि ने शिक्षा के दौरान एक बुनियादी उद्योग सिखाए जाने की बात कही जो हस्तोद्योग हो और बहुत थोडे साधनों से चल सके। देश की विशाल जनसख्या होने के कारण काम लायक वस्तुओं के बनाने के लिए मनुष्य के हाथ ही काफी है इस विचार से गाँधीजी की बुनियादी शिक्षा में घरेलू उद्योग धन्धों को केन्द्रीय विषय बनाया गया था। वे यह भी चाहते थे कि पढाई के बाद सभी लोग सरकारी या गैर सरकारी नौकरी के पीछे न दौडें वरन् अपनी मेहनत से अपनी रोजी स्वय कमाने में समर्थ हो। किन्तु स्वतत्रता प्राप्ति के बाद अन्य विकसित और प्रगतिशील देशो के साथ ,होड करने की धुन मे भारत ने अपना रस्ता बदल दिया और भारी तथा यांत्रिक उद्योगो की होड में बुनियादी शिक्षा भी पिछड गई। अव्यावहारिक शिक्षा प्राप्त लोगो की सख्या तीव्रता से बढने के कारण बे रोजगारी की तथा अन्य समस्याएँ भयावह रूप में सामने आई तब पुन हमारी शिक्षा व्यवस्था में व्यवसायीकरण की बात सोचनी पडी।

इस समय १०+२+३ शिक्षा सरचना की धूम मची हुई है। इसमें १५ वर्ष की अवधिमें बालकबालिका के सपूर्ण व्यक्तित्व के विकास की कल्पना आँकी गईहै। दस वर्ष की शिक्षा, आगे की शिक्षा का आधार तैयारकरेगी। दो वर्षका कोर्स हेतु सदृश होगा और उसमें छात्र शास्त्रीय

कोर्स छोडकर व्यावसायिक कोर्स ले सकेगा या व्यावसायिक कोर्स छोडकर शास्त्रीय कोर्स ले सकेगा। एव तीन वर्ष का कोर्स एव विशेष क्षेत्रकी ओर ले जाने के लिए होगा। इस नई पद्धति में कार्यानुभवपर जोर दिया जा रहा है। सैद्धान्तिक विषयो के साथ वास्तविक जीवन से मिलती जुलती परिस्थितियो में उत्पादन कार्य का ज्ञान होने एव उसे व्यावहारिक रूप देने की आवश्यकता की ओर विशेष दृष्टि है। यदि बुनियादी शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्तो को इस नई सरचना के परीक्षण में ध्यान पूर्वक देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि कार्यानुभव की प्रधानतापूर्ण इस सरचना के मूल का विचार गाँधीजी का ही है। शिक्षा में उद्योगो को प्रमुखता देने की आज जोर शोर से कही जाने वाली बात में भी गाँधीजी का ही जादू है। आज हमें विवश होकर यह सोचना पड रहा है कि शिक्षा के मूल मे कोई न कोई ऐसा उद्योग होना चाहिए कि जिसे हर शिक्षित व्यक्ति अपनी शिक्षा की समाप्ति के बाद अपना सके।

बुनियादी शिक्षा के रूप में एक उपयोगी विचार तत्कालीन परिस्थिति में गाँधीजी ने दिया था। उन्होने उस समय जो कुछ कहा उसके आगे अन्तिम विराम चिन्ह नही लगाया था। युग और परिस्थिति के अनुरूप उसे नया रूप देने की उनकी मुमानियत नही थी। १०+२+३ शिक्षा सरचना इस दृष्टि से प्राचीन एव नवीन विचारधाराओ का समन्वय करनेवाली कही जा सकती है। फिर भी उसके साथ कई प्रकार की ऐसी समस्याएँ जुडी हुई है जिन्हें आज की परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में ध्यानपूर्वक देखना होगा।

अध्यापक का व्यक्तित्व और कार्य छात्रों के लिए उदाहरण बनता है। अत यह आवश्यक हो गया है कि अध्यापक गण छात्रो के साथ हिल मिलकर सभी प्रकार का श्रम करें। पर्याय से इसका अर्थ यह होता है कि अध्ययन कक्षो की पढाई से अधिक महत्वपूर्ण यह है कि खेतो, कार्य शालाओ और प्रकृति के सानिध्यमें बैठकर हमें अपने पाठो को क्रियात्मक रूप से सीखना और गुणना है।

यह शिक्षा की वह वास्तविक तस्वीर है जिसकी एक स्वतन्त्र प्रजातान्त्रिक देश में आवश्यकता एव उपयोगिता है।

नई तालीम समिति की सिफारिशें

नई दिल्ली में १४ मई को डा श्रीमन्नारायण की अध्यक्षता में हुई अपनी विशेष बैठक में अखिल भारतीय नई तालीम समिति ने सघ सरकार से जोर देकर अनुरोध किया है कि १०+२+३ की नई शिक्षा प्रणाली म विभिन्न स्तरो पर बुनियादी शिक्षा के गांधीजी के सिद्धान्त को लागू किया जाए। इसे आर्थिक प्रगति और विकास से सबद्ध समाज के लिए लाभकारी और उत्पादक गतिविधियों क माध्यम से शिक्षा देकर गांव और शहरो म साथ साथ लागू किया जाए। बैठक में छात्रो और शिक्षको को समाज सवा के महत्वपूर्ण कार्यो से सम्बद्ध कर आत्मनिर्भरता, आत्म विश्वास, श्रम के महत्व और राष्ट्रीयता तथा सामाजिक दायित्व की भावना पर बल देने वाले पाठ्यक्रम लागू करने की सिफारिश की गई। समिति ने यह भी अनुरोध किया कि नैतिक मूल्यो की स्थापना, आवश्यक एकता की उचित समझ तथा सभी धर्मों के प्रति समान सम्मान को देश में शिक्षा के विकास का अभिन्न अग माना जाए।

नई तालीम समिति ने यह इच्छा व्यक्त की कि अतरराष्ट्रीय परपरा के अनुसार १० वर्षीय स्कूली शिक्षा को बुनियादी शिक्षा के नाम से जाना जाए। वर्तमान शैक्षणिक अध्ययन के भार को उचित सीमा तक कम किया जाए तथा स्कूल का कम से कम आधा समय विभिन्न विषयो की शिक्षा से सम्बद्ध रचनात्मक और उत्पादक गतिविधियो में लगाया जाए।

यह सिफारिश की गई कि उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के दो वर्षों को इस सीमा तक व्यावसायिक बनाया जाए कि कम से कम ५० प्रतिशत छात्र विभिन्न व्यवसायों में लग सकें तथा कालेजो और विश्वविद्यालयो की वर्तमान भीड को बडी सीमा तक कम किया जा सके।

ये डिप्लोमा पाठ्यक्रम आसपास के क्षेत्रो में उपलब्ध रोजगार के अवसरो का उचित सर्वेक्षण कर तैयार किए जाए।

स्कूल, कालेज और स्वयंसेवी संस्थाएँ प्रौढ शिक्षा के कार्यक्रमो में सहयोग दें। यह शिक्षा क्रियात्मक होनी चाहिए जिससे प्रौढो की कार्यकुशलता में सुधार हो। देश के विभिन्न भागो में बालमंदिरो का गठन कर पूर्वबुनियादी शिक्षा पर भी बल दिया जाए।

तीन वर्षीय स्नातक पाठ्यक्रम को २+१ मे बाँट दिया जाए और तीसरे वर्ष की समाप्ति पर आनर्स की डिग्री दी जाए। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय की डिग्री को सरकारी और गैर सरकारी क्षेत्र के रोजगारो से सम्बद्ध किया जाए। इससे रोजगार की प्रतीक्षा मे उच्च शिक्षा के क्षेत्र में वर्तमान भीड में कमी होगी।

समिति ने अध्ययन-पाठ्यक्रम तैयार करने तथा दिन प्रतिदिन के आंतरिक मूल्यांकन के आधार पर परीक्षा में सुधारो को लागू करने में शिक्षा संस्थाओ को पर्याप्त स्वतंत्रता दिए जाने पर बडा जोर दिया। यह भी कहा कि शिक्षा के स्तर में सुधार लाने की दृष्टि से स्कूलो और कालेजो पर से सरकारी नियंत्रण कम किया जाए।

■

सेवाग्राम आश्रम वृत्त

मई और जून १९७७

गत वर्ष के अनुपातमें इस वर्ष आश्रम कार्यक्रमो की उपस्थिति में समाधान कारक वृद्धि हुई। आश्रम प्रार्थना में औ हा १०५ रही ईशोपनिषद् पाठ और अन्य धर्मोका प्रार्थना में समावेश रहा। इसके अलावा पारिवारिक महिलाएँ और बच्चो के सुविधा की दृष्टि से न ता कुटी सर्व धर्म अध्ययन केन्द्र में सुबह ५–३० बजे अलग प्रात प्रार्थना का आयोजन पूर्ववत चालू रहा। प्रौढ शिक्षण ही इसका मूल उद्देश्य रहा। इस कार्यक्रम में औसत हाजरी १४८ रही। इस अवधि में पारिवारिक गृहिणियो ने तथा बच्चा ने कुल पाँच भक्तिगीत (भजन) ताल और स्वर के साथ कठस्थ किए। सारी प्रात प्रार्थना कठस्थ हुई है।

कस्तूरबा महिला मडल की ओर से प्रति शनिवार को 'साप्ताहिक भजन' कार्यक्रम आयोजित किया जाता है। रात के ८ से ९॥ बजे तक यह कार्यक्रम नई तालीम कुटी के सर्व धर्म अध्ययन केन्द्र में संपन्न होता रहता है।

नई तालीम पर्व के अवसर पर स्व पूज्य आर्यनायकम् बाबाजी तथा स्व पूज्य आशादेवी माताजी के पुण्य स्मरण के उपलक्ष्य में २० जून से ३० जून को शानदवन समाधि स्थानपर गिरी प्रवचन व सर्वधर्म प्रार्थना, नई तालीम सर्व धर्म अध्ययन केन्द्र में सेवाग्राम तथा न ता. बालवाडी बच्चो के (प्रार्थना, सा कार्यक्रम, नाश्ता आदि) कार्यक्रम कार्यकर्तागण तथा पुराने विद्यार्थियो का स्नेहमिलन तथा मुक्त चर्चाएँ, सामूहिक भोजन, जिसमे अतिम दिन पजाबराव कृषि विद्यापीठ के व्हाईस चॅन्सेलर श्री गोपाल कृष्णनजी भी शामिल थे, आश्रम प्रार्थना भूमिपर सामूहिक सूतयज्ञ तथा शामकी सामूहिक प्रार्थना, रात में ८ से ९॥ बजे तक न ता कुटी में सर्व भाषीय भजन आदि कार्यक्रम सफलतापूर्वक सपन्न हुए।

योजना भी बनाई गई है। वर्धा महिलाश्रम द्वारा संचालित खादी भंडारों में जो रेडीमेड कपडे बेचे जाते है उनको तैयार करवानेका कार्य भी कस्तूरबा महिला मंडल उठा सकेगा।

इस तरह यह जीवन-शिक्षण का एक अभिनव प्रयोग आरंभ किया गया है।

इसी तरह का प्रौढ शिक्षण का एक दूसरा प्रयोग खेती-गोशाला विभाग द्वारा संगठित किया जा रहा है। आश्रम प्रतिष्ठान तथा नई तालीम खेती-गोशालामें काम करने वाले बहन भाई सुबह कार्य आरम्भ करने के पूर्व गोशाला विभाग में इकट्ठे हो जाते हैं। सामूहिक प्रार्थना से उनका कार्य शुरू हो जाता है। समय पर आना, कतार में ठीक से बैठना, भक्ति गीत (भजन), तथा प्रार्थना कंठस्थ कराना तथा उसका अर्थ समझाना इ. कार्य नियमित रूप से शुरू हुए हैं। दैनिक कार्यों के संबंधमें प्रसंगानुरूप जानकारी श्री अनंतराम भाई जी द्वारा दी जाती है। इस तरह जीवन शिक्षण का यह दूसरा कार्य हो रहा है।

(ऊ) ग्रामीण युवकोंका स्वावलंबी प्रौढ-शिक्षण शिबिर—

सेवाग्राम गांव के युवकों में से जिनकी पढाई अधूरी रही और जिनको कोई काम नहीं, पालकों के लिए जो एक सवाल बन बैठे हैं ऐसे ग्यारह युवकों को लेकर स्वावलम्बन के विचार से मई माह में यह शिबिर आश्रम परिसरमें चलाया गया। कुल, १५ दिन शिबिर चला। प्रति दिन तीन घंटा शिबिरार्थियों ने शारीरिक परिश्रम किया। कृषि संचालक की योजनानुसार निरुपयोगी नाली निकालनेका तथा ईंटें इकट्ठा करनेका काम, कम्पोस्ट तैयार करने का काम तथा प्रथम आदि निवासमें मुरुम भरनेका काम इस कार्य इस अवधिमें किए गए। उत्पादक श्रम वेतन की दृष्टि से कुल रु १३१-४० कमाई की गई। शिबिर के लिए कुल खर्च ३८७ रु हुआ। इस तरह ३६.२५ स्वावलंबन हो सका। सर्व श्री आपटे गुरुजी, अण्णासाहेब, निर्मल बहन, चिमनलाल भाई, प्रभाकरजी तथा अनंत रामजी आदि महानुभावोंने इन शिबिरार्थियों के बौद्धिक वर्ग लेने में मदद की।

(ए) **नई तालीम-ग्रामोद्योग शिविर :—**श्री. देवेन्द्र भाई की प्रेरणासे यह शिविर आश्रम परिक्षेत्र में चलाने की जिम्मेवारी श्री आंजनेयलुजी ने ली। अर्ध शिक्षित बेकार युवको को स्वतन्त्र उद्योग देने की दृष्टि से यह कार्य आरम्भ किया गया। कुल ८ ग्रामीण युवक इस योजनामें शामिल रहे। इसमें लकडी-लोहा सफाई करके उसे पेंट लगाना, या वाईल आईल लगाना, दिवारोको डिसटेंपर लगाना, तथा कुटियो के लिए मिट्टी रग का डिसटेपर लगाना इ कार्य किए गए। आश्रम स्मारक कुटियाएँ रुस्तम भवन, गोरी भवन इ मकानो में तथा मेडिकल कालेज के मकानो मे इन प्रशिक्षार्थियो ने काम किया। यह शिविर कुल ६ सप्ताह चला।

आश्रम परिसर में दैनिक सामूहिक सफाई कार्य का आयोजन — आश्रम व नई तालीम परिक्षेत्र को चार भागों में विभाजित कर चार प्रमुखो को इन विभागो की जिम्मेवारी सौंपी गई और उनकी मदद के लिए आवश्यकतानुसार मनुष्यबल दिया गया। आश्रम परिक्षेत्र में अधिकांश कार्यक्षम लोगो को इस कार्य मे शामिल होने का अवसर दिया गया। कार्यकर्ताओ ने प्रतिदिन सुबह ६ से ७ बजे तक एक घटा यह कार्य चलाने का सकल्प किया है।

आश्रम परिसर के एक भूखड पर शुरू किए उत्पादक परिश्रम कार्यको ऐच्छिक किया गया। अब इस कार्यक्रम में शामिल होने वाले नियमित रूप से आते हैं।

आश्रम दर्शनार्थी तथा अतिथियो की व्यवस्था.— इस अवधि में कुल ६२०६ दर्शनार्थी आए जिनमे १६५ टोलियाँ थी।

इसी अवधि में ३० मई को पूज्य विनोबाजी ने सेवाग्राम आश्रम की बापू कुटी में आकर मौन प्रार्थना की। भारत सरकार के कृषि-गोपालन के डायरेक्टर जनरल श्री स्वामीनाथन् जी अपने विभागीय कार्यकर्ताओ के साथ सेवाग्राम आश्रम मे आए और ग्रामीण विकास कार्यक्रम के सबध में आश्रमवासियो के साथ विचार विमर्श किया। केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्री श्री. प्रतापचन्द्र चुंदरजी ने भी इसी अवधि में बापू कुटी का दर्शन किया। कुल ८ विदेशी यात्रियो ने भी सेवाग्राम आश्रम में

वास्तव्य करके आश्रम जीवन की शिक्षा प्राप्त करने का तथा, निरीक्षण और अध्ययन करने का प्रयास किया। विदाई के समय सारे अतिथि प्रसन्न चित्त से विदा हुए।

शिविर सम्मेलनादि —स्वावलम्बी शिक्षण शिविर तथा नई तालीम ग्रामोद्योग शिबिर के पश्चात् इस अवधिमें सेलू ब्लाक के ग्राम शिक्षको के लिए "रोग प्रतिबंधक प्रशिक्षण" शिविर का आयोजन मे को की ओर से आश्रम परिसरम किया गया। इसमें कुल १२ शिक्षक शामिल हुए। शिक्षा कार्य के साथ-साथ स्वास्थ्य रक्षा का प्राथमिक कार्य भी ये लोग देहातो मे करे ऐसी योजना है।

सांस्कृतिक कार्य —पूज्य श्री जयप्रकाशजी के स्वास्थ्य लाभ के लिए साय प्रार्थना के पश्चात मौन प्रार्थना की गई। स्व श्री आर्यनायकम् बाबाजी तथा स्व आशादेवी माताजी के पुण्यस्मरण के उपलक्ष्यमें २० जून से ३० जून तक नई तालीम पक्ष मनाया गया। जिसमें पूर्व निर्देशित सारे कार्यक्रम सफलतापूर्वक सपन्न हुए।

अब वर्षा का प्रारम्भ होने से बुआई का कार्य आरम्भ हो चुका है।

□

रजि० स० WDA/1 लायसेंस नं० ५

मुद्रक शंकरराव लोंढे, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा

नई तालीम का मकसद

शासन और अनुशासन

जीवन-केन्द्रित शिक्षा

" हिरण्मयेन पात्रेण "

अखिल भारत नयी तालीम समिति

सेवाग्राम

वर्ष : २४] दिसम्बर–जनवरी, १९७६ [अंक : ३

अध्यात्म और अहिंसा का समन्वय हो, तो सर्वोदय समाज स्थापित हो सकता है। लेकिन अगर साइंस के साथ हिंसा का गठबन्धन हो जाए, तो फिर समाज और संसार का सर्वनाश सुनिश्चित है।

इस अवसर पर आचार्य विनोबा ने 'अनुशासन-पर्व' की व्याख्या भी बहुत मार्मिक ढंग से की। उन्होंने समझाया कि शासन, सत्ता का होता है, और अनुशासन आचार्यों का। भारत में आचार्यों की परम्परा प्राचीन कालसे चली आ रही है। भगवान् राम और कृष्ण ने भी गुरुओं के आश्रम में जाकर शिक्षा प्राप्त की थी और अनुशासन का आदर्श अपने जीवन में उतारा था। केवल सत्ता और राजनीति से दुनिया की समस्याएँ सुलझ नहीं पाती हैं। वे कुछ समय के लिए सुलझ भी गईं, तो फिर उलझ जाती हैं। लेकिन अगर आचार्यों के अनुशासन में दुनिया चले, तो सच्ची शान्ति स्थापित हो सकती है। आचार्य वे होते हैं, जो निर्भय, निर्वैर और निष्पक्ष होते हैं तथा कभी अशान्त नहीं होते। यदि उनके मार्गदर्शन में लोग चलेंगे, तो उनका भला होगा और दुनिया में शान्ति होगी।

अन्त में ऋषि विनोबा ने चेतावनी दी कि यदि शासन आचार्यों के मार्गदर्शन का विरोध करेगा, तो उसके सामने सत्याग्रह करने का प्रश्न आएगा। लेकिन विनोबाजी को विश्वास है कि भारत का शासन कोई ऐसा काम नहीं करेगा, जिससे सत्याग्रह का मौका आये। इसी दृष्टि से उन्होंने पवनार आश्रम में जनवरी के मध्य में आचार्यों का एक सम्मेलन भी बुलाया है, जिसमें देश की वर्तमान स्थिति पर गम्भीर चिन्तन किया जाएगा। आशा है आचार्यों के इस सम्मेलन द्वारा देश को एक नया प्रकाश प्राप्त हो सकेगा।

अखिल भारत रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन :

गत २४, २५ और २६ दिसम्बर को केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि की ओर से सेवाग्राम में एक अखिल भारत रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन आयोजित किया गया। उसमें देशभर के करीब ४०० चुने हुए कार्यकर्ताओंने भाग लिया। तीन दिन की विस्तृत चर्चा के

पश्चात् सम्मेलन ने सर्वानुमति से जो 'निवेदन' स्वीकृत किया, उसको इसी अक में अन्यत्र प्रकाशित किया गया है।

इस निवेदन में यह बिलकुल स्पष्ट कर दिया गया है कि रचनात्मक कार्यकर्ताओ को सत्ता और दलगत राजनीति से अलिप्त रहना चाहिए और उनके सभी कामो में साधन शुद्धि का पूरा ध्यान रखना नितान्त आवश्यक है। पूज्य विनोबाजी ने स्पष्ट कर दिया है कि साधन-शुद्धि का अर्थ है कि हमारे सभी काम सत्य, अहिंसा और सयम के आधार पर सचालित किये जाएँ। यदि किसी विशेष कार्यक्रम को चलाते हुए कुछ ऐसी कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाएँ, जो पूरे प्रयत्न करने पर भी दूर न हो सकें, तो फिर गाधीजी के आदर्शों के अनुसार सत्याग्रह का तरीका अपनाया जा सकता है। किन्तु इस प्रकार के सत्याग्रह मे वैर, क्रोध और पक्षपात का कोई स्थान नही रह सकता।

सेवाग्राम सम्मेलन के निवेदन में समग्र-दृष्टि और अन्त्योदय की भावना पर भी बहुत जोर दिया गया है। अगर हमारी रचनात्मक सस्थाएँ अपने ही विशिष्ट कार्यक्रमो में व्यस्त रह और समग्र दृष्टि न रखें, तो सर्वोदय आन्दोलन अधिक गतिशील नही बन सकेगा। यह भी निहायत जरूरी है कि हमारे रचनात्मक कामो का मुख्य उद्देश्य गरीबी-रेखा के नीचे रह रही जनता का सामाजिक, आर्थिक व अध्यात्मिक उत्थान होना चाहिए। यह तभी सम्भव हो सकता है, जब हमारे देश की अर्थ-व्यवस्था विकेन्द्रित हो और ग्राम-स्वराज्य द्वारा आम जनता में स्वदेशी व स्वावलम्बन की भावना जाग्रत की जाय। इस समय देश में केन्द्रीकरण की जो धारा प्रवाहित हो रही है, उसे सम्मेलन ने बडी चिन्ता की दृष्टि से देखा।

इस सम्मेलनमें कार्यकर्ताओं से आग्रह किया गया कि वे आनेवाले वर्ष में मद्य निषेध और अस्पृश्यता-निवारण के आन्दोलनो को सफल बनाने के लिए अपनी सम्मिलित शक्ति लगावें। ये दोनो कार्यक्रम 'अन्त्योदय' की दृष्टि से बहुत महत्व के हैं और उनको कामयाब बनाए बिना देश की गरीबी और पिछड़ापन हटाना नामुमकिन है।

सम्पादक-मण्डल :
श्री श्रीमन्नारायण – प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
आचार्य राममूर्ति

वर्ष २४
अंक ३

अनुक्रम

हमारा दृष्टिकोण
नई तालीम का मकसद, १०२ महात्मा गांधी
शासन और अनुशासन १०५ ऋषि विनोबा
जीवन-केन्द्रित शिक्षा १११ इंदिरा गांधी
'हिरण्मयेन पात्रेण' ११३ श्रीमन्नारायण
साक्षरता और गरीबी १२० जी रामचन्द्रन
रचनात्मक कार्य बुनियादी निष्ठायें १२५ देवेन्द्रकुमार
साक्षरता शिक्षण का एक क्रांतिकारी प्रयोग १२९ पद्मजा वग
रिपोर्टें
'शिक्षा सलाहकार मंडल' के सुझाव १३७
सेवाग्राम आश्रम १४२

दिसम्बर–जनवरी, '७६

* 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
* 'नयी तालीम' का वार्षिक शुल्क बारह रुपये है और एक अंक का मूल्य २ रु है।
* पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी संख्या लिखना न भूलें।
* 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ भा नयी तालीम समिति, सेवाग्राम के लिए प्रकाशित और राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

हमारा दृष्टिकोण

ऋषि विनोबा के मौन की समाप्ति

एक वर्ष के मौन के बाद ऋषि विनोबा ने तारीख २५ दिसम्बर को धाम नदी के तट पर अपने आश्रम के मच मे राष्ट्र को एक विशेष सन्देश दिया। उन्होने पच शक्तियों के सहयोग पर बल देते हुए कहा कि भूदान और ग्रामदान जैसे रचनात्मक कार्यक्रमो को सभी के सहयोग से ही सफल बनाया जा सकता है। ये पाँच शक्तियाँ है—जन शक्ति सज्जन-शक्ति, विद्वत-शक्ति महाजन शक्ति और शासन-शक्ति। दो वर्ष पहले पवनार आश्रम में ही आयोजित ट्रस्टीशिप सम्मेलन के अवसर पर विनोबाजी ने इस पच-शक्ति का बडा सुन्दर विवेचन किया था। हम आशा करते हैं कि देश मे इन पाँच शक्तियो के सहकार्य का वातावरण बन सकेगा, ताकि गरीबो की सेवा के सभी रचनात्मक काम तेजी से बढ सकें।

वर्ष : २४
अक : ३

पूज्य विनोबाजी ने विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय पर भी बहुत जोर दिया। उन्होने पहले भी कई बार कहा है कि अब राजनीति और मजहब का जमाना लद चुका है, आनेवाला युग विज्ञान और अध्यात्म का है। विज्ञान में शक्ति और गति है लेकिन दिशा दर्शन नही है। सही दिशा का दर्शन केवल आत्मज्ञान से प्राप्त हो सकता है। यदि विज्ञान के साथ

अध्यात्म और अहिंसा का समन्वय हो, तो सर्वोदय समाज स्थापित हो सकता है। लेकिन अगर साइस के साथ हिंसा का गठबन्धन हो जाए, तो फिर समाज और संसार का सर्वनाश सुनिश्चित है।

इस अवसर पर आचार्य विनोबा ने 'अनुशासन-पर्व' की व्याख्या भी बहुत मार्मिक ढंग से की। उन्होंने समझाया कि शासन, सत्ता का होता है, और अनुशासन आचार्यों का। भारत में आचार्यों की परम्परा प्राचीन कालसे चली आ रही है। भगवान् राम और कृष्ण ने भी गुरुओं के आश्रम में जाकर शिक्षा प्राप्त की थी और अनुशासन का आदर्श अपने जीवन में उतारा था। केवल सत्ता और राजनीति से दुनिया की समस्याएँ सुलझ नही पाती हैं। वे कुछ समय के लिए सुलझ भी गईं, तो फिर उलझ जाती हैं। लेकिन अगर आचार्यों के अनुशासन मे दुनिया चले, तो सच्ची शान्ति स्थापित हो सकती है। आचार्य वे होते है, जो निर्भय, निर्वैर और निष्पक्ष होते हैं तथा कभी अशान्त नही होते। यदि उनके मार्गदर्शन में लोग चलेंगे, तो उनका भला होगा और दुनिया में शान्ति होगी।

अन्त में ऋषि विनोबा ने चेतावनी दी कि यदि शासन आचार्यों के मार्गदर्शन का विरोध करेगा, तो उसके सामने सत्याग्रह करने का प्रश्न आएगा। लेकिन विनोबाजी को विश्वास है कि भारत का शासन कोई ऐसा काम नही करेगा, जिससे सत्याग्रह का मौका आये। इसी दृष्टि से उन्होने पवनार आश्रम में जनवरी के मध्य में आचार्यों का एक सम्मेलन भी बुलाया है, जिसमें देश की वर्तमान स्थिति पर गम्भीर चिन्तन किया जाएगा। आशा है आचार्यों के इस सम्मेलन द्वारा देश को एक नया प्रकाश प्राप्त हो सकेगा।

अखिल भारत रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन :

गत् २४, २५ और २६ दिसम्बर को केन्द्रीय गाधी स्मारक निधि की ओर से सेवाग्राम मे एक अखिल भारत रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन आयोजित किया गया। उसमे देशभर के करीब ४०० चुने हुए कार्यकर्ताओंने भाग लिया। तीन दिन की विस्तृत चर्चा के

पश्चात् सम्मेलन ने सर्वानुमति से जो 'निवेदन' स्वीकृत किया, उसको इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित किया गया है।

इस निवेदन में यह बिलकुल स्पष्ट कर दिया गया है कि रचनात्मक कार्यकर्ताओं को सत्ता और दलगत राजनीति से अलिप्त रहना चाहिए और उनके सभी कामों में साधन शुद्धि का पूरा ध्यान रखना नितान्त आवश्यक है। पूज्य विनोबाजी ने स्पष्ट कर दिया है कि साधन शुद्धि का अर्थ है कि हमारे सभी काम सत्य, अहिंसा और सयम के आधार पर सचालित किये जाएँ। यदि किसी विशेष कार्यक्रम को चलाते हुए कुछ ऐसी कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाएँ, जो पूरे प्रयत्न करने पर भी दूर न हो सकें, तो फिर गाधीजी के आदर्शों के अनुसार सत्याग्रह का तरीका अपनाया जा सकता है। किन्तु इस प्रकार के सत्याग्रह में वैर क्रोध और पक्षपात का कोई स्थान नहीं रह सकता।

सेवाग्राम सम्मेलन के निवेदन में समग्र-दृष्टि और अन्त्योदय की भावना पर भी बहुत जोर दिया गया है। अगर हमारी रचनात्मक सस्थाएँ अपने ही विशिष्ट कार्यक्रमों में व्यस्त रहें और समग्र दृष्टि न रखें, तो सर्वोदय आन्दोलन अधिक गतिशील नही बन सकेगा। यह भी निहायत जरूरी है कि हमारे रचनात्मक कामों का मुख्य उद्देश्य गरीबी-रेखा के नीचे रह रही जनता का सामाजिक, आर्थिक व अध्यात्मिक उत्थान होना चाहिए। यह तभी सम्भव हो सकता है, जब हमारे देश की अर्थ-व्यवस्था विकेन्द्रित हो और ग्राम-स्वराज्य द्वारा आम जनता में स्वदेशी व स्वावलम्बन की भावना जाग्रत की जाय। इस समय देश में केन्द्रीकरण की जो धारा प्रवाहित हो रही है, उसे सम्मेलन ने बडी चिन्ता की दृष्टि से देखा।

इस सम्मेलनमें कार्यकर्ताओं से आग्रह किया गया कि वे आनेवाले वर्ष में मद्य-निषेध और अस्पृश्यता-निवारण के आन्दोलनों को सफल बनाने के लिए अपनी सम्मिलित शक्ति लगावें। ये दोनों कार्यक्रम 'अन्त्योदय' की दृष्टि से बहुत महत्व के हैं और उनको कामयाब बनाए बिना देश की गरीबी और पिछडापन हटाना नामुमकिन है।

हम आशा करते हैं कि सेवाग्राम सम्मेलन का निवेदन व्यापक गांधी-परिवार की एकता के एक 'चार्टर' के रूप में माना जाएगा। देश के सभी लोग, जो साधन शुद्धि में श्रद्धा रखते हैं, इस गांधी-परिवार के सदस्य हैं और देश की मौजूदा हालत में उनकी पारस्परिक एकता नितान्त आवश्यक है।

हमारी शिक्षा जीवन-केन्द्रित हो

गत २७ नवम्बर को दिल्ली में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मंडल की एक बैठक में उद्घाटन भाषण देते हुए प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने कई मार्के की बातें कहीं। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि हमारी शिक्षा सिर्फ रोजगार-मूलक नहीं, किन्तु जीवन-केन्द्रित होनी चाहिये। यह बुनियादी सिद्धान्त प्राथमिक से लेकर उच्चतम शिक्षा के लिये लागू होना जरूरी है। महात्मा गांधी ने भी बुनियादी शिक्षा का प्रतिपादन इसी दृष्टि से किया था। जब तक विभिन्न स्तरों की शिक्षा जीवनोपयोगी उत्पादक-श्रम द्वारा नहीं दी जाती, तब तक शिक्षित नवयुवकों की बेकारी और निरर्थकता के मसले हल नहीं हो सकते।

श्रीमती इंदिरा गांधी ने इस बात पर भी बहुत जोर दिया कि शिक्षा-सुधार के बहुत-से काम बिना विशेष आर्थिक सहायता के किये जा सकते हैं। इस समय ईंट, पत्थर, सीमेंट और लोहेसे इमारतें बनाने में बहुत खर्च किया जाता है। उसके बजाय यदि शिक्षकों के गुण-विकास पर अधिक ध्यान दिया जाय, तो नवयुवकों के चरित्र का गठन अधिक सावधानी से किया जा सकता है। हाँ, इन शिक्षकों के लिये पर्याप्त उपकरण भी सुलभ किये जाने चाहिये। विद्यार्थियों को केवल किताबी ज्ञान दिये जाने से खास लाभ नहीं होगा। उन्हें तो राष्ट्र की सभी समस्याओं से अवगत कराना चाहिये, ताकि वे भारत के जागरूक, क्रियाशील व उपयोगी नागरिक बन सकें।

महिला सेवा मंडल की स्वर्ण-जयंती :

हमें खुशी है कि वर्धा में महिला सेवा मंडल की स्वर्ण जयंती का उद्घाटन १० जनवरी को पूज्य विनोबाजी ने किया। साधारणतः वे

अपने पवनार आश्रम के बाहर नही जाते है, क्योंकि उन्होंने क्षेत्र सन्यास ले लिया है, किन्तु इस अवसर पर वे अपवाद के रुपमें महिलाश्रम के प्रागण में पधारे और छात्राओ को प्रेरणादायी मार्गदर्शन दिया। कई वर्षों से ऋषि विनोबा स्त्री-शक्ति जागरण पर बहुत भार देते रहे है। महिला सेवा मडल द्वारा सचालित महिलाश्रम ने इस दिशा में पिछले चार दशकों में बहुत ठोस कार्य किया है। भारत के सभी राज्यों की बहनें यहाँ प्रशिक्षित होकर अपने-अपने क्षेत्रों में सुन्दर कार्य कर रही है। हमारे पडोसी मित्र राष्ट्र नेपाल की भी बहुत सी बहनें यहाँ की शिक्षा-दीक्षा का लाभ उठा चुकी है।

इस अवसरपर हम महिलाश्रम की सचालिका श्रीमती शान्ताबाई रानीवाला और उसकी मत्री रमा बहन रुइया का विशेष अभिनन्दन करना चाहते हैं, जिनके अथक परिश्रम के द्वारा यह शिक्षण-संस्था बहुत वर्षो से सराहनीय कार्य करती आ रही है।

वर्धा का महिलाश्रम राष्ट्रपिता महात्मा गाधी, आचार्य विनोबा और श्रद्धेय जमनालालजी बजाज की प्रेरणा से ही प्रारम्भ हुआ था तथा उन्हीके आशीर्वाद व मार्गदर्शन से वह विकसित होता रहा है। हमें पूरी उम्मीद है कि भविष्य में भी वह और भी लगन व उत्साह से राष्ट्रीय शिक्षण का महत्वपूर्ण कार्य करता रहेगा।

महात्मा गांधी :

नई तालीम का मक़सद

[हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के आठवें वर्ष के प्रारम्भ में राष्ट्रपिता गांधीजी ने पटना में ता० २२-४-४७ को जो विचार प्रकट किये थे, उन्हें यहाँ पुनः उद्धृत किया जा रहा है। —सम्पादक]

हिन्दुस्तानी तालीमी संघ ने अपना आठवाँ साल शुरू किया है। संघ जिस ढंग की तालीम देता है, उसे तालीम का नया तरीका कहा जाता है, क्योंकि न तो वह बाहर से लाया गया है, और न लादा गया है। यह एक ऐसा तरीका है, जिसका ज्यादातर गाँवों से बने हुए, हिन्दुस्तानी वातावरण से मेल बैठता है। मनुष्य जिस शरीर, मन और आत्मा का बना हुआ है, उनके बीच समतोल कायम करने में उसका विश्वास है। तालीम के पच्छिमी ढंग से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, जो खासकर फौजी होता है और जिसमें आत्मा को दबाकर शरीर और मन की ही खास फिक्र की जाती है और उन्हें आगे बढ़ाया जाता है। दस्तकारियों के जरिए तालीम देकर ही शरीर, मन और आत्मा का उम्दा समतोल कायम किया जा सकता है। नई तालीम की दूसरी खूबी यह है कि वह पूरी तरह अपने पैरों पर खड़ी होने वाली है। इसलिये वह तालीम के खर्च के वास्ते लाखों रुपयों की माँग नहीं करती।

नई तालीम शुरू तो ७ वर्ष की उम्र से होती है और १४ वर्ष तक दी जाती है, लेकिन सात वर्ष तक बच्चा क्या करे? असल में तो बच्चा जब माँ के पेट में होता है, तभी माँ को चाहिये कि बच्चे को तालीम देना शुरू कर दे। यह मैं निजी बात नहीं करता। सारी दुनिया का तजुरबा है कि बच्चा पेट में हो, तब माँ के कामों और शिक्षा का बच्चा होने पर बहुत असर पड़ता है। इसका मतलब

यह हुआ कि बच्चा जब पेट में हो, तब से ७ वर्ष तक माँ बच्चे को तालीम दे सकती है। उसके बाद १४ वर्ष तक बुनियादी तालीम दी जाती है। नई तालीम की तो—जो बूढे हो गये है, उनको हर मर्द, औरत और मजदूर—सबको, जरूरत है। लेकिन अगर हम सब को तालीम देना चाहें, तो उसके लिये करोडो रुपये कहाँ से लायें? हिन्दुस्तान बहुत गरीब मुल्क है। और अगर हम चाहे कि यहाँ के ४० करोड आदमियों में से सबको पढना-लिखना सिखा दें, तो इतना इन्तजाम कहाँ से होगा? इसलिये नई तालीम का प्रचार जरुरी है, जो स्वावलम्बी है—अपना खर्च खुद चलानेवाली है।

आज तक जो तालीम दी गई, वह विदेशी थी, इसलिये विदेशी भाषा भी आ गई, क्योंकि अँग्रेज चाहते थे कि उनका काम करने के लिए आदमी मिलें और उनके राज का फैलाव बढ़े। उनको तो क्लर्क चाहिए थे। मैं उनकी जगह होता, तो मैं भी यही करता। मुझे डॉक्टर, इंजिनियर वगैरह की जरूरत होती, तो सब अँग्रेज कहाँ से मिलते? अँग्रेज बिहारवालों को अपनी बात कैसे समझाते? या मद्रास में, जहाँ की भाषा तमिल है, वे उस भाषा मे तालीम कैसे देते? इसलिये उन्होंने अँग्रेजी तालीम के लिये बडे-बडे कॉलेज और युनिवर्सिटियाँ खोलीं और डाक्टर, इंजिनियर बनाने लगे। लेकिन वे सब दरअसल अच्छे गुलाम बनाये जाते थे। हम आज भी उसी जमीन में हैं। सिर्फ ख्याल करने से जमाना नही बदलता। आज भी हमें अँग्रेजी भाषा का मोह रहता है। कांग्रेस के दफ्तरो तक में अँग्रेजी में काम होता है। मेरे पास जो नोटिसें आती है, वे भी अँग्रेजी में होती हैं। कुछ ऐसा सिलसिला बन गया है कि हम जल्दी अँग्रेजी से नहीं छूट सकते। इसलिये बुनियादी तालीम बनाई गई। यह जिन्दा और सच्ची तालीम है। इस में अँग्रेजी को जगह नही दी गई। बुनियादी तालीम पानेवाला लडका घर जाकर खुद अपने बाप से खुशी से बताता है कि उसने क्या सीखा। लेकिन मैं अँग्रेजी स्कूल में पढ़ूँ और मेरे देहाती बाप पूछे कि क्या पढा, तो मैं इग्लैंड की और अँग्रेजों की

परन्तु दिन भर में थोडा समय बोलूंगा। कब बोलूंगा और कितना बोलूंगा– यह अभी मैं जाहिर नहीं करता। दिन भर में आधा घण्टा समाज के लिए दे सकता हूँ और आधा घण्टा ब्रह्म विद्या मन्दिर के लिए दे सकता हूँ। रोज आधा घण्टा देना ठीक रहेगा या हफ्ते में एक घण्टा या आधा घंटा देना ठीक रहेगा—वह बाद में सोचूंगा।

अभी मैं बोलूंगा तो किस विषय पर बोलूंगा? कई दफा जाहिर हो चुका है कि बाबा के मुख्य दो विचार है—विज्ञान और अध्यात्म, (सायन्स एंड स्पिरिच्युअेलिटी)। आप सब लोग जानते हैं कि इस विचार का प्रचार पण्डित नेहरू ने जहाँ-तहाँ किया और बाबा का नाम भी उसके साथ उन्होंने जोड दिया। अभी का जमाना विज्ञान और अध्यात्म का है। विज्ञान और अध्यात्म के मार्गदर्शन में अगर दुनिया चलेगी, तो दुनिया में शान्ति रहेगी। ये दो मेरे बोलने के विषय।

अध्यात्म की व्याख्या क्या है? शंकराचार्य के शब्दों में, जो उन्होंने आम जनता के आचरण के लिए श्लोक में कही है, वह मैं आपके सामने रखूंगा। "गेयं गीता नामसहस्त्रम्"—गीता और विष्णु-सहस्त्रनाम गाया करो। अभी हमने विष्णु-सहस्त्रनाम का पाठ आपके सामने किया ही है। तो गीता और विष्णु-सहस्त्रनाम आम जनता के लिए उपदेश। "ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्त्रम्" भगवान के रूप का चित्त में ध्यान करो। "नेयं सज्जनसंगे चित्तम्" सज्जन संगति में चित्त को रखो और आखिर में वहा चौथा आदेश—"देयं दीनजनायच वित्तं" दीनों की, दुखियों की मदद करो। दीन-दुखियों को मदद करना यह अध्यात्म माना शंकराचार्य ने, रामानुज वगैरह सब आचार्यों ने और साधु-सन्तों ने। सबने यह कहा है कि दीन-दुखियों के दुःख दूर करने का प्रयत्न करना—यह अध्यात्म का अंग है। मेरे प्यारे भाइयो, इसलिए मौन के बाद जो मेरी वाणी का उपयोग होगा, वह दीन-दुखियों के दुःख-निवारण के काम के लिए भी हो सकता है, क्योंकि वह भी अध्यात्म है।

महा मा गाधी ने हमारे सामने जो कार्यक्रम रखा था, वह सारा दीन-दु खियो की सेवा प्रमपूर्वक करने का काम है। इसमें सघर्ष का कोई सम्बन्ध नही रहा है। क्या-क्या काम उन्होने हमको सौंपा ? आप सब लोग उनका कार्यक्रम जानते है। खादी-ग्रामोद्योग, गोरक्षा शराबबन्दी, हरिजन-सेवा, गिरिजन-सेवा कुष्ट रोगियोकी सेवा य खास कार्यक्रम, खुद भी कुष्ठ-रोगियो की सेवा की अपने हाथो से और प्राकृतिक उपचार। और भी कुछ काम उन्होन हम लोगो को दिया। वह सबका सब दीनो के दु ख-निवारण का काम ह। इसलिए उसकी गिनती अध्यात्म में होती है। इन सब कामोम एक काम कुष्ठ-रोगियो की सेवा का उन्होने दिया। आप लोग जानत हैं कि यहाँ वर्धा जिले में कुष्ठ-रोगियो के लिए एक आश्रम है। फिर भी मुझे बताया गया कि वर्धा जिले के गाँव गाँव में कुष्ठ रोग बढ़ रहा है। इसका अर्थ क्या हुआ ? हमको गाँव गाँव जाना होगा और गाँववालो की सभा करके सबको समझाना होगा। तब यह काम पूर्ण होगा और यह हमको गाधीजी के बताए हुए सब कामो क साथ करना होगा। मेरा ख्याल है महाराष्ट्र सरकार को गाँधीजी का दिया हुआ जो रचनात्मक काम है, कम-से-कम वर्धा जिले में उसको पूरा करना चाहिए। जैसा उन्होन किया—वर्धा जिल म शराबबन्दी एकदम जाहिर कर दी वर्धा जिले क लिए। सन्ट्रल गवर्नमेन्ट ने इस कामके लिए बारह पाइन्ट का कार्य-क्रम जाहिर किया। तो वह काम हमको करना है कुल भारत में। परन्तु वर्धा जिले में उन्होन जो कर दिया, वस ही कुष्ठ-रोगियो क बारे में वे काम करें वर्धा जिल में। उस काम का नमूना पेश किया जाए—यह मै क्यो कह रहा हूँ ? इसलिए कि इस मध्य युग में जो सत्पुरुष हो गए शकरराव चव्हाण के कार्य क्षेत्र में—ज्ञानदव, नामदेव इत्यादि-इत्यादि, वैसे ही इस जमाने में, जो प्रसिद्ध पुरुष हो गए भारत में, उनमें से कुछ यहाँ रहते थे और वह देखने के लिए सब जगहो से लोग यहाँ आत है, खास करके सेवाग्राम के कारण। कौन-कौन यहाँ रह चुक है ? मुख्य-मुख्य नाम मैं लेता हूँ —कस्तूरबा और बापू, महादेवभाई, किशोरलालभाई, कुमारप्पा भारतन, कुमारप्पा, जे. सी.,

बातें बताऊँगा। और अगर वे कहें कि अपने घर का हाल बताओ, बिहार के बारे में बताओ, तो मैं कुछ नहीं बता सकूँगा।

आज हमारी सालाना आमदनी ६० या ६२ रुपये है। कुछ लोगों की आमदनी ६० हजार है। इसके मानी यह हुए कि ४० करोड में से कितने ही भूखे रहते होंगे, जिनकी कुछ भी आमदनी न होगी। ऐसी हालत में हम सब को कैसे पढायें? आज हम भिखारी बने हैं। हमारे बच्चों को घी, दूध, कपडा न मिले, तो कैसे काम चलेगा? हमें सच्ची तालीम लेकर अपनी आमदनी को बढ़ाना है।

अब तालीम को स्वाश्रयी बनाना है। उसे अपने सहारे चलनेवाली बनाना है। नहीं तो आप भी स्वाश्रयी नहीं बन सकते। नई तालीम में यह खूबी मौजूद है। नई तालीम का मकसद लडकों को गुलाम बनाना नहीं है, न नेता बनाना है। वह सब को हिन्दुस्तानी बनाती है।

सबको खाना मिलना चाहिए। खाने के यह मानी नहीं कि सत्तू और नमक मिल जाय, बल्कि हमें खालिस घी, दूध और पहनने को कपडा मिलना चाहिये। आज तो यह सब सपना मालूम होता है। लेकिन यह सपना ही न होगा। नई तालीम सब को बैरिस्टर, इंजिनियर या डाक्टर नहीं बनाती। वह सब को इन्सान बनाना चाहती है और हमें इन्सान ही बनाना है।

●

जिन्होंने अंग्रेजी पढ़ ली है, उन्हें सोचना चाहिए कि अपने बच्चों को पहले सदाचार और अपनी भाषा सिखायें। जब वे प्रौढ़ हो जायें, तब चाहें तो अंग्रेजी पढ सकते हैं। इसमें भी हमें सोचना होगा कि हम अंग्रेजी के जरिये क्या सीखें क्या न सीखें।

(गांधी-वाणी से)

ऋषि विनोबा :

शासन और अनुशासन

[एक वर्ष के मौन की समाप्ति पर ऋषि विनोबा का तारीख २५ दिसम्बर को दिए गए भाषण के अंश]

यहाँ पर भूदान रजत जयन्ती के निमित्त आप सब आए हुए हैं। मैंने कई दफा कहा था कि भूदान ग्रामदान इत्यादि जो काम है, वह पंचशक्ति के सहयोग से होगा। यह मैंने कई दफा समझाया है। हमारी पद-यात्रा में बी डी ओ वगैरह सब लोग शामिल होते थे। तो मैंने कहा था कि बी डी ओ यानी—भूदान डेव्हलपमेण्ट ऑफिसर और एस डी ओ यानी सर्वोदय डेव्हलपमेण्ट ऑफिसर। मेरी यह व्याख्या उन लोगों ने मान्य की और बहुत श्रम किया भूदान प्राप्ति के लिए।

आज आप सब लोगों को आनन्द हुआ है और मुझे भी आनन्द हुआ है। आपको आनन्द इसलिए हो रहा है कि मेरा मौन आज समाप्त हो रहा है और मुझे आनन्द इसलिए हो रहा है कि 'सहस्र शीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपाद' समाजरूपी नारायण मेरे सामने उपस्थित है। समाज नारायण का यह दर्शन मेरी पद-यात्रा में मुझे कई दफा हुआ है। परन्तु इस मौन काल में ऐसा दर्शन मुझे हुआ नहीं था। वह आज हो रहा है। इसलिए मेरे हृदय में आनन्द है। जहाँ तक मौन का ताल्लुक है, मौन में जो एक शक्ति होती है, उसका स्पर्श सब को हो सकता है। वाणी में वह शक्ति नहीं है कि चैत्य भावनाएँ सारी वह प्रगट करे। यह वाणी की दुर्बलता है। चित्त से वाणी दुर्बल है और क्रिया उससे और दुर्बल है। इसलिए भावना व्यक्त करने के लिए वाणी सर्वोत्तम साधन नहीं है। फिर भी मैं आज से बोलने वाला हूँ। यह नहीं कि बोलने वाला हूँ तो सतत बोलता रहूँगा।

आशादेवी, आयनायकम, धर्मानन्द, कोसम्बी, जमनालालजी, जाजूजी। अब ये ऐसे पुरुष हो गए हैं कि इन्होंने सारे भारत की सेवा की है और सारे भारत में मशहूर हुए हैं। तो कुष्ठ-रोग-निवारण के बारेमें और ऐसे ही जो काम बापू ने बताये हैं, उन सब कामोंका आदर्श नमूना यहाँ पूरा किया जाय--यह मेरी खास सूचना है।

इसके आगे मैं चार शब्द कहूँगा अनुशासन के बारे में और फिर समाप्त करूँगा। यह 'अनुशासन-पर्व' शब्द महाभारत का है, परन्तु इसके पहले वह उपनिषद्में आया है। प्राचीन काल में आचार्यों के पास जाकर १२ साल विद्याध्ययन करने की प्रथा थी। तो उसके विषय में जिक्र आया है, वह तैत्तीरेय उपनिषद् में है। यह प्राचीन काल का रिवाज था कि बारह साल गुरू के घर रहना। उसके अनुसार राम और कृष्ण भी गए थे। राम वसिष्ठ के आश्रम में और कृष्ण सादीपनी के पास गए। कब गये कृष्ण? जब सब दुनिया में वे मशहूर हो गए थे उसके बाद, क्योंकि गुरु के पास जाना ही चाहिए, इसलिए गए। १२ साल तक ब्रह्मचर्य का पालन करने के बाद जो गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहते थे, वे गृहस्थाश्रम में आते थे और जो हमेशा के लिए ब्रह्मचर्याश्रम में रहना चाहते थे, वे ब्रह्मचर्य का जीवन बिताते थे। तो आचार्य उनको १२ साल के बाद अन्तिम दिन उपदेश देते थे। १२ सालके बाद---' सत्यं वद, धर्मं चर' इत्यादि। उसके अन्त में उपनिषद् कह रहा है--"एतद् अनुशासनम्" एवं उपासितव्य यह अनुशासन है। इसकी उपासना करो। तो आचार्यो का होता है अनुशासन और सत्तावालों का होता है शासन। शासन और अनुशासन में जो फरक है, वह हमको अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। मैं कोशिश करूँगा थोडे में समझाने की। अगर शासन के मार्गदर्शन में दुनिया रहेगी, तो दुनियामें कभी भी समाधान रहने वाला नहीं है। क्या होगा शासन के मार्गदर्शन में? बँगलादेश की समस्या सुलझ गई, तय हो गया, लेकिन फिर एक बार उलझ गई। सुलझ गया, उलझ गया--यह दुनिया भर में चल रहा है। क्या होना है सत्ता के शासन में? सत्ता-प्रमुखों का कतल होता है, मर्डर होता है। किसीने देश के मुख्य मन्त्री को मार डाला--

ऐसी खबरे अक्सर अखबारों में हम देखते हैं और यह सारा 'ए' से 'झेड' तक सब राष्ट्रों में चलता है। अफगानिस्तान में चलता है और झाविया में चलता है। मेरा ख्याल है तीन सौ-साढे तीन सौ राष्ट्र होंगे। उनमे क्या होता है? उनके गुट होते हैं। एक गुट के खिलाफ दूसरे गुट का उपयोग करते है। कभी इस गुट को समर्थन देते हैं। इस तरह दुनिया भर में सब दूर असतोष, मारकाट चलता है। ये बडी शक्तियाँ क्या करती है? सब जगह थोडा थोडा असतोष रहे—ऐसी कोशिश करती हैं। मान लीजिए—हिन्दुस्तान मे शक्ति है तो कोशिश करेंगे वे बडे राष्ट्र कि पाकिस्तान को भी शक्ति मिल जाय। उनको उत्तम हथियार दगे, जिससे बैलेन्स ऑफ पावर हो जाएगा, तो ऐसे बैलेन्स ऑफ पावर से दुनिया त्रस्त हो गई है। ये लोग बैलेन्स ऑफ इमबैलेन्स भी करना चाहते है। एक जगह कितना दुख है, उतना दुख दूसरी बाजू भी होना चाहिए, तब दुनिया में शान्ति रहेगी—ऐसा वे मानते है। एक बाजू जितना सुख हो, उतना दूसरी बाजू सुख हो— यह तो मामूली बात है, परन्तु एक बाजू जितनी विषमता और दुख है, उतनी विषमता और उतना दुख दूसरी बाजू भी पैदा होना चाहिए। तो इस तरह बैलेन्स ऑफ इमबैलेन्स तक वे पहुँच गये है। तो शासन के आदेश से चलने वाले की ऐसी स्थिति है। उसके बदले अगर आचार्यों के अनुशासन में दुनिया चलेगी, तो दुनिया में शान्ति रहेगी। आचार्य कैसे होते है? बाबा ने वर्णन किया है। गुरु नानक की भाषा में-निर्भय, निष्पक्ष, जिनके मन में क्षोभ कभी नही होता। कभी उपवास करना, दबाव डालना—इस तरह का काम वे कभी नही करते। हर बात में वे शान्ति से सोचते है और जितना विचार सर्वसम्मत होता है, उतना लोगोके सामने रखते है। तो उनके मार्गदर्शन में अगर लोग चलेंगे, तो लोगों का भला होगा और दुनिया में शान्ति रहेगी। यह अनुशासन पर्व है। ऐसा आचार्यों का अनुशासन-पर्व दुनिया में चलेगा, तो दुनिया में शान्ति रहेगी। लेकिन दुनिया की बात छोड दीजिए। भारत के सम्बन्ध में ही सोचें। भारत एक बडा देश है। १५ भाषाओं का देश है। इसलिए भारत में

आचार्यों का अनुशासन अगर लोगों को मिलता रहे और उस अनु-शासन के मार्गदर्शन में प्रजा अगर चलेगी, तो प्रजा को सुख होगा इसमें कोई शका नहीं। और आचार्य जो मार्गदर्शन देंगे, उसका विरोध अगर शासन करेगा, तो उसके सामने सत्याग्रह करने का प्रश्न आएगा। लेकिन बाबा को पूरा विश्वास है कि यहाँ का शासन ऐसा कोई भी काम नहीं करेगा, जो आचार्यों के अनुशासन के खिलाफ होगा। इसलिए सत्याग्रह का मौका भारत में आने वाला नहीं है।

इस तरह अनुशासन-पर्व का अर्थ आपके सामने थोड़े में मैंने रखा। सबको प्रणाम। जय जगत्।

आज तक सारी दुनिया के मानवीय प्रयत्नों में पुरुषों का प्राधान्य रहा। जब तक राष्ट्रों के बीच, धर्मों के बीच और सस्कृतियों के बीच ईर्ष्या, मत्सर काम करते थे, तब तक सघर्ष झगडा और युद्ध की मदत ली जाती थी। झगड़े में और लडाइयों में पुरुषों का प्राधान्य रहे, यह स्वाभाविक था। अब भौतिक विज्ञान इतना बढा है कि सघर्ष, झगडे और युद्ध चलाये गये तो मानव जाति का नाश ही हो जायगा। अब जहाँ मतभेद है, कार्यपद्धति भिन्न है, वहाँ दोनों तरफ के अच्छे तत्वों को एकत्र लाकर, उनमें से सर्व कल्याणकारी समन्वय का रास्ता Synthesis का इलाज ढूंढ निकाले बिना चारा ही नहीं है। समन्वय की यह शुभवृत्ति स्त्री-स्वभाव में सर्वत्र है ही। जब एक लडकी शादी करती है, तब पिता के घर के सस्कार और पति के घर के सस्कार दोनों के प्रति मनमें आदर रखकर, दोनों के अच्छे तत्वों का समन्वय करने की Synthesis खूबी स्त्री-स्वभाव में ही है।

अब इसी स्वभावके बलपर समन्वय की स्थापना के लिए स्त्री जाति को मानवता का नेतृत्व करना है।

—काका कालेलकर

इंदिरा गांधी :

जीवन-केन्द्रित शिक्षा :

[नई दिल्ली में तारीख २७-११-७५ को केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मण्डल की ३८ वी बैठक का उद्घाटन करते समय प्रधान मन्त्री श्रीमती इंदिरा गाधी ने शिक्षा को जीवन-केन्द्रित तथा प्रेरणादायी बनाने के सम्बन्ध में मननीय विचार प्रकट किये। उनके भाषण के महत्वपूर्ण अश यहाँ दिये जा रहे हैं। —सम्पादक]

कई समाज-सुधारकों ने शिक्षा को हमारी आवश्यकताओं के अधिक अनुरूप बनाने के लिये काफी काम किया है। हमें अपनी शिक्षा-पद्धति को परिपक्व बनाने के लिए पश्चिमी देशों में किये गये प्रयोगों को अपनाना चाहिए, किन्तु हमारी सस्कृति और मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर ही ऐसा किया जाना उचित होगा।

आदिवासियों की सस्कृति और जीवन-पद्धति पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये, जिससे उनमें राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा से अलगाव की प्रवृत्ति मिटायी जा सके।

विद्यालयों में भवन और खेल के मैदान आदि से अधिक सुयोग्य शिक्षक और अनुशासित छात्रों पर जोर दिया जाना वांछनीय है।

वित्तीय साधनों की कमी के कारण शिक्षा की प्रगति किसी भी मूल्य पर रोकी नहीं जा सकती। धन का अभाव सभी क्षेत्रों में है। किसी भी मत्रालय अथवा सस्था के पास अधिक धन नहीं है। अत हम अभावों के बीच अपने लक्ष्यों के अनुसार बढ़ने की शिक्षा लेनी चाहिये और उसके लिये निरन्तर उपाय ढूंढते रहना चाहिए। धन के अभाव के कारण हमारी प्रगति कदापि नहीं रुकनी चाहिये। अनावश्यक मदों पर कटौती की काफी गुंजाइश रहती है।

विद्यालयों के लिये भव्य मकान की आवश्यकता नहीं है। विद्यार्थियों को खुले वातावरण में पढ़ाया जा सकता है। गुरुदेव टैगोर की 'विश्व भारती' इसका सुन्दर उदाहरण है। भवन की आवश्यकता

सिर्फ वर्षा से रक्षा के लिए होती है। परन्तु वर्षाऋतु देश के कई हिस्सों में लम्बी नहीं होती। अत पेडो की छाया मे, चबूतरो और दालानोंमें शिक्षा, विशेषकर प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध किया जा सकता है। प्रयोगशालाओ और कर्मशालाओ के लिये भवन की आवश्यकता होती है, परन्तु उसके लिये भी निर्माण कार्य स्थानीय साधनो से हो सकता है। सीमेंट व इस्पात आदि के अभाव के कारण ऐसे भवनो का निर्माण रुक नही सकता।

शिक्षको को अच्छी तरह से प्रशिक्षित किया जाना चाहिये तथा उन्हें पढाने के लिये पर्याप्त उपकरण सुलभ किये जाने चाहिये।

छात्रो को केवल अक्षर अथवा अकगणित का ज्ञान ही नही दिया जाना चाहिय, उन्हे अपने राष्ट्र और अपने क्षेत्रकी समस्याओ से भी अवगत कराया जाना चाहिये, जिससे वे जागरूक हो सकें। छात्रो को किताबी ज्ञान देने के बजाय उनकी मनोवृत्ति में परिवर्तन लाने की चेष्टा की जानी चाहिये, ताकि वे जाति पाँति, धर्म, भाषा, क्षेत्र और रग आदि के कारण भेदभाव न बरतें। भारतकी समन्वयवादी सस्कृति से छात्रो का प्रेम बना रहे--- इस बात की भी चेष्टा की जानी चाहिये।

आदिवासियो और पहाडो में रहने वाले लोगो को राष्ट्रीय जीवन-धारा में शामिल करने की दृष्टि से उनके बच्चो को शिक्षालयो में लाने के लिये सगठित प्रयास किया जाना चाहिये।

शिक्षा को रोजगारमूलक बनाए जाने की माँग सही है। परन्तु शिक्षा सिर्फ रोजगारमूलक नही हो सकती, उसे जीवन-केंद्रित होना चाहिए।

पश्चिमी शिक्षा पद्धति के प्रति बहुत अनुराग अच्छी बात नही है। इससे देश को अधिक लाभ नही होगा। पश्चिमी देशो के सिद्धान्तो को वही तक लागू किया जाना चाहिये, जहाँ तक वे भारत के लिये सगत है। यह अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है कि छात्रो को अपने देश की समस्याओ के बारे में अवगत नही कराया जाता। उन्हें भारतीय स्वाधीनता की लडाई और उसके आदर्शों के प्रति अवगत कराया जाना चाहिये।

श्रीमन्नारायण :

हिरण्मयेन पात्रेण :

आजकल भारत तथा अन्य विकासशील देशो में भ्रष्टाचार इस हद तक बढ गया है कि श्रद्धेय विनोबा विनोद मे उसे 'शिष्टाचार' कहने लगे हैं। रिश्वतखोरी, चोरबाजारी मिलावट व कर चोरी करने में व्यापारियो, उद्योगपतियो, सरकारी नौकरो व सामान्य नागरिको को किसी प्रकार की हया-शर्म नही रही है। इन सामाजिक व आर्थिक कुरीतियो को राजनीतिज्ञो से भी काफी बढावा मिल रहा है क्योकि चुनावो के लिये वर्तमान कानून के अनुसार काला धन ही एकत्र किया जा सकता है। कम्पनियाँ खुले तौर पर चेक द्वारा राजनीतिक-दलो को चन्दा नही दे सकती। सभी प्रान्तो में हजारो 'बोगस' फर्मों को पकडा जा रहा है, जो शासन से विभिन्न प्रकार का महँगा कच्चा माल कन्ट्रोल-भाव मे प्राप्त करती रही हैं और उसे काले बाजार में बेचकर बेहद मुनाफा कमाती हैं। इस मुनाफे का कुछ अश राजनीतिज्ञो के पास चला जाता है और इस तरह आर्थिक जुर्म करने वालो को समुचित कानूनी सुरक्षा प्रदान कर दी जाती है। इन दिनो शासन की ओर से कुछ सख्ती बरती जा रही है—यह अच्छा है। आशा है यह कडा रुख जारी रहेगा।

लेकिन धन के पीछे यह पागलपन क्यो? जो गरीब हैं और अपने परिवार का भरण-पोषण बडी कठिनाई से कर पाते हैं, उनकी 'बेईमानी' तो कुछ हद तक समझ में भी आ सकती है, किन्तु अमीर-वर्ग का भ्रष्टाचार तो एक तरह की बीमारी ही समझना होगा। हम अनुभव से कह सकते है कि गरीबो का दिल अक्सर उदार होता है। वे अपना कर्ज चुका देना पावन कर्तव्य समझते है। लेकिन भगवान् की कुछ अजीब लीला है कि जो व्यक्ति जितना अधिक अमीर होता है, उसका

हृदय उतना ही तग व छोटा हो जाता है हाँ कुछ अपवादो को छोडकर। धनी लोग इस तरह व्यवहार करते हैं, मानो मृत्यु के बाद वे अपनी सारी धन-दौलत बटोरकर परलोक में ले जाने वाले हैं। अगर यह धन अपने बाल-बच्चो के लिये जमा करना है तो भी वह बेमाने ही है। यदि लडका सपूत है तो उसे पिता के द्रव्य की जरूरत नही। वह स्वय पुरुषार्थ द्वारा कमाई करना पसन्द करेगा। अगर लडका कपूत है तो फिर उसके लिये कितना ही धन छोड जाइये, उसे बर्बाद करने व उडा खाने में अधिक समय न लगेगा। दुनिया का यह आम तजुर्बा है न!

* * *

ईशोपनिषद के ऋषि ने विश्व पोषक प्रभो से एक मार्मिक प्रार्थना की थी —

'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहित मखम
ततत्व पूषन अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।'

अर्थात सुवर्णमय ढक्कन ने सत्य का मुख ढक लिया है। जगत का पोषण करनेवाले भगवान! मुझे सत्य के दर्शन हो सकें, इसलिये तुम यह सुनहरा ढक्कन हटाकर सारे प्रलोभन दूर करो!

यह सही है कि सत्य की खोज में स्वर्ण का लोभ बडी कठिनाइयाँ उपस्थित करता है। "काचन को काष्ठवत समझो' — यह उपदेश देना तो आसान है पर उस पर अमल करना टेढी खीर है। महात्मा गाँधी ने आत्मकथा को 'सत्य की खोज की कहानी' कहा है। उसी में लिखा है कि एक बार उन्होने लालचवश अपने किसी रिश्तेदार की बाँह के गहने में से थोडा सोना चुरा लिया था। लेकिन दिल ने गवाही न दी और कुछ समय बाद उन्होने अपने पिताजी को चिटठी लिखकर चोरी कबूल कर ली। पिता पुत्र के आँसुओं ने वह पाप धो डाला।

दक्षिण अफ्रीका से वापिस आते समय भी गाँधीजी के जीवन में एक महत्वपूर्ण घटना घटी। वहाँ की जनता ने अपनी कृतज्ञता प्रगट करने के हेतु बापू को बहुत-सी सोने चाँदी की घडियाँ व कस्तूरबा और बच्चों के लिये गहने भेंट में दिये। गाँधी जी को उस रात नींद नही आई। वे सोचते रहे कि सार्वजनिक सेवा के उपलक्ष्य में सोने की कीमती वस्तुयें

स्वीकार करना कहाँ तक उचित होगा ? अन्त में उन्होने निश्चय किया कि इन घडियो, गहनो आदि का एक पब्लिक ट्रस्ट बना दिया जाय, जिसके द्वारा समाज की सेवा जारी रहे। इसके लिये बच्चो को समझाना और उनकी स्वीकृति प्राप्त कर लेना आसान था, लेकिन बा ने दलील दी — "इन गहनो को मै न पहनूं, किन्तु बहुए क्या पहनगी ? ' गाँधीजी ने उत्तर दिया —"जब हमारे बच्चे बडी उम्र मे शादी करगे, तब व कमाकर अपना घर सम्हालेंगे। हम अभी से चिन्ता क्यो कर ? " बा ने कई और दलील पेश की, लेकिन बापू अडिग रहे। आखिर, बा की भी रजामदी मिल गई।

* * *

महाभारत म भी एक बडी मर्म भरी कथा है। कुरुक्षत्र का युद्ध समाप्त होने के बाद युधिष्ठिर हस्तिनापुर की राजगद्दी पर आसीन हुए और उन्होने अश्वमेध महायज्ञ आयोजित किया। वह बडी धूमधाम स सम्पन्न हुआ। बहुत-से ब्राह्मणो व दीन-दरिद्रो को मनमाना दान दिया जा रहा था। इतन म अचानक एक बडा-सा नवला यज्ञशाला के बीच कही से आया और राख में लोटने लगा। उसका आधा शरीर सुनहरा था। उसने राजा-महाराजाओ व विद्वान ब्राह्मणो से निडर होकर कहा — आप लोगो न कोई बडा यज्ञ सफल कर लिया है—ऐसा गर्व न कर। इसके पहल कुरुक्षत्र म ही एक महान यज्ञ हो चुका है। एक गरीब ब्राह्मण ने व उसकी स्त्री, पुत्र व बहू ने अपने-अपने हिस्से का केवल एक सेर आटा भूख अतिथि को दान दिया था। जब मैं उस भूमि पर गिरे थोडे-स आट पर लोटा, तो मेरा आधा अग सुनहरा हो गया। लेकिन आपक इस अश्वमेध महायज्ञ की राख में लोटकर भी मेरा बचा हुआ आधा शरीर सोने का न हो सका।"

दर असल, असली कीमत भावना व त्याग की है, सोने चाँदी व धन की नही।

* * *

मुहम्मद पैगम्बर का जीवन बडा सादा व सरल था। वे अपने सुख व आराम के लिये कोई साधन न जुटाते थे। किन्तु एक दफा अपने

बहुत-से कार्योंमें से किसी एक को ठीक तौर से चलाने के लिये धन की आवश्यकता पडी। उन्होने अपने शिष्यो से माँग की। कुछ ने, जो कुछ उनके पास था, उसका आधा भाग दिया और कुछ ने तीसरा। अबू बकर ने अपना सारा धन उन्हें दे दिया। अन्त में एक गरीब स्त्री आई। उसने तीन खजूर और गेहूँ की एक रोटी भेंट मे दी। उसके पास बस यही था। यह देखकर कई लोग हँस पडे। पर पैगम्बर ने उन्हें अपना एक सपना सुनाया, जिसमे कुछ स्वर्ग दूत एक तराजू लाये थे। उन्होने एक पलडे में उन सबकी भेटे रखी और दूसरे में केवल उस गरीब स्त्री की तीन खजूर और रोटी। तराजू स्थिर रही क्योकि यह पलडा भी उतना ही भारी निकला, जितना पहला।

किसी गिरजाघर में इसी प्रकार ईसु-ख्रीस्त के डब्बे मे गरीब औरत ने केवल एक पैसा डाल दिया था और मसीहा ने सबसे ज्यादा तारीफ उसी स्त्री की की थी।

* * *

इसका यह अर्थ नही कि दुनिया मे धन की कोई कीमत ही नही है। हम सभी को अपने परिवार या सस्था के लिये कुछ धन-सम्पत्ति जुटानी पडती है। लेकिन हम सदा याद रखना होगा कि वित्त-सग्रह केवल एक साधन है, साध्य नही। जिस कार्य के लिये जितने धन की बिलकुल जरूरत हो, उतना ही एकत्र किया जाय, आवश्यकतासे अधिक नही। गांधीजी वर्धा व सेवाग्राम की रचनात्मक सस्थाओ के लिये सिर्फ एक साल का बजट की रकम देते थे। वे हमेशा कहते थे — "कोई भी अच्छी सस्था धन के अभाव मे नही, सेवाभावी कार्यकर्ताओ के अभाव में बन्द होती है। यदि सस्था का कार्य अच्छा है, तो जनता उसके लिये आवश्यक राशि जरूर देती रहेगी। अगर लोग रुपया न दें, तो फिर उस सस्था को बन्द कर देना ही उचित होगा।"

हम रोजमर्रा देखते है कि जिन सस्थाओ के पास आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति जमा हो जाती है, वहाँ आपसी झगडे खडे हो जाते है और वह सगठन टूट जाता है। इसीलिये बापू अपरिग्रह व्रत पर इतना जोर देते थे। यह व्रत व्यक्तियो व सस्थाओ—दोनो के लिये वाछनीय है।

अपरिग्रह का आदर्श नैतिक व आध्यात्मिक दृष्टिसे तो उचित है ही, दुनियाबी नजरिये से भी सही है।

* * *

अब जमाना आ गया है कि सार्वजनिक संस्थाओं को भी स्वावलम्बी बनाने की जरूरत है सिर्फ सरकारी ग्रान्टो पर इन्हें संचालित करते रहना दिन दिन कठिन हो रहा है। स्वराज्य मिलने के बाद वर्धा की कुछ रचनात्मक संस्थाओ न बापू से पूछा था — "अब तो सरकार हमारी है, उसकी ग्रान्ट लने में क्या हर्ज है?" गाधीजी ने गम्भीरता-पूर्वक कहा — "हाँ, अब सरकार अपनी ही है, लकिन हमारी संस्थाओं को सरकारी धन से दूर रहना है। उन्हे स्वाश्रयी बनने की पूरी कोशिश करनी होगी।"

इस विचार को समझाते हुए उन्होने सुझाया —"संस्थाओं के पास कुछ जमीन होनी चाहिय, जिस पर महनत कर जरूरी अन्न, फल, तरकारी आदि उत्पन्न किये जांय। वस्त्र स्वावलम्बन के लिये चर्खा तो है ही। दूसरे ग्रामोद्योग भी चलाने चाहिय और शुद्ध दूध के लिये गोशाला। इस तरह हमारी संस्थाय अगर स्वावलम्बी बनेंगी, तो भविष्य में सुचारु रूप से चलेंगी, शासन पर निर्भर रहेंगी, तो बिखर जावेंगी।"

बापू की दृष्टि कितनी दूरदर्शी थी! आज हम देख रहे हैं कि बहुत-से अच्छे सगठन सरकारी धन के बोझ से फीके और तेजहीन बन गये हैं। पडित जवाहरलालजी ने भी एक बार हमे सावधान किया था — "सरकारी हाथ बडा भारी होता है, जिस संस्था पर रख दिया जाता है, वह चकनाचूर हो जाती है!"

हम जानते है कि कई शिक्षण संस्थाय सरकारी ग्रान्टो को लेने के लियें अपने हिसाब किताब में कितनी चालाकियाँ करने लगी हैं। बहुत-से स्कूल और कॉलिज, 'शिक्षण केन्द्र' नहीं, 'दूकानें' बन गये हैं, जहाँ दामनाक व्यापार चलता है। खादी, ग्रामोद्योग, हरिजन-सेवा सम्बधी कई रचनात्मक संस्थाये भी सरकारी योजनाओ के चक्कर में पड गई हैं

यह तथ्य बहुत दुखद है, किन्तु उतना ही सच भी है। सोने के बरतन ने सत्य को किस बेशरमी से ढांक रखा है!

* * *

जो बात सस्थाओ के लिये लागू है, वही व्यक्तियो के लिये भी सावधानी का विषय है। हम देखते है कि देश के अच्छे-अच्छे रचनात्मक कार्यकर्ता सरकारी या सस्थाओ के वित्तीय जाल में फँस गये है और बेहद परेशान है। उन्हे कई प्रकार से अपमानित होना पडता है। किन्तु जो जन-सेवक अपने पैरो पर खडे है, वे सम्मानपूर्वक व शान्ति से रचनात्मक कार्य कर रहे ह। राजनीति में भी यही हाल है। जिसके पास जीवन-निर्वाह का निजी प्रबन्ध नही है, वह नेताओ के सामने तरह-तरह की गर्जों के लिये हाथ पसारता रहता है। रहीम ने ठीक ही लिखा है —

आव गई, आदर गया
नैनन गया सनेह।
रहिमन ये तीनो गये
जवहि कहा–'कछु देहु'॥

मुझे एक वरिष्ठ नेता के बारे में बडी दुखदाई जानकारी मिली है। उन्होने अपने जीवन-काल में ही अपनी सारी सम्पत्ति पुत्रो के नाम कर दी, ताकि उनके स्वर्गवास के बाद बच्चो को किसी तरह की कठिनाई न हो। लेकिन जब वे बीमार पडे, या आर्थिक तगी महसूस हुई, तो परिवार का कोई भी व्यक्ति उनके पास न आया और न कोई मदद दी। स्वर्ण की माया कितनी बलवान व नीचे गिरानेवाली होती है ! वह पिता-पुत्र व भाई-भाई के बीच आकर कितनी निर्दयता से सभी मानवीय मूल्यों का मजाक बनाती है और हँसती है।

* * *

काचन की इस गाथा से किस तरह छुटकारा मिले ? स्पष्ट है कि यह सयम और विवेक द्वारा ही सम्भव हो सकता है। इसी दृष्टि से गाधीजीने 'ट्रस्टीशिप' आदर्श का प्रतिपादन किया था। वे चाहते थे कि धनीवर्ग अपने धन का उपयोग अपने भोग-विलास के लिये नही,

वरन् जनता-जनार्दन के कल्याण के लिये करें। कुछ अमीर लोग आम के वृक्ष जैसे होते हैं, जो थके हुए यात्रियों को शीतल छाया देते हैं और मीठे फल भी, और कुछ खजूर के पेड की तरह होते हैं —

वडा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड खजूर।
पक्षी को छाया नही, फल लागैं अति दूर॥

श्री आदि शकराचार्य रचित 'विवेक-चूडामणि' में ससार की स्वर्णिम माया को जीतने का एक अमोघ अस्त्र बतलाया है, और वह है 'आत्म-दर्शन'। जब तक हम इन्द्रियों को विषय वासना के कुचक्र में जकडे रहते हैं, तब तक यह मृग-तृष्णा हमारा पीछा नहीं छोडती। विवेक द्वारा ही हम काचन मोह से विरक्त होकर सत्य का शोध कर सकते हैं —

'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्येत्यवरूपो विनिश्चय ।
सोऽय नित्यानित्यवस्तुविवेक समुदाहृत ॥

गोधन गजधन बाजिधन
और रतन धन खानि।
जब आवै स तोष धन
सब धन धूरि समान॥

* * *

साई इतना दीजिये
जामें कुटुम्ब समाइ।
मैं भी भूखा न रहूँ
साधु न भूखा जाइ॥

जी. रामचन्द्रन :

साक्षरता और गरीबी

[डा. जी. रामचन्द्रन प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री हैं। महात्मा गान्धी की प्रेरणा से जब 'हिन्दुस्तानी तालीमी संघ' की स्थापना की गई थी, तब श्री जी रामचन्द्रनजी उसके एक सह-मंत्री रहे थे। रचनात्मक कार्यकर्ताओं में उनका विशेष स्थान है। हाल ही में डा. जाकिर हुसेन की स्मृति में जो व्याख्यान-माला दिल्ली में आयोजित की गई, उसके अन्तरगत डा जी. रामचन्द्रन ने 'साक्षरता और गरीबी' विषय पर अपने मननीय विचार प्रकट किये। उनके भाषण का सार यहाँ दिया जा रहा है।]

इस युग का कोई भी ऐसा विषय नहीं है, जिसपर महात्मा गांधी ने गहरा चिन्तन न किया हो, अपने विचार प्रकट न किये हों, जनता का मार्गदर्शन न किया हो।

बात पुरानी है। प्रौढ़ शिक्षा के सम्बन्ध में 'प्रौढ़-शिक्षा समिति' की एक बैठक में गान्धीजी ने अपने मौलिक विचार सामने रखे थे। कार्यकर्ताओं को उन्होंने नई दृष्टि दी थी। इसके बाद उक्त कमेटी ने जो निष्कर्ष निकाले, उनको यहाँ देना उचित होगा।

१ प्रौढ़-शिक्षा का प्रारम्भ या अन्त साक्षरता से ही हो, यह जरूरी न होने पर भी साक्षरता उसका महत्वपूर्ण अंग अवश्य है।

२ जब तक साक्षरता को जन-जीवन के सभी महत्वपूर्ण अंगों को स्पर्श करने वाली सार्वत्रिक प्रौढ़-शिक्षा की पार्श्वभूमि में नहीं रखा जायगा, जब तक साक्षरता की कोई भी योजना न तो सफल होगी और न प्रभावशाली ही।

३ करोड़ो भारतीयों को साक्षर बनाने का काम अपने में अतिशय विकट हिमालय जैसा प्रचड कार्य है। लेकिन सतत साक्षरता बनाये रखना उससे भी अधिक कठिन है। लोगों को साक्षर बनाने का काम, उन्हें साक्षर बनाये रखने के काम से शायद थोड़ा सरल ही है।

सतत् साक्षरता का अर्थ है— कुछ समय के बाद साक्षरता को स्वयं-विकासमान बनाना। सतत् साक्षरता का कार्य बढ़ते हुए प्रवाह जैसा होना चाहिये।

४. निरक्षरता और गरीबी एक-दूसरे के कारण एवं कार्य हैं और इसलिये साक्षरता के किसी भी सफल कार्यक्रम के लिये जनता की गरीबी पर भी ध्यान देना होगा और उसे 'गरीबी हटाओ' की योजनाओं से सम्बद्ध करना होगा। जब तक साक्षरता का कार्यक्रम जीवन को धुरी मानकर नहीं चलेगा, तब तक वह प्रौढ़ों को अपनी तरफ स्वेच्छा से और प्रभावशाली ढंग से आकर्षित नहीं कर पायेगा।

५. करोड़ों के लिए बना ऐसा कार्यक्रम किसी एक केन्द्रीय एजेंसी के जरिये अमल में नहीं लाया जा सकता। उसके लिये विकेन्द्रित संगठनों, संस्थाओं और सेवाभावी प्रतिष्ठानों का एक देश-व्यापी जाल आवश्यक है। जीवन के हर क्षेत्र का सम्पूर्ण शिक्षित समुदाय ऐसे कार्यक्रम में गूंथ दिया जाना चाहिये, चाहे फिर उसके लिये कानून का सहारा ही क्यों न लेना पड़े।

६. चूंकि साक्षर होना हर नागरिक का जन्म-सिद्ध अधिकार है, जनता की काफी बड़ी संख्या को उससे वंचित करना जनतंत्र के प्रति बेवफाई है। राज्य का कर्तव्य है कि वह इस कार्यक्रम के लिये पैसों का इन्तजाम करे, आवश्यकता हो तो राष्ट्रीय कर लगा कर भी।

७. साक्षर व्यक्ति अपनी साक्षरता कैसे बनाए रखते हैं, कैसे प्राप्त ज्ञान का उपयोग गरीबी सहित अन्य समस्याओं के निराकरण में करते हैं— यही साक्षरता की सफलता की कसौटी है। ऐसा परिणाम प्राप्त हुआ है या नहीं— इसकी जाँच-पड़ताल शैक्षणिक एवं लोकप्रिय एजेंसियों द्वारा प्रतिवर्ष की जानी चाहिये। यह भी जरूरी है कि सम्पूर्ण साक्षरता तक पहुँचने की समय-मर्यादा निश्चित कर दी जाय।

भारत सदियों तक गुलाम रहा। विदेशी शासन में शासकों ने इस विषय पर कभी ध्यान नहीं दिया। स्वराज्य-प्राप्ति से पहले भारत में प्रौढ़-शिक्षा की दिशा में कुछ विशेष नहीं किया गया। विदेशी सरकार ने प्रौढ़-शिक्षा के नाम पर कुछ नहीं किया—यह समझा जा सकता है, परन्तु

जी. रामचन्द्रन :

साक्षरता और गरीबी

[डा. जी. रामचन्द्रन प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री हैं। महात्मा गान्धी की प्रेरणा से जब 'हिन्दुस्तानी तालीमी संघ' की स्थापना की गई थी, तब श्री जी रामचन्द्रनजी उसके एक सह-मंत्री रहे थे। रचनात्मक कार्यकर्ताओ में उनका विशेष स्थान है। हाल ही में डा जाकिर हुसैन की स्मृति में जो व्याख्यान-माला दिल्ली में आयोजित की गई, उसके अन्तरगत डा जी रामचन्द्रन ने 'साक्षरता और गरीबी' विषय पर अपने मननीय विचार प्रकट किये। उनके भाषण का सार यहाँ दिया जा रहा है।]

इस युग का कोई भी ऐसा विषय नही है, जिसपर महात्मा गाधी ने गहरा चिन्तन न किया हो, अपने विचार प्रकट न किये हों, जनता का मार्गदर्शन न किया हो।

बात पुरानी है। प्रौढ शिक्षा के सम्बन्ध में 'प्रौढ-शिक्षा समिति' की एक बैठक में गाधीजी ने अपने मौलिक विचार सामने रखे थे। कार्यकर्ताओ को उन्होने नई दृष्टि दी थी। इसके बाद उक्त कमेटी ने जो निष्कर्ष निकाले, उनको यहाँ देना उचित होगा।

१ प्रौढ शिक्षा का प्रारम्भ या अन्त साक्षरता से ही हो, यह जरूरी न होने पर भी साक्षरता उसका महत्वपूर्ण अग अवश्य है।

२ जब तक साक्षरता को जन-जीवन के सभी महत्वपूर्ण अगो को स्पर्श करने वाली सार्वनिक प्रौढ-शिक्षा की पार्श्वभूमि में नही रखा जायगा, जब तक साक्षरता की कोई भी योजना न तो सफल होगी और न प्रभावशाली ही।

३ करोडो भारतीयो को साक्षर बनाने का काम अपने में अतिशय विकट हिमालय जैसा प्रचड कार्य है। लेकिन सतत साक्षरता बनाये रखना उससे भी अधिक कठिन है। लोगो को साक्षर बनाने का काम, उन्हें साक्षर बनाये रखने के काम से शायद थोडा सरल ही है।

सतत् साक्षरता का अर्थ है— कुछ समय के बाद साक्षरता को स्वयं-विकासमान बनाना। सतत् साक्षरता का कार्य बढते हुए प्रवाह जैसा होना चाहिये।

४ निरक्षरता और गरीबी एक दूसरे के कारण एव कार्य हैं और इसलिये साक्षरता के किसी भी सफल कार्यक्रम के लिये जनता की गरीबी पर भी ध्यान देना होगा और उसे गरीबी हटाओ की योजनाओं से सम्बद्ध करना होगा। जब तक साक्षरता का कार्यक्रम जीवन को धुरी मानकर नही चलेगा, तब तक वह प्रौढ़ो को अपनी तरफ स्वेच्छा से और प्रभावशाली ढग से आकर्षित नहीं कर पायेगा।

५ करोड़ो के लिए बना ऐसा कार्यक्रम किसी एक केन्द्रीय एजेंसी के जरिये अमल में नही लाया जा सकता। उसके लिये विकेन्द्रित सगठनो, संस्थाओ और सेवाभावी प्रतिष्ठानो का एक देशव्यापी जाल आवश्यक है। जीवन के हर क्षेत्र का सम्पूर्ण शिक्षित समुदाय ऐसे कार्यक्रम में गूंथ दिया जाना चाहिये, चाहे फिर उसके लिये कानून का सहारा ही क्यों न लेना पडे।

६ चूंकि साक्षर होना हर नागरिक का जन्म सिद्ध अधिकार है, जनता की काफी बडी संख्या को उससे वचित करना जनतत्र के प्रति बेवफाई है। राज्य का कर्तव्य है कि वह इस कार्यक्रम के लिये पैसो का इन्तजाम करे, आवश्यकता हो तो राष्ट्रीय कर लगा कर भी।

७ साक्षर व्यक्ति अपनी साक्षरता कैसे बनाए रखते हैं, कैसे प्राप्त ज्ञान का उपयोग गरीबी सहित अन्य समस्याओ के निराकरण में करते हैं— यही साक्षरता की सफलता की कसौटी है। ऐसा परिणाम प्राप्त हुआ है या नहीं— इसकी जांच-पडताल शैक्षणिक एव लोकप्रिय एजेंसियो द्वारा प्रतिवर्ष की जानी चाहिये। यह भी जरूरी है कि सम्पूर्ण साक्षरता तक पहुँचने की समय मर्यादा निश्चित कर दी जाय।

भारत सदियो तक गुलाम रहा। विदेशी शासन में शासको ने इस विषय पर कभी ध्यान नहीं दिया। स्वराज्य प्राप्ति से पहले भारत में प्रौढ-शिक्षा की दिशा में कुछ विशेष नही किया गया। विदेशी सरकार ने प्रौढ शिक्षा के नाम पर कुछ नही किया—यह समझा जा सकता है, परन्तु

यह देखकर किसे आश्चर्य और दुख न होगा कि पिछले ३० वर्षो में भी इस क्षेत्र में कुछ विशेष नही किया गया है। आज भी ३० करोड़ भारतीय निरक्षर हैं।

प्रौढ-शिक्षा के सम्बन्ध में गांधीजी के स्पष्ट विचार फिर स्मरण हो आते हैं। उन्होने कहा था —

"प्रौढ शिक्षा न साक्षरता के साथ प्रारम्भ होती है, न समाप्त होती है। जो लोग बडी कठिनाई से अपनी जीविका उपार्जन कर पाते हैं, उन पर साक्षरता थोपी नही जा सकती। एक भूखा और थका हुआ व्यक्ति साक्षरता में क्यो रस लेगा? वे तभी साक्षर बनने में रस लेंगे, जब प्रौढ शिक्षा उनके जीवन की समस्याओ को हल करने में सहायक हो। इसलिये प्रौढ-शिक्षा को जीवन-केन्द्रित होना चाहिये। जब निरक्षर लोग समझेंगे कि साक्षर बनकर वे अपने जीवन को सुखमय बना सकते हैं, तब वे स्वय ही पढने लिखने की ओर दत्तचित्त होगे।" गांधीजी के इस कथन से स्पष्ट है कि साक्षरता प्रचार को जीवन केन्द्रित होना चाहिये। बच्चे उन्ही शब्दो और विषयो की जानकारी पहले प्राप्त करते हैं, जिनकी उन्हें जीवन में आवश्यकता होती है। इसलिये प्रौढ-शिक्षा के क्षेत्र में आवश्यक यह है कि जीवनोपयोगी विषयो पर प्रौढो के साथ वार्तालाप किया जाय। उसके बाद उन्हें पढने-लिखने के लिये प्रवृत्त किया जा सकता है। यहाँ यह दुहराने की आवश्यकता ही नही कि यदि प्रौढ शिक्षा के क्षेत्र में सफलता प्राप्त करना चाहते हैं, तो हमें उसे जीवन केन्द्रित बनाना होगा।

गांधीजी ने एक बार कहा था — "निरक्षर ही गरीब हैं और गरीब ही निरक्षर हैं।"

निरक्षरता और गरीबी में अटूट सम्बन्ध है। निरक्षर व्यक्ति अपनी गरीबी को दूर नही कर सकता और एव गरीब व्यक्ति साक्षर हो नही सकता। इसलिये यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिये कि गरीबी हट नही सकती, जब तक गरीबो को साक्षर बनाया नही जाता, और उन्हें साक्षर तभी बनाया जा सकता है, जब हमारी शिक्षा जीवन-केन्द्रित बने।

भारत की जन-संख्या बडी तेजी से बढ़ रही है और उसी तेजी से निरक्षर लोगो की संख्या बढ रही है। इसलिये प्रौढ़-शिक्षा की गम्भीरता का अनुमान किया जा सकता है। इस देशमें अगर हमे इस क्षेत्र में सफलता प्राप्त करनी है, तो हमें प्रौढ़-शिक्षा को जीवन केन्द्रित बनाना ही होगा, ताकि निरक्षर लोग उसमें स्वय रस लेने लगें।

निरक्षर लोग हरिजनो से भी गये बीते है। राजनैतिक और सामाजिक अधिकारो से ही वे वचित नही है, वे सभी प्रकार के ज्ञान से भी वचित है। निरक्षर लोग प्रगति और विकास के क्षेत्र के बाहर खड़े है। ६० करोड़ में से ३० करोड़ व्यक्तियों की यही दशा है। इसलिये अगर इस देश मे समाजवाद की स्थापना करनी है, तो हमे अपने पच-वर्षीय योजना में ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि हम जल्दी से जल्दी अन्धकार में भटकने वाली जनता को प्रकाश में ला सके।

प्रौढ़-शिक्षा के सम्बन्ध मे मेरे कुछ सुझाव है। जिन्हें मैं देना चाहता हूँ। वे इस प्रकार है —

१ साक्षरता के कार्य को हम जीवन-केन्द्रित और व्यवसाय-सम्बद्ध बनाय। इसका अर्थ है हर स्तर पर व्यापक आधार का अनौपचारिक शिक्षण।

२ हमे इस बात पर जोर देना चाहिये कि जीवन के हर क्षेत्र की प्रौढ़ महिलाओ को साक्षरता-आन्दोलन में लाने का काम सबसे अधिक महत्वपूर्ण ह।

३. शिक्षा-मत्रालय के अन्तर्गत प्रौढ़-शिक्षा-विभाग का अलग से गठन कर उसे एक मत्री के अधीन रखा जाय और उसके जिम्मे प्रौढ़-शिक्षा के प्रचार-प्रसार का काम दिया जाय, जिसे सात साल के भीतर उसे पूरा कर लेना है।

४. केन्द्र एव राज्य सरकारें प्रौढ़-शिक्षा-कार्यक्रम के लिये समुचित धन की व्यवस्था करे। आवश्यकता हो तो उसके लिये एक विशेष कर भी लगाया जाय।

५ हम एक लाख कार्यकर्ताओं को एक महीने की ट्रेनिंग दे और फिर उन्हे हर भाषा-क्षेत्र में भेज दें।

नैतिक व आध्यात्मिक विकास की ओर विशेष ध्यान देना रचनात्मक संस्थाओं का कर्तव्य हो जाता है।

यह भी स्पष्ट है कि 'अन्त्योदय' को सफल बनाने के लिये विकेन्द्रित ग्राम-स्वराज्य की स्थापना जरूरी है। तभी भूदान, खादी, ग्रामोद्योग, गोसेवा आदि द्वारा सभी लोगों के लिये रोजगार का प्रबन्ध किया जा सकेगा। इस समय देश में केन्द्रीकरण की जो धारा प्रवाहित हो रही है, उसे यह सम्मेलन चिन्ता की दृष्टि से देखता है।

३. मद्य-निषेध :

'अन्त्योदय' की दृष्टि से देश भर में मद्य-निषेध लागू होना अत्यन्त आवश्यक है। भारत सरकार की ओर से इस वर्ष गांधी-जयन्ती के अवसरपर जो बारह-सूत्री न्यूनतम कार्यक्रम जाहिर किया गया है, उसका स्वागत सारे देश में हुआ है। किन्तु उसे सम्पूर्ण शराब-बन्दी की दिशा में पहला कदम ही मानना चाहिये। सम्मेलन आशा करता है कि सभी राज्य-सरकारें पाँचवी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक अपने-अपने क्षेत्र में पूर्ण मद्य-निषेध लागू करने की क्रमिक योजना शीघ्र ही बनायेंगी।

मद्य-निषेध आन्दोलन को कामयाब बनाने के लिये व्यापक जन शिक्षण निहायत जरूरी है। साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि शराब-बन्दी के नियमों का पालन शासन की ओर से कड़ाई से किया जाय। सम्मेलन आशा करता है कि सभी रचनात्मक क्षेत्रों के कार्यकर्ता मद्य निषेध के आन्दोलन को मजबूत बनाने में अपनी संगठित शक्ति लगायेंगे।

४. अस्पृश्यता-निवारण :

यह गहरी चिन्ता का विषय है कि स्वराज्य मिलने के २८ वर्ष बाद भी छुआछूत की बुराई भारतीय समाज में जारी है। संविधान में अस्पृश्यता-उन्मूलन के निर्देश और केन्द्रिय व राज्यसरकारों की कल्याण-योजनाओं के बावजूद हरिजनों की सामाजिक और आर्थिक दशा सोचनीय बनी हुई है। इसलिये यह आवश्यक है कि इस सामाजिक कलंक को जड़ से मिटाने के लिये शासन और रचनात्मक संस्थाओं की सामूहिक शक्ति लगाई जाय।

गत अक्टूबर में केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि की ओर से आयोजित की गई 'हरिजन-समस्याओं पर विचार-गोष्ठी' की शिफारिशों का यह सम्मेलन समर्थन करता है और आशा करता है कि 'अन्त्योदय' की दृष्टि से विभिन्न रचनात्मक संस्थायें मद्य-निषेध के साथ अस्पृश्यता-निवारण को भी प्राथमिकता देंगी।

पूज्य विनोबाजी ने सुझाव दिया कि छुआछूत को मिटाने के लिये यह भी जरूरी है कि हरिजनों के बीच मांसाहार त्याग का विचार फैलाया जाय।

५ बुनियादी निष्ठायें :

यह भी स्पष्ट है कि सभी रचनात्मक कार्यकर्ता, सत्ता और दलगत राजनीति से अलिप्त रहें और अपने सभी काम साधन-शुद्धि के सन्दर्भ में सत्य,अहिंसा और संयम के आधार पर संचालित करें। विभिन्न प्रकार के रचनात्मक कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिये ये बुनियादी निष्ठायें कायम रखना सब दृष्टि से वाछनीय है। यदि किसी विशेष कार्यक्रम को चलाते हुए कुछ ऐसी कठिनाइयाँ उपस्थित हो जायें, जो पूरे प्रयत्न करने पर भी दूर न हो सकें तो फिर महात्मा गांधी के आदर्शों पर आधारित सत्याग्रह का तरीका अपनाना अनिवार्य हो जाता है। किन्तु यह सत्याग्रह निर्भय, निर्वैर और निष्पक्ष भावनाओं से ओतप्रोत होना चाहिये।

६. विज्ञान व अध्यात्म का समन्वय :

हमें अपने सभी रचनात्मक कार्यों में विज्ञान के साथ अध्यात्म के समन्वय की दृष्टि को अपनाना होगा। केवल भौतिक विकास द्वारा समाज में शान्ति और समृद्धि कायम नहीं हो सकती। विज्ञान और आत्म-ज्ञान की सामूहिक शक्ति से ही सर्वोदय का उदय होगा।

७. स्त्री-शक्ति जागरण :

यह साल अन्तरराष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है। भारत में भी स्त्री-शक्ति जागरण-आन्दोलन को बहनों की रचनात्मक शक्ति को प्रोत्साहन देकर मजबूत बनाना चाहिये। यह सम्मेलन आशा

६ हर प्राथमिक स्कूल तथा हाईस्कूलो के शिक्षको का तथा उनके साधनो का हम इस काम के लिये उपयोग करे, ताकि हर विद्यालय साक्षरता-केन्द्र वन जाय। इस काम को सतोषजनक ढग से करने वाले हर शिक्षक को प्रति माह ३० रुपय मानधन के रूप मे दिये जाय।

७ शिक्षा विभागो और विश्वविद्यालयो को भी इस विशाल कार्यक्रम का मार्गदर्शन एव निरीक्षण करना चाहिये। हमारे नेताओ को भी इस सम्बन्ध म आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिये।

८ हर शिक्षित सरकारी कर्मचारी को इस राष्ट्रीय आन्दोलन में उचित सत्र नियम बनाकर, सलग्न किया जाना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति प्रति वर्ष १० व्यक्तियोको साक्षर बनाये—यह अनिवार्य माना जाय।

९ केन्द्रीय एव राज्य धारा सभायें इस काम की प्रेरणा देने तथा आगे बढाने के लिये गैर सरकारी कमेटियाँ बनायें।

१० चूँकि इस कार्यक्रम को बहुत बडे फैलाव में एव विकेन्द्रित ढग से पूरा करना है इसलिये देश की हर पचायत को इस में जुटाना चाहिये और उस पर यह जिम्मेवारी डाली जानी चाहिये कि उसके इलाके का हर प्रौढ व्यक्ति सात साल के दरम्यान साक्षर बना लिया जाय। हर पचायत को दो प्रशिक्षित प्रौढ शिक्षा कार्यकर्ताओ की सेवायें मुफ्त में मुहैया की जानी चाहिये।

११ जीवन-केन्द्रित साक्षरता की कल्पना के आधार पर दस पुस्तिकाओ का सच भारत की हर भाषा में तैयार करवाया जाय। उसमें अलग अलग धन्धो से सम्बन्ध प्रौढ-गुटो का ध्यान रखा जाय।

१२ इस कार्यक्रमकी पूर्ति के लिये जानकारी देने के हर माध्यम—फिल्मो एव रेडियो तथा टेलिविजन का भी उपयोग किया जाय।

१३ इस कार्यक्रम को सात साल में पूरा करना ही है, यह ध्यान में रखते हुए हर राज्य अपने क्षेत्र में किए गए तत्सम्बधी कार्य प्रगति का तीन महीने में एक बार मूल्याकन करे।

* * *

देवेन्द्र कुमार :

रचनात्मक कार्य : बुनियादी निष्ठायें

केन्द्रीय गाधी स्मारक निधि द्वारा आयोजित अखिल भारतीय रचनात्मक कार्यकर्ता-सम्मेलन सेवाग्राम मे २४, २५ और २६ दिसम्बर को गाधी स्मारक निधि के अध्यक्ष श्री श्रीमन्नारायणजी के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ। उसमे देशभर के लगभग ४०० प्रमुख कार्यकर्ताओ ने भाग लिया। चर्चा में औरो के अलावा श्री आर आर दिवाकर, श्री चारुचन्द्र भडारी, श्री अण्णासाहब सहस्रबुद्धे, श्री आर के पाटील व श्री पागे आदि के विचारो का भी सम्मेलन को लाभ मिला। तारीख २६ दिसम्बर को सुबह पवनार आश्रम में पूज्य विनोबाजी का मूल्यवान मार्गदर्शन भी प्राप्त हो सका।

तीन दिन की चर्चा के पश्चात् नीचे लिखा निवेदन सर्व-सम्मति से स्वीकृत किया गया —

१ समग्र-दृष्टि :

रचनात्मक संस्थाओ के भिन्न भिन्न कार्य होते हुए भी उनके क्रियाकलापो मे पारस्परिक समन्वय की नितान्त आवश्यकता है। अत यह जरूरी है कि रचनात्मक कार्यकर्ताओ में समग्रता की दृष्टि जाग्रत हो। इस प्रकार के आपसी सहकार्य से रचनात्मक संस्थाओ को बल मिलेगा और सर्वोदय आन्दोलन अधिक गतिशील बन सकेगा। सभी संस्थाओ से यह अपेक्षा रखी जायगी कि वे समग्रता और समन्वय की दृष्टि से अपने कार्यकर्ताओं को आवश्यक सुविधायें दे।

२. अन्त्योदय

सभी प्रकार के रचनात्मक कार्यो का मुख्य उद्देश्य 'अन्त्योदय' होना चाहिये। इस समय देश की कम से कम आधी जनता गरीबी रेखा के नीचे रह रही है। इन गरीब और कमजोर वर्गो के सामाजिक, आर्थिक,

करता हूँ कि इस महत्वपूर्ण काम की तरफ सभी रचनात्मक कार्यकर्ता ध्यान दगे।

८ आपसी प्रेम और सहयोग

यदि किसी कार्यक्रम को लेकर सर्वानुमति की पूरी कोशिशें करने के बावजूद आपसी मतभेद हो जाय, तो भी मन-भेद या हृदय भेद न हो और पारस्परिक सद्भावना बनी रहे। हम एक-दूसरे की नियत पर शक न करें। देश की वर्तमान परिस्थिति में साधन शुद्धि के बुनियादी सिद्धान्त को मानने वाले व्यापक गाधी-परिवार की एकता मजबूत बनाये रखना सब दृष्टि से अनिवार्य है। सम्मेलन की श्रद्धा है कि इस समय के आपसी मतभेद शीघ्र दूर होंगे और पूज्य विनोबाजी के मार्गदर्शन में रचनात्मक कार्यकर्ताओं का भाईचारा सुदृढ बनेगा।

* * *

'मै तुम्हे एक तावीज देता हूँ। जब कभी तुम संशय में हो या तुम्हारा अहम बहुत बढ जाय, तो यह उपाय करो—उस गरीब से गरीब बहद दीन व्यक्ति के चेहरे को याद करो, जिसे तुमने कभी देखा हो और अपने आप से पूछो कि जो कदम तुम उठाना चाहते हो, उससे उसे कोई लाभ पहुँचेगा? क्या उससे वह कुछ पा सकेगा? क्या उससे उसे अपने जीवन और भाग्य पर नियंत्रण करने में सहायता मिलेगी? दूसरे शब्दों में क्या उससे पेट और आत्मा की भूख से व्याकुल हमारे लाखों देशवासियों को स्वराज्य अथवा आत्मानुशासन प्राप्त होगा? और तब तुम देखोगे, तुम्हारा संशय दूर हो गया है और अहम् मिट गया है।'

—गांधी

श्री पद्मजा बंग :

साक्षरता-शिक्षण का एक क्रांतिकारी प्रयोग

[पाओलो फ्रेयरे की शिक्षण-पद्धति से सम्बंधित विभिन्न पेपर्स पर आधारित अनुवाद और सकलन।]

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले जिस स्वराज्य, सुराज अथवा राम-राज्य का स्वप्न देखा था, वह पूरा नही हुआ। शासन तंत्र बदला, परन्तु शासन-पद्धति में कोई विशेष अन्तर नही आया। परम्परागत नौकरशाही पूर्ववत काम कर रही है। जनता आज भी लगभग उसी स्थान पर है, जहाँ पहले थी। परिस्थितियोंमें परिवर्तन लानेकी शक्ति उसमें नही रही। जनता में यह शक्ति पैदा करनी होगी। इस तरह के सही लोक-शिक्षण से ही समाज के मानवीकरण की शुरुआत हो सकती है। "सा विद्या या विमुक्तये"— विद्या वही है, जो मुक्त करती है— उपनिषद् का यह वाक्य भी तभी सिद्ध हो सकता है।

आज हमारे देश में लोकशिक्षण के लिये साक्षरता-अभियान बहुत जोर से चल रहा है। इन अभियानों के उद्देश्य के बारे में लोगों के मन में अलग-अलग विचार हैं। जैसे कि समाज का सांस्कृतिक स्तर उठाना, नागरिक अपनी भूमिका सफलतापूर्वक अदा कर सकें इसके लिये उन्हें तैयार करना, समाज का ढाँचा मूल्य और कार्य को ध्यान में रखते हुए अच्छे नागरिक को बनाना आदि।

प्रचलित शिक्षण-पद्धतियों से बगावत :

इस सन्दर्भ में हम जरा भारत की तरह अविकसित दक्षिणी अमरीका की तरफ नजर दौड़ायें, जहाँ साक्षरता-शिक्षण एक विवादस्पद मामला बना है। हमेशा से उत्तरी अमरीका और योरप के शिक्षण-शास्त्र और पद्धतियों का अनुकरण करने वाले इन राष्ट्रों ने साक्षरता-शिक्षण के क्षेत्र में एक नवीनतम क्रांतिकारी पद्धति अपनायी है, जिसे 'चेतना-जागरण' का नाम उन्होने दिया। प्रसिद्ध ब्राजिलियन शिक्षा-शास्त्री पौलो फ्रेयरे इस विचारधारा के जन्मदाता, प्रवर्तक और मुख्य प्रेरणा-स्रोत है।

पौलो फ्रेयरे १९६४ तक ब्राजील के रेसीफ विश्वविद्यालय में शिक्षण क दर्शन शास्त्र और इतिहास के प्राचार्य थे। १९४७ से लेकर ही वे ब्राजील के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के निम्नवर्गीय निरक्षर ग्रामीण लोगो के बीच प्रौढ-साक्षरता का काम करन लगे। शिक्षा-शास्त्री होने के नाते प्रौढ शिक्षण की प्रचलित पद्धतियो के बारे मे वे जानकारी रखते ही थे। लेकिन खासकर तीन कारणो से उन्हें प्रौढ-शिक्षा की प्रचलित पद्धतियो से सतोष नही हुआ।

(१) बाल-शिक्षा के ही साधनो का इस्तेमाल प्रौढो के लिए भी किया जाता था।

(२) पाठ्य-पुस्तको की भाषा और सदर्भ शहरी मध्यमवर्ग के जीवन से सम्बधित थे। इसलिए निम्नवर्गीय ग्रामीण लोगो की समस्याओ और रुचियो के साथ उन किताबो का कोई तालमेल नही था।

(३) शिक्षक और शिक्षार्थी के आपसी सम्बध और प्रचलित पद्धतियो का विद्यार्थियो पर हो रहा मनोवैज्ञानिक असर–इनके बारे में फ्रेयर के मन में जडमूल से उद्विग्नता रही। सस्कृति, साक्षरता का परिणाम माना जाता था। और, अपने 'अज्ञानी' विद्यार्थी को यह 'सस्कृति' प्रदान करते हुए उसके अन्दर पहले से मौजूद हीन-भावना और पराधीनता को पोषण करना ही शिक्षको का काम था। शिक्षण भी समाज मे प्रचलित वर्ग-सम्बधो की एक अभिव्यक्ति और प्रकटीकरण बनकर रह गया।

फ्रेयरे के लिए चिता की एक और बात थी। वे सोचने लगे --- इन निरक्षर लोगो को मै पढना और लिखना किसलिए सिखा रहा हूँ? क्या इसलिए कि प्रचलित ऊँच नीच के भेदभावो से ग्रस्त स्तरीय और अमानवीय समाज के मूल्यो को वे स्वीकार कर और उसी चौखट में अपनी भूमिका अदा कर सकें? उनकी बुद्धि और भावना ने इस बात को अस्वीकार किया।

नये विचार के लिए तीन प्रेरणा-स्रोत

इसके बाद पाठ्य-पुस्तको को एक बाजू में रखकर फ्रेयरे ने अन्य तीन स्रोतों से विचार ग्रहण करना और उन पर चिंतन करना शुरू किया।

(१) निरक्षर लोगों की भाषा, संस्कृति और समस्याएँ।

(२) मानव प्रकृति, संस्कृति और इतिहास के दर्शन-शास्त्र।

(३) दूसरे विश्व-युद्ध के उपरान्त दक्षिणी अमरीका की अविकसित स्थिति का विश्लेषण।

पराधीनता, पिछड़ापन और जड़ता के पुराने युग को पीछे छोड़कर राष्ट्रीय स्वायत्तता, औद्योगीकरण और गतिशीलता की तरफ ब्राजील राष्ट्र बढ़ रहा था। प्रजातंत्र जन सहभागिता, स्वतंत्रता, स्वामित्व सत्ता आदि विषयों के नये अर्थ प्रकट हो रहे थे। इस संक्रमण काल में शिक्षण का काम बहुत महत्वपूर्ण था। बुद्धि संगत, लोकतान्त्रिक और विवेचनात्मक तरीके से राष्ट्र के वर्तमान और भविष्य में जो भाग ले सकें, ऐसे एक जनसमुदाय को गढ़ना अपना कर्तव्य फ्रेयर ने मान लिया।

फ्रेयरे का अध्ययन, चिंतन, ब्राजील के विकास की समस्याओं और जन-जीवन के साथ उनका निरंतर जीवंत सम्पर्क, सालों तक चलते रहे। १९६० और १९६३ के बीच फ्रेयरे को अपना रास्ता सामने साफ दिखाई पड़ने लगा।

चेतना-जागरण पद्धति

परिस्थिति के बारे में निरक्षर आदमी का बुनियादी परिप्रेक्ष्य दुःखवाद और दैववाद चला आ रहा था। प्रौढ़-शिक्षा की परम्परागत पद्धतियों में शिक्षार्थी का अपना कोई जीवंत अस्तित्व नहीं था। वह केवल एक वस्तु माना गया था, जिसके 'अन्दर' वरिष्ठ लोग 'ज्ञान' को उँडेल दिया करते थे। लेकिन फ्रेयरे के लिए विद्यार्थी एक वस्तु नहीं, बल्कि एक व्यक्ति था, जिसका कर्तव्य दुनिया में काम करना और उसे बदलना था। अपने परिवेश को गढ़ने की शक्ति अपने ही अन्दर निहित है—यह जागृति उस निरक्षर के मन में पैदा करनी होगी। इस काम के लिये योग्य साधन भी उसे प्राप्त करने होंगे।

इसलिए, प्रौढ़-शिक्षा के लिए 'चेतना जागरण' की जो पद्धति फ्रेयरे ने अपनायी, उसके तीन प्रधान उद्देश्य रहे —

(१) समाज का शोषण मूलक ढाँचा, गलत मूल्य, वर्ग-भेद, वर्ग-संघर्ष आदि कुरीतियों के बारे में साधारण जनता के मन में जागृति पैदा करना और वास्तविकता का भान उन्हें करवाना।

(२) इन सब समस्याओ का विवेचनात्मक विश्लेषण करने की शक्ति 'क्यो', 'कैसे' आदि सवाल पूछने की हिम्मत और किस समस्या को प्राथमिकता देनी चाहिए—इस बात की समझ उनमें पैदा करना।

(३) अपनी नयी जागृति और विचारधाराओ को सामाजिक परिवर्तन हेतु क्रियान्वित करने की तैयारी और ताकत भी इन प्रौढो में लाना। हर अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने की और प्रतिकार करने की तैयारी उनमे आवे।

ये सब बातें तभी होगी, जब विद्यार्थी अपने जीवन की समस्याओं और परिस्थिति के बारे में आपस में चर्चा और विचार-विनिमय करेंगे। इन चर्चाओ मे केवल सयोजन का काम शिक्षक करेंगे। शिक्षक भी शिक्षार्थी के प्रति आदर का भाव रखे और दोनो एक दूसरे के साथ कंधे से कधा मिलाकर किसी समस्या के हल की खोज करने निकलें। उन दोनो के बीच की दूरी कम से कम हो।

पाठ्य-पुस्तको के बदले शब्द-संग्रह :

फ्रेरे का विचार था, इस तरह की चर्चाओ को छेडने की प्रेरणा दनेके लिए, उन्हें सुगम बनाने के लिऐ और लोगो की विवेचनात्मक तथा विश्लेषणात्मक चेतना जगानेके लिए एक न्यूनतम शब्दावली बनायी जा सकती है। उनकी शिक्षा पद्धति 'पौलो फ्रेयरे पद्धति' या 'मनो-वैज्ञानिक-सामाजिक पद्धति' के नाम से आज प्रचलित है। इसमें तीन विभिन्न अवस्थाये है —

(१) एक सर्वसामान्य न्यूनतम शब्दावली और चिंतन-मनन के लायक समस्याओ के मसले तैयार करने के लिए अनपढ लोगो के जीवन का नजदीक से अध्ययन करना, पहली अवस्था है।

शिक्षको का एक समूह अनौपचारिक वार्तालाप के द्वारा एक विशेष समुदाय के विचार, समस्याएँ और आकाक्षाएँ ढूंढ निकालकर अध्ययन करने में लगते है। राष्ट्रीय समस्याएँ भी इनमें सम्मिलित की जा सकती है, लेकिन शिक्षार्थियो के व्यक्तिगत और क्षेत्रीय समस्याओं के साथ जोडकर ही उनका प्रस्तुतीकरण होना चाहिए।

ब्राजील के शहरी और ग्रामीण निरक्षरो के लिए अलग-अलग शब्दावलियाँ फ्रेयरे ने बनायी। ब्राजील छोडकर चिली चले जाने के बाद उन्होंने फिर नये सिरे से वहाँ के लिए शब्दावली बनाना शुरू किया।

(२) दूसरी अवस्था मे इस शब्द सग्रह मे से कुछ ऐसे शब्दो का चयन करते है, जो क्षेत्रीय अनपढ लोगो के जीवन से सब से ज्यादा सम्बधित है और जो उनकी अभिव्यक्तियो का प्रतिनिधित्व करते है। यह शब्द-चयन तीन कसौटियो पर निर्भर है।

(क) भाषा की सभी बुनियादी ध्वनियो को सम्मिलित कर सकें—ऐसे शब्द हो।

(ख) ललित अक्षरो और शब्दो से शुरुआत करके कठिन अक्षरो और शब्दो की तरफ जा सके—ऐसा क्रम है। कठिनाइयो को क्रमबद्ध करने से नवसाक्षर लोग उन्हे जल्दी पार कर सकेंगे, जिससे उन्हें आतरिक सतोष और आमविश्वास मिलता रहेगा। साथ-साथ, पढने-लिखने में उनकी रुचियाँ भी बढेंगी।

(ग) सामाजिक सास्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियो का मुकाबला करने में अन्तर्निहित सामर्थ्य जिनमे है, ऐसे मानसिक और भावनात्मक प्रेरणादायी शब्द चुन जायँ।

उदाहरण के लिए 'घर' शब्द साधारण दैनदिन पारिवारिक जीवन से ही केवल सम्बधित नही बल्कि राष्ट्रीय और क्षत्रीय स्तर पर आवास की समस्याओ के साथ भी सम्बन्ध रखता है। 'काम' शब्द मानव का अस्तित्व उसके आर्थिक कार्यभार सहयोग की भावना, बेरोजगारी आदि कई मसलो की तरफ चर्चा को ले जा सकता है।

इस तरह का शब्द सग्रह बनाने की क्या जरूरत है ? लगातार नये शब्द और वाक्य जो प्रदान कर सकती है, ऐसी कोई प्रवेशिका का इस्तेमाल नही कर सकते ? फ्रेयरे का विचार है कोई भी प्रवेशिका पर्याप्त रूप से उपयोगी नही हो सकती। इन प्रारम्भिकाओ को तैयार करने वाले लोग अपने मनपसद विषयो को प्राथमिकता देते है और अपनी समझ के अनुसार विषयो की सुसगति या असगति का निर्णय करते है। इस तरह पहले से तैयार विषयवस्तु विद्यार्थियो पर थोपी जाती है।

पाठ्यनम तैयार करने मे उनका कोई हिस्सा नही रहता। बल्कि, फ्रेयरे की पद्धति मे तो शब्दावलियाँ विद्यार्थी अपने मन से बढा सकते है। केवल मात्राओ की हेरफेर से नये शब्द और वाक्य बनते है। यह विद्यार्थियो की सृजन-शक्ति और मौलिकता बढाती है। इन कारणो से बनी-बनाई किताबो का फ्रेयरे ने पूर्ण रूप से निष्कासन किया।

परिचित शब्दों के अपरिचित और नये आयाम '

(३) तीसरी अवस्था में, दो तरह के शिक्षण साधनो के निर्माण की बात आती है। शब्दो के ध्यानपूर्वक विश्लेषण के लिये उन्हे अलग हिस्सो में बाँटने वाले कुछ फ्लैश कार्ड या स्लाइड—यह पहला साधन है। दर्शन के माध्यम से शब्दो की प्रतिकृति विद्यार्थियो की कल्पना में आ सके और शब्दो के सदर्भ मे ज्यादा सोच-विचार करने के लिए उन्हें प्रेरणा दे सके, इसके लिए सचित्र पनक का इस्तेमाल करते है।

स्पष्टीकरण के लिए हम एक उदाहरण लें —

हमें घर ' शब्द नवसाक्षरो के सामने प्रस्तुत करना है। इस शब्द के साथ ही एक निम्नवर्गीय परिवार और उनकी छोटी-सी कुटिया का चित्र भी लोगो के सामने रखा जाता है। इस शब्द और तस्वीर पर चर्चा-वर्ग आधारित है। शब्द को बार-बार दोहराना, उसे पहचानना, उसका अलग-अलग अक्षरो में विभाजन करना (शब्दाक्षर-पद्धति), इन अक्षरो से नये शब्द बनाना आदि दृश्य-श्राव्य शैलियाँ इस्तमाल की जाती है। चर्चा का सयोजक 'घर' शब्द के विविध पहलू समूह के सामने प्रस्तुत करता है और उनको अपने विचारो के मथन में और लेन देन में मार्गदर्शन करता है। पारिवारिक जीवन के लिए सुविधाजनक घर की आवश्यक्ता, राष्ट्र की आवासीय समस्याएँ, लोगो को घर की उपलब्धि की शक्यताएँ, विभिन्न देशो के निवास स्थानो की तुलनात्मक विशेषताएँ नगरीकरण से सबधित आवासीय समस्याएँ आदि कई विषयवस्तु चर्चा-समूह के सामने रखी जाती है। सभी लोगो के पास घर है क्या ? नही है, तो उसका क्या कारण है ? बचत और उधार की योजना और व्यवस्था से सब लोग निवास-स्थान प्राप्त कर सकते है क्या ?—आदि विचारोत्तेजक

और प्रेरक सवाल रोजमर्रा की बातों की ओर आलोचनात्मक मनोवृत्ति अपनाने के लिए सहायक होते हैं।

शिक्षण : खुद को पहचानने की एक प्रक्रिया :

इन सब सवालो के तयार जवाब नही है। लेकिन, विचारो की सामूहिक लेन देन से विद्यार्थियो की सोचने-समझने की, विश्लेषण करने की और अभिव्यक्ति की शक्ति बढती है। विद्यार्थी खुद को पहचानने लगते हैं। उन्हें रोज नये-नये अनुभव का आविष्कार होता है। ज्ञान का अभाव सापेक्ष होता है, निरपेक्ष अज्ञान कही रहता नही है और हर व्यक्ति में ज्ञान और सृजन-शक्ति छिपी है—इसका अेहसास उन्हें होने लगता है।

सब जन एक समान, ज्ञान और संस्कृति पर सबका समान हक, अपनी परिस्थितियो की आलोचना करने और उन्हें बदलने का हर एक का हक— इन मूल्यो पर 'चेतना-जागरण' का निर्माण और विकास हुआ है।

शिक्षक भी विद्यार्थी है :

इस पद्धति मे सबसे महत्वपूर्ण भाग सयोजक को अदा करना है।

(१) वह कभी स्वयं शिक्षा 'देता' नही है, बल्कि अन्य सहभागियो को, खुद को पहचानने और खुद ही ज्ञान को खोजने में हमेशा 'मदद' करता है।

(२) वह कम-से-कम बोलता है। केवल चर्चा को वाछनीय, दिशा में आगे बढाने के हेतु इशारा करता रहता है।

एक क्रान्तिकारी प्रयोग का आकस्मिक अवसान :

इस पद्धति से कोई भी निरक्षर व्यक्ति छ हफ्ते के अन्दर पढना और लिखना अच्छी तरह सीख सकेगा, ऐसा फ्रयरे का अनुभव है। १९६३ में ब्राजील सरकार ने पौलो फ्रेयर-पद्धति अपनाकर साक्षरता-शिक्षण का काम बडी तादाद में शुरू किया। आठ माह के अन्दर हर प्रांत में प्रशिक्षकों का प्रशिक्षण चलाया गया। सबसे ज्यादा उत्साह

इस कार्यक्रम में विद्यार्थियों में था। योजना यह थी कि १९६४ तक बीस हजार 'सास्कृतिक वर्तुल' तैयार हो, जो तीन माह के अन्दर बीस लाख लोगों का प्रशिक्षण कर सकेंगे। इस तरह पाँच साल के अन्दर ही ब्राजील के चार करोड़ निरक्षर लोगों को साक्षर बनाने की पूरी योजना बनाई गई थी।

लेकिन, १९६४ मे वहाँ आकस्मिक शासन परिवर्तन हुआ। प्रजातत्र शासन की जगह सैनिक शासन आ गया। उच्च और मध्यम-वर्ग के लोगो के मन में यह आशका पैदा हो गई थी कि फ्रेयरे-पद्धति उनके निहित स्वार्थों के लिए खतरनाक साबित हो रही है और अपनी सारी सुविधाएँ जल्दी ही अपने हाथों से छीन ली जायेगी। सर्वहारा-वर्ग की तरफ समाज की अभिमुखता वे सहन नहीं कर सके। इसलिए, वे लोग भी नये सैनिक-शासन का समर्थन करने लगे। ब्राजील से निष्कासित होने से पहले कुछ समय फ्रेयरे को जेल मे भी काटना पड़ा। तदुपरात वे चिली चले गये और वहाँ उन्होंने अपने शिक्षण-प्रयोग आरंभ किये। तबसे ब्राजील मे साक्षरता-शिक्षण तो चालू है, लेकिन उसमें 'चेतना-जागरण' का काम नही हो रहा है।

'चेतना-जागरण' और अन्त्योदय — दो नहीं, एक :

शिक्षित और अशिक्षित लोगो के बीच का वर्ग-भेद हटाने के लिए और उत्पादक और उपभोक्ता समाजो के बीच की खाई हटाने के लिये बापू ने आज से चालीस साल पहले ग्रामाभिमुख शिक्षा, बुनियादी तालीम और सर्वोदय की कल्पना हमारे सामने रखी थी। दशको के बाद भारत से हजारों मील दूर के एक अविकसित देश में चल रहे इन क्रातिकारी शिक्षण प्रयोगों का भी लक्ष्य और पद्धति यही है—एक अहिंसक स्वावलम्बी, समतामूलक ग्राम-समाज की रचना।

* * *

रिपोर्ट :

'शिक्षा सलाहकार मंडल' के सुझाव

'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मडल' की नई दिल्ली में तारीख २७-११-७५ को ३८ वी बैठक में शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर गम्भीर चर्चा हुई। शिक्षा को किस प्रकार जीवनोन्मुख बनाया जाय, किस प्रकार उसके व्यापक कार्य के लिए आवश्यक धन प्राप्त किया जाय—आदि बातों पर शिक्षा-शास्त्रियो ने अपने स्पष्ट विचार प्रकट किये। एक प्रस्ताव के द्वारा मडल ने केन्द्रीय और राज्य सरकारो से आग्रह किया कि वे ऐसी योजनायें बनायें और उसके लिये धन की व्यवस्था करें, जिससे शिक्षा के क्षेत्र में वाछित उद्देश्य को शीघ्र पूरा किया जा सके।

'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मडल' ने इस सम्बध में जो सुझाव दिये हैं, वे इस प्रकार हैं —

१. अनौपचारिक शिक्षा का कार्यक्रम बड़े पैमाने पर विकसित किया जाय। ऐसे विद्यार्थियो की सूची तैयार की जाय, जो शाला में न जाते हों। अपव्यय को कम किया जाय।

२. केवल भर्ती और वह भी विशेषत पहली कक्षा में भर्ती किये जाने पर बल दिया जाना छोड दिया जाय।

३ मध्यान्ह के भोजन के कार्यक्रम तथा अन्य अप्रेरक कार्यक्रमों पर बल दिया जाय एव उन्हें स्वदेशीय उपायो या साधनों द्वारा बढावा दिया जाय।

४. पूरे समय के शिक्षको की नियुक्ति पर जोर न दिया जाय। इसके स्थान पर बहुत बडी सख्या में अल्पकालीन शिक्षकों के द्वारा

अनौपचारिक तथा अल्पकालीन शिक्षा के कार्यक्रमको आगे बढाया जाय। इसके लिये स्थानीय बुद्धि-जीवियो का सहयोग प्राप्त किया जाय।

५ जहाँ आवश्यक हो, वहाँ प्रथम और द्वितीय श्रेणी की कक्षाओ में दो पारियो की व्यवस्था को अपनाया जाय।

६ इस कार्यक्रम को सर्वोच्च महत्व का राष्ट्रीय कार्यक्रम माना जाय और उसके लिए आवश्यक आर्थिक व्यवस्था करने को वरीयता दी जाय।

७ इस कार्यक्रम की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि जनता के उत्साह को किस सीमा तक गतिमान किया जा सका है। यह इस पर भी निर्भर करेगा कि इसे किस तरह जन-आन्दोलन के रूप में चलाया गया है।

प्राथमिक शाला के शिक्षको की इस नई प्रणाली मे कहाँ तक पहुँच है तथा प्रशासनिक तन्त्र इसे चलाने मे कितना सक्षम है—कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये यह दोनो बात आवश्यक होगी।

विशेषत यह भी आवश्यक होगा कि प्रत्येक शाला की विस्तृत योजना तैयार की जाय। यह योजना क्षेत्रीय, तालूका तथा जिला स्तर पर तैयार की जाय और उसकी वार्षिक प्रगति पर दृष्टि रखी जाय।

* * *

कमलनयन बजाज स्मृति

अन्तर-विश्वविद्यालयीन परिसम्वाद, वर्धा

शिक्षा मडल के तत्वावधान मे आयोजित द्वितीय कमलनयन बजाज स्मृति परिसम्वादमें 'शिक्षा में गाधीवादी मूल्य' विषय पर ४ और ५ जनवरी, १९७६ को डा श्रीमन्नारायण अध्यक्ष, शिक्षा मडल वर्धा के सभापतित्व में विचार विमर्श हुआ। भारत के विभिन्न राज्यो के ६५ विश्वविद्यालयों से आए हुए छात्र प्रतिनिधियो ने इस परिसवाद में भाग लिया। प्रतिनिधियो ने हिन्दी और अंग्रेजी—दोनो भाषाओ में अपने उच्च तर्कयुक्त एव भावनात्मक विचार उपयुक्त शैली मे व्यक्त किये।

परिसम्वाद के अन्त मे सर्वसम्मति से निम्न निर्णय लिए गये —

१ यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि भारत की वर्तमान शिक्षा-पद्धति स्वतंत्र भारत की वास्तविक आवश्यकताओ और उचित आकाक्षाओ को पूर्ण करने मे पूरी तरह विफल रही है। इस शिक्षा-पद्धति ने विद्यार्थियो को अपने देश मे ही विदेशी बना दिया है। अत गाधीवादी मूल्यो के मुताबिक इस शिक्षा-पद्धति मे आमूल परिवर्तन करना जरूरी है।

२ राष्ट्रपिता द्वारा सुझाई गई बुनियादी शिक्षा जन्म से मृत्यु तक चलने वाले जीवन के लिये और जीवन द्वारा प्रक्रिया थी। इसका उद्देश्य युवा पीढी के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास था, जिसमें शारीरिक, मानसिक एव आध्यात्मिक सभी मूल्यो का समावेश था। नैतिक मूल्यो की शिक्षा, सर्व-धर्म-समभाव, श्रम प्रतिष्ठा और सहकारी जीवनयापन—इस शिक्षा-नीति के मूलभूत सिद्धान्त थे। ऋषि विनोबा ने इन्ही तत्वो को योग, उद्योग और सहयोग की सज्ञा दी है। इस शिक्षा-पद्धति को इसके शुद्ध रूप मे सम्पूर्ण देश में और सभी स्तरो पर अमल में लाना अत्यन्त आवश्यक है।

३ बुनियादी शिक्षा का अर्थ केवल कताई और बुनाई के द्वारा शिक्षा देना नही है। महात्मा गाधी ने यह बात पूर्णरूपेण साफ कर दी थी कि शिक्षा का सम्बध उस क्षेत्र की सभी विकासशील क्रियाओ से होना चाहिये, ताकि विद्यार्थी उपयुक्त नागरिक बनने के लिये व्यवहारिक शिक्षण पा सकें और बाबूगिरी के पदो के पीछे न दौडें। ऐसी शिक्षा युवको मे स्वावलम्बन, आत्मविश्वास एव स्वदेशी की भावना को बढ़ायेगी। ऐसी बुनियादी शिक्षा किताबी एव परीक्षाप्रधान न होकर जीवन-केन्द्रित एव विकासोन्मुख होगी।

४. अब समय आ गया है जब कि शिक्षित-वर्ग एवं अशिक्षित जनता के बीच की खाई को उत्पादक शारीरिक श्रम, शोषण-रहित समाज एव लोक-सेवा से ओतप्रोत सामाजिक जिम्मेदारी पर आधारित इस बुनियादी शिक्षा के द्वारा पाटा जा सकता है।

५ सभी स्तरो पर शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा होना चाहिये। राष्ट्रभाषा हिन्दी और अँग्रेजी या अन्य कोई विदेशी भाषा भी अध्ययन के उचित स्तरो पर अच्छे ढग से सिखाई जानी चाहिये।

६. 'करते हुए सीखना' पर आधारित शिक्षा मे गाधीवादी मूल्यो को शहरी एव देहाती सपूर्ण क्षेत्रो मे लागू करना चाहिये। गाँवो की जनता को यह न लगे कि उनके बच्चो को कोई घटिया ढग की शिक्षा दी जा रही है।

७ स्त्री शिक्षा की, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रो में, बहुत आवश्यकता है। स्त्रियो को डिग्रियो की शिक्षा के बजाय व्यावहारिक गृह-विज्ञान व गृह-उद्योगो का प्रशिक्षण अधिक उपयोगी होगा।

८ यद्यपि वर्तमान विज्ञान एव तकनीकी शिक्षा पर उचित ध्यान देना चाहिये, तथापि नवीन शिक्षा पद्धति द्वारा भारतीय सस्कृति एव परम्परा के प्रति आदर के वातावरण का निर्माण होना जरूरी है। दूसरो शब्दो में, इस पद्धति म वर्तमान और अतीत, मानव अनुभव और उपलब्धियो के वतमान और प्राचीन काल क परिणामो का सम्यक् सयोग होना चाहिय।

९ वर्तमान परीक्षा-पद्धति की जगह वर्ग और वर्ग के अन्दर और बाहर किये गये विद्यार्थी के अध्ययन एव कार्य के दैनिक परीक्षण-पद्धति को अमल में लाना चाहिये। गुण देने की पद्धति की जगह केवल क्रम-निर्धारण की पद्धति लाने से कोई फायदा नही होगा। जायज या नाजायज किसी भी ढग से पदवी प्राप्त करने का पागलपन भूतकाल की चीज हो जानी चाहिये।

१० यह साफ जाहिर है कि गाधीवादी मूल्यो के समन्वय के बिना १०-२-३ की नवीन शिक्षा-पद्धति को क्रियान्वित करना निरर्थकता की एक महँगी कसरत होगी।

११ राजनीतिक दल अपने सकीर्ण स्वार्थो की सिद्धि के लिये शैक्षणिक सस्थाओ का शोषण न करें। जैसा कि महात्मा गाधी ने कई

बार दोहराया था, विद्यार्थी अन्वेषक बनें, राजनीतिज्ञ नही। शिक्षकों को भी दलगत राजनीति से दूर रहना चाहिये।

१२ अन्त में, शिक्षा का मूल उद्देश्य अनुशासन ईमानदारी, कार्यदक्षता एव देश-भक्ति के साथ विद्यार्थियो का चरित्र-निर्माण है। यह जीवन का चिर सत्य है कि उच्च उद्देश्यो की पूर्ति केवल शुद्ध साधनो से ही हो सकती है। सत्य एव अहिंसा पर इसी दृष्टि से गाधीजी ने इतना बल दिया था।

१३ किसी भी शिक्षा-पद्धति मे शिक्षको का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। अत शिक्षको के अन्तर्निहित गुणो का अच्छे ढग से विकास होना चाहिये। शिक्षा–सस्थाओ में व्याप्त वर्तमान भ्रष्टाचार को जडाई से खत्म करना निहायत जरूरी है।

१४ शिक्षा में गाधी–मूल्यो को बढावा देने के लिये भारत म मद्य-निषेध सर्वत्र समान रूप से अमल में लाना नितान्त आवश्यक है और चित्र-पटो से यौन और हिंसा के दृश्यो को बिलकुल निकाल देना चाहिये।

१५ विद्यार्थियो और उनके माता पिताओ को देश की शिक्षा-पद्धति की पुनर्रचना मे सक्रिय भाग लेना चाहिये।

१६ राष्ट्रीय सयोजन मे शिक्षा सुधार योजनाओ को उच्च प्राथमिकता देनी चाहिये, क्योकि मानव मे निवश (इनवेस्टमेन्ट) भौतिक वस्तुओ एव सेवाओ मे निवेश की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है।

* * *

सेवाग्राम आश्रम

राष्ट्रपिता गान्धीजी जहाँ-जहाँ रहे, भारतीयों के लिये वह स्थान पुण्य तीर्थ बन गया है। सेवाग्राम उन्हीं में से एक है। मगनवाडी वर्धा शहर के पक्के मकान को छोड कर बापू गाँव में निवास करने के लिये यहाँ आ गये थे। प्रारम्भ मे एक मकान बना था, जिसे 'आदि निवास' कहते हैं। जब आगतो की संख्या बढ गई, तब मीरा बहन ने अपनी कुटी बापू को रहने को दे दी और आप दूसरे स्थानपर चली गईं। इसी कुटी में बापू वर्षों तक रहे। यही कुटी अब 'बापू-कुटी' के नाम से प्रसिद्ध है। पूज्य बा और आगत अन्य बहनो की सुविधा के लिये एक छोटी-सी कुटी बना दी गई थी, जो 'बा-कुटी' कहलाती है।

इन तीनो भवनो को ठीक उसी रूप में आज भी रखा गया है, जिस रूप में बापू के समय में थे, ताकि दर्शक यह देख समझ सकें कि राष्ट्रपिता गाधी कैसे रहते थे।

आश्रम में पुरानी चहल-पहल का रहना तो सम्भव ही नहीं है, फिर भी आश्रम के तत्कालीन पवित्र वातावरण को बनाये रखने का प्रयत्न किया जाता है।

बापू के समकालीन आश्रमवासी श्री चिमनलालभाई, श्रीमती शकरीबाई, श्रीमती निर्मला गाधी, श्री अनन्तरामजी, श्री प्रभाकरजी, श्री शकरनजी आज भी आश्रम में रहते हैं।

प्रात. और सन्ध्या नियमित रूप से आश्रम-प्रार्थना होती है। सूत्रयज्ञ, विष्णु सहस्रनाम का सामूहिक पारायण, भजन-संगीत का कार्यक्रम भी रहता है।

प्रति माह सैकड़ों की संख्या में दर्शक सेवाग्राम आकर पावन बापू-कुटी का दर्शन कर प्रेरणा प्राप्त करते है। इनमें दर्जनों विदेशी दर्शक भी रहते हैं।

प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष भी अगस्त मास में सेवाग्राम मेडीकल कालेज में प्रवेश पानेवाले विद्यार्थियों के लिये दो सप्ताह का 'संस्कार शिविर' आश्रम की ओरसे चलाया गया। सितम्बर ७५ में महिलाओं का 'मद्य-निषेद शिविर' का आयोजन हुआ। नवम्बर ७५ में गुजरात-महाराष्ट्र के ४० बालक-बालिकाओं का शिविर आयोजित हुआ। गत दिसम्बर में गांधी स्मारक निधि की ओरसे भारत के ३७५ रचनात्मक कार्यकर्ताओं का चार दिवसीय सम्मेलन श्री श्रीमन्नारायणजी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

आश्रम के निकट 'यात्री-निवास' भवन बनाने की योजना केन्द्रीय सरकार की ओरसे कार्यान्वित हो रही है। इस काम में सेवाग्राम प्रतिष्ठान के अध्यक्ष श्री श्रीमन्नारायणजी रस ले रहे हैं।

प्रतिष्ठान के मंत्री श्री प्रभाकरजी गाँव वालो के साथ मद्य-निषेद पर चर्चा कर रहे हैं, साथ ही मकान, संडास, भूमि-वितरण के कार्यों में भी सहायक हो रहे हैं।

* * *

धनुष-बाणका संयोग

वृद्धा में और नौजवानोंमें विचारोंका मल न होना तो खुशीकी बात है। नौजवानो का विचार तो वृद्धाके विचारसे आगे चलना ही चाहिए, वर्ना प्रगति रुक जायगी। पर ज्ञान हासिल करने का सर्वोत्तम जरिया वृद्धों की सेवा है—ऐसा सनातन अनुभव रहा है। वृद्ध सेवा के बिना ज्ञान द्वार नही खुलता। पिता के विचारो से पुत्र का मत भेद जरूर हो, पर वह पिता की सेवा के लिये व्याकुल रहे।

वृद्धो और नौजवानो का सम्बन्ध धनुष-बाण का-सा होना चाहिए। वृद्ध धनुष है और नौजवान बाण! बाण धनुष के पास ठहरता नही है आगे ही जाता है, पर आगे जाने के लिए मजबूत धनुष का सहारा चाहिए। बाण को वेग और गति धनुष से ही मिलती है।

—विनोबा

मुद्रक प्रभाकरराव लोंढे, राष्ट्रभाषा प्रेस वर्धा

नयी तालीम

गोपालन सहकारी हो

भारतीय संस्कृति का आदेश

भविष्य के दर्शन की झांकी

प्राणि-मात्र का संरक्षण

'दुर्लभं भारते जन्म'

पुस्तक-समीक्षा

सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान

अखिल भारत नयी तालीम समिति

सेवाग्राम

वर्ष : २४] जून–जुलाई, १९७६ [अंक : ६

विविध पुष्पो का व्यक्तित्व कायम रखकर प्रेम के अदृश्य धागे के द्वारा एक माला तैयार की जाती है।

पूज्य विनोबाजी ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि जिलो व प्रान्तों में सर्वोदय मडल अपना रचनात्मक कार्य जारी रख सकते हैं। केन्द्रीय सर्वोदय समाज वर्ष में दो बार देश के विभिन्न भागो मे सम्मेलन आयोजित करता रहे। इन प्रेम-सम्मेलनो में विविध विषयो पर खुली चर्चा हो विचारो व अनुभवो का आदान प्रदान हो, किन्तु कोई प्रस्ताव पारित न किये जायँ।

सर्वोदय समाज का जन्म मार्च १९४८ के सेवाग्राम सम्मेलन मे हुआ था। उसका नामकरण विनोबाजी ने ही किया था। उसके सदस्य बनने क लिए केवल एक ही शर्त रखी गयी थी— साधन-शुद्धि में श्रद्धा। इस वक्त भी सर्वोदय सम्मेलनो का आयोजन सर्वोदय समाज द्वारा ही किया जाता है। उसका सिर्फ एक सयोजक है, अध्यक्ष या मत्री नहीं। इसी मस्था या भाई-चारे को मजबूत व व्यापक बनाना कई दृष्टि से हितकर होगा।

सन् १९४८ के सेवाग्राम सम्मेलन में सर्व सेवा सघ को भी स्थापित किया गया था। उसके जनक ऋषि विनोबा ही थे। धीरे धीरे करीब सभी रचनात्मक सघ उसमें विलीन होते गये, ताकि कार्यकर्ताओ की शक्ति एकत्र होकर समग्र बन सके। सर्व सेवा सघ ने पिछले अठारह वर्षो में कई प्रकार के ठोस कार्य भी किये, जिनमें भूदान ग्रामदान आन्दोलनो का विशेष महत्व है। चम्बल घाटी में बागियो के समपण की प्रक्रिया भी ऐतिहासिक मानी जानी चाहिए। दो वर्ष पहले ही पूज्य विनोबाजी ने आशा प्रकट की थी कि सर्व सेवा सघ पूज्य गांधीजी की कल्पना का 'लोक सेवक सघ' बन सकेगा और एक हजार वर्ष तक सर्वोदय का जीवन-दर्शन फैलाता रहेगा। किन्तु पिछले दो वर्षो में जो घटनाएँ हुईं, उनसे संघ के सदस्यो में इतनी गहरी दरार पड गई कि अब उस पाटना लगभग अशक्य हो गया है। हम इस घटना को आपात्कालीन स्थिति से भी ज्यादा दुखद व अमगल कार्य समझते हैं। हमारा विश्वास है कि

यदि गाधी-परिवार एक बना रहता, तो राष्ट्र की वर्तमान दयनीय व चिन्ताजनक स्थिति पैदा ही न होती।

जो हो, अभी भी हमारा यही प्रयत्न होना चाहिए कि कठिन परिस्थिति होते हुए भी सर्वोदय-परिवार की एकता कायम रहे और सर्व सेवा सघ फिर एक शक्तिशाली सस्था के रूप म भारत की रचनात्मक सेवा करता रहे। 'सब को सन्मति द भगवान।'

गोवध-बन्दी की भूमिका :

भारतीय सविधान की ४८ वी धारा में राज्यो को यह निश्चित आदेश दिया गया है कि वे कृषि और पशु-पालन को वैज्ञानिक ढग से सगठित करने के लिए गोसवर्धन की ओर विशेष ध्यान द और गायो बछड-बछडियो तथा बैलो के वध को बद करे। १९५८ म सुप्रीम कोर्ट ने अपने एक निर्णय को जाहिर करते हुए यह स्पष्ट कर दिया कि सविधान की धारा के अनुसार गायो तथा बछडे-बछडियो को पूरा सरक्षण देना चाहिए। साथ-ही-साथ उपयोगी बैलो का भी वध बद हो। यह कानून सिर्फ अनुपयोगी बैलो के लिए लागू नही होगा।

पिछले पच्चीस वर्षों म काफी राज्यो ने गोवध-सम्बन्धी कानून बनाये है—आसाम, बहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, हरियाना, पजाब, जम्मू-काश्मीर, गुजरात, उडीसा और कर्नाटक में गोवध कानूनन बद किया है। महाराष्ट्र में, विदर्भ को छोडकर अन्य क्षेत्रो म गोवध-बदी कानून अभी तक नहीं बनाया गया है। पश्चिम बगाल म भी इस प्रकार का कानून नही है, सिर्फ कलकत्ते के म्युनिसिपल क्षेत्र में उपयोगी गाय-बैल का वध करना मना है। किन्तु वहाँ भी हर साल हजारो अच्छी नस्ल की गायें कट रही हैं। केरल में अभी तक गोवध सम्बन्धी कोई विशेष कानून नही बनाया गया है, सिर्फ पचायत एक्ट में उपयोगी जानवरो का वध करना मना है। तामिलनाडु के कानून के अनुसार अनुपयोगी बैलो के साथ गायो का भी वध किया जा सकता है। आन्ध्र प्रदेश के तिलगाना क्षेत्र में निजाम के जमाने से गोवध-बदी है, किन्तु शेष भाग में इस प्रकार का कोई कानून नही बना है। हिमाचल प्रदेश में अभी तक तो कोई कानून नही है, किन्तु वहाँ गायो को कत्ल न करने की परम्परा

अनुक्रम

हमारा दृष्टिकोण
गोपालन सहकारी हो — २५० महात्मा गांधी
भारतीय संस्कृति का आदेश — २५३ विनोबा
भविष्य के दर्शन की झाँकी — २५७ जवाहरलाल नेहरू
प्राणि मात्र का संरक्षण — २५९ जानकीदेवी बजाज
'दुर्लभ भारते जन्म' — २६१ श्रीमन्नारायण
ग्रामानुभव की संकल्पना और व्यवहार — २६७ वजूभाई पटेल
'जन-जन का सम्मान बढ़े नित' — २७१ मदालसा नारायण
सयानों की तालीम — २७६ श्रीमती शान्ता नारुलकर
पुस्तक समीक्षा
Education for today & tomorrow — २८१
सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान — २८९

जून-जुलाई, '७६

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक शुल्क बारह रुपये है और एक अंक का मूल्य २ रु० है।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी संख्या लिखना न भूलें।
- 'नयी तालीम' में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री प्रभाकरजी द्वारा अ० भा० नयी तालीम समिति, सेवाग्राम के लिए प्रकाशित और
राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा में मुद्रित

हमारा दृष्टिकोण

सर्व सेवा सघ का भविष्य

३० जून और १ जुलाई को लगभग सवा वर्ष बाद सर्व सेवा सघ का अधिवेशन पवनार में हुआ। अपने उद्घाटन भाषण में पूज्य विनोबाजी ने सुझाया कि सारी परिस्थिति को देखते हुए यही हितकर होगा कि संघ का विसर्जन किया जाय। इस बारे में चर्चा हो, किन्तु अन्तिम निर्णय तभी लिया जाय, जब सब साथी जेल से रिहा हो जायँ और अपनी राय जाहिर कर सकें।

वर्ष : २४
अंक : ६

तदनुसार दो दिन तक सघ के भविष्य के बारे में गभीर चर्चा हुई। कई प्रकार के सुझाव पेश किये गये। चर्चा के दरम्यान यह स्पष्ट दीख पड़ा कि सदस्यो में आपसी मतभेद के अलावा हृदय-भेद व मन-भेद भी हो गया है। आपसी कटुता की वजह से ही विनोबाजी ने यह सलाह दी कि सघ का विसर्जन कर दिया जाय, ताकि सभी कार्यकर्ता अपनी रुचि व मनोवृत्ति के अनुसार विभिन्न प्रकार के रचनात्मक कार्य कर सकें। उदाहरण देते हुए उन्होने समझाया कि पाश्चात्य सभ्यता फूल के गुच्छे की-सी है, जिसमें कई तरह के पुष्पो को रस्सी से बाँध कर एक गुलदस्ता बनाया जाता है। किन्तु भारतीय परम्परा फूलो की माला की संस्कृति है, जिसमें

विविध पुष्पो का व्यक्तित्व कायम रखकर प्रेम के अदृश्य धागे के द्वारा एक माला तैयार की जाती है।

पूज्य विनोबाजी ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि जिलो व प्रान्तों म सर्वोदय मडल अपना रचनात्मक कार्य जारी रख सकते हैं। केन्द्र मे सर्वोदय समाज वर्ष में दो वार देश के विभिन्न भागो मे सम्मेलन आयोजित करता रहे। इन प्रेम-सम्मेलनो मे विविध विषयो पर खुली चर्चा हो, विचारो व अनुभवो का आदान-प्रदान हो, किन्तु कोई प्रस्ताव पारित न किये जायँ।

सर्वोदय समाज का जन्म मार्च १९४८ के सेवाग्राम सम्मेलन म हुआ था। उसका नामकरण विनोबाजी ने ही किया था। उसके सदस्य बनने के लिए केवल एक ही शर्त रखी गयी थी— साधन-शुद्धि में श्रद्धा। इस वक्त भी सर्वोदय सम्मेलनो का आयोजन सर्वोदय समाज द्वारा ही किया जाता है। उसका सिर्फ एक सयोजक है, अध्यक्ष या मत्री नही। इसी सस्था या भाई-चारे को मजबूत व व्यापक बनाना कई दृष्टि से हितकर होगा।

सन् १९४८ के सेवाग्राम सम्मेलन म सर्व सेवा सघ को भी स्थापित किया गया था। उसके जनक ऋषि विनोबा ही थे। धीरे-धीरे करीब सभी रचनात्मक सघ उसमें विलीन होते गये, ताकि कार्यकर्ताओं की शक्ति एकत्र होकर समग्र वन सके। सर्व सेवा सघ ने पिछले अठारह वर्षो में कई प्रकार के ठोस कार्य भी किये, जिनमें भूदान-ग्रामदान आन्दोलनो का विशेष महत्व है। चम्बल घाटी में बागियो के समर्पण की प्रक्रिया भी ऐतिहासिक मानी जानी चाहिए। दो वर्ष पहले ही पूज्य विनोबाजी ने आशा प्रकट की थी कि सर्व सेवा सघ पूज्य गाँधीजी की कल्पना का 'लोक सेवक सघ' वन सकेगा और एक हजार वर्ष तक सर्वोदय का जीवन-दर्शन फैलाता रहेगा। किन्तु पिछले दो वर्षो में जो घटनाएँ हुईं, उनसे संघ के सदस्यो में इतनी गहरी दरार पड गई कि अब उसे पाटना लगभग अशक्य हो गया है। हम इस घटना को आपात्कालीन स्थिति से भी ज्यादा दुखद व अमगल कार्य समझते हैं। हमारा विश्वास है कि

यदि गांधी-परिवार एक बना रहता, तो राष्ट्र की वर्तमान दयनीय व चिन्ताजनक स्थिति पैदा ही न होती।

जो हो, अभी भी हमारा यही प्रयत्न होना चाहिए कि कठिन परिस्थिति होते हुए भी सर्वोदय-परिवार की एकता कायम रहे और सर्व सेवा संघ फिर एक शक्तिशाली संस्था के रूप में भारत की रचनात्मक सेवा करता रहे। 'सब को सन्मति दे भगवान।'

गोवध-बन्दी की भूमिका :

भारतीय संविधान की ४८ वीं धारा में राज्यों को यह निश्चित आदेश दिया गया है कि वे कृषि और पशु-पालन को वैज्ञानिक ढंग से संगठित करने के लिए गोसंवर्धन की ओर विशेष ध्यान दें और गायों, बछड़े-बछड़ियों तथा बैलों के वध को बंद करें। १९५८ में सुप्रीम कोर्ट ने अपने एक निर्णय को जाहिर करते हुए यह स्पष्ट कर दिया कि संविधान की धारा के अनुसार गायों तथा बछड़े-बछड़ियों को पूरा संरक्षण देना चाहिए। साथ-ही-साथ उपयोगी बैलों का भी वध बंद हो। यह कानून सिर्फ अनुपयोगी बैलों के लिए लागू नहीं होगा।

पिछले पच्चीस वर्षों में काफी राज्यों ने गोवध सम्बन्धी कानून बनाये हैं—आसाम, बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, हरियाना, पंजाब, जम्मू-काश्मीर, गुजरात, उड़ीसा और कर्नाटक में गोवध कानूनन बंद किया है। महाराष्ट्र में, विदर्भ को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में गोवध-बंदी कानून अभी तक नहीं बनाया गया है। पश्चिम बंगाल में भी इस प्रकार का कानून नहीं है, सिर्फ कलकत्ते के म्युनिसिपल क्षेत्र में उपयोगी गाय-बैल का वध करना मना है। किन्तु वहाँ भी हर साल हजारों अच्छी नस्ल की गायें कट रही हैं। केरल में अभी तक गोवध सम्बन्धी कोई विशेष कानून नहीं बनाया गया है, सिर्फ पंचायत एक्ट में उपयोगी जानवरों का वध करना मना है। तामिलनाडु के कानून के अनुसार अनुपयोगी बैलों के साथ गायों का भी वध किया जा सकता है। आन्ध्र प्रदेश के तिलंगाना क्षेत्र में निजाम के जमाने से गोवध-बंदी है, किन्तु शेष भाग में इस प्रकार का कोई कानून नहीं बना है। हिमाचल प्रदेश में अभी तक तो कोई कानून नहीं है, किन्तु वहाँ गायों को कत्ल न करने की परम्परा

है। यही हाल पूर्वीय क्षेत्र मणिपुर और त्रिपुरा का है। नागालैण्ड में अभी तक इस सम्बन्ध में कोई कानून बनाया ही नही गया है।

ऋषि विनोबा बहुत वर्षों से समूचे देश मे गोवध-बंदी की मांग करते आये हैं। गत २५ अप्रैल को महाराष्ट्र आचार्यकुल सम्मेलन में भाषण देते हुए उन्होंने कहा था —

"गोरक्षा का ख्याल रखना होगा। साइंस के कारण आज दुनिया छोटी बनी है। इसलिए इधर का असर उधर होता है और उधर का इधर। आप जानते हैं, अभी 'तेलास्त्र का प्रक्षेपण' हो गया। तेल भेजना बंद किया, तो एकदम अमरीका, ब्रिटेन, फ्रान्स सब पर, यहाँ तक कि भारत पर भी उसका असर हुआ। तो हमने गो-शक्ति से ऊर्जा खडी करने की बात बताई, तो जरा शान्ति हुई। गाय के गोबर का गैस प्लाट हो सकता है। गाय का उपयोग कई प्रकार से हो सकता है। गोबर-गैस से ऊर्जा खडी हो सकती है, खाद मिल सकती है। बैल के द्वारा खेती हो सकती है। गाय की मृत्यु के बाद उसके चमडे के जूते बन सकते हैं। गाय का दूध मिल सकता है। इस तरह उसका पूरा उपयोग हो सकता है। इसलिए गोरक्षा पूरी तरह से करें, यह बात बाबा ने बता दी है। आचार्यों को समझना चाहिये कि वे एकांगी नही बन सकते। जो काम वे करेंगे, वह समग्रता से करना चाहिए। जितने भी पहलू उस काम के होंगे, उन सबका स्पर्श होना चाहिये। तो गोरक्षा की जिम्मेदारी भी आचार्यों की है—यह बात समझनी चाहिये।"

तारीख १३ जून को अखिल भारत कृषि-गोसेवा संघ की कार्य-समिति की बैठक को सम्बोधित करते हुए पूज्य विनोबाजीने कहा :—

"गोहत्या भारत में न हो, यह भारतीय संस्कृति का आदेश है। भारतीय संविधान में गोहत्या-बंदी का निर्देश है।

सत्ता कांग्रेस ने गाय-बछडा अपना चुनाव-चिन्ह रखा है।"

विनोबाजी ने यह भी समझाया — "कुरान में यह स्पष्ट आदेश दिया गया है कि हमें कत्ल नही करना चाहिए। बाइबिल में भी सेन्ट ‍१ का वचन है— "अगर मेरे साथी को मेरा मांसाहार करना बुरा

लगना है, तो मैं मासाहार नहीं करूँगा।" सिखों के आखिरी गुरु हैं—गोविन्द सिंह। गोविन्द तो गाय को मारनेवाला हो ही नहीं सकता। तात्पर्य यह है कि हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी, सिख गोवध बंद करने के पक्ष में हैं। अत सारे देश में गाय की हत्या तो बंद होनी ही चाहिए।"

भारत मे गो-संवर्धन का महत्व स्वाभाविक है। राष्ट्रीय आर्थिक संयोजन की नीव कृषि है, और कृषि की रीढ की हड्डी गाय और बैल हैं। कुछ वर्ष पहले जब मैं जापान गया था, तब मैंने पाया कि छोटे-बड़े ट्रैक्टरों के स्थान पर वहाँ के किसान गाय और बैल का व्यापक उपयोग करने लगे हैं। पूछने पर जापानी किसानों ने उत्तर दिया—"पहले हम मशीनों और कृत्रिम खादों का अधिक उपयोग करते थे। अनुभव से हमने देखा कि ऐसा करने में हमारी हजारों एकड़ जमीन बरबाद हो गई। अब हम गाय और बैल से खेती करते हैं। ये एक प्रकार से सर्वोत्तम ट्रैक्टर हैं, क्योंकि न तो इनके कल-पुर्जे बदलने की जरूरत होती है, और न किसी मैकेनिक की। इसके अलावा गाय हमें स्वास्थ्यप्रद दूध देती है और हमारे खेतों की जमीन को अधिक उपजाऊ बनाने के लिए उनसे उपयोगी गोबर भी मिल जाता है।" और फिर वहाँ के किसानों ने मुस्कराकर कहा —"साहब, मशीन न तो दूध देती है, और न खाद के लिए गोबर।" भारत मे तो हम केवल गायों की पूजा करते हैं, लेकिन उनके विकास की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं देते। जापान में गो-पालन बहुत सावधानी से किया जाता है, क्योंकि गाय वहाँ के ग्रामीण जीवन का अविभाज्य अंग बन गयी है।]

आचार्य विनोबाजी की हार्दिक इच्छा है कि उनके अगले जन्म-दिन, ११ सितम्बर के पहले भारत सरकार की ओर से देश भर में गोवध-बंदी का निर्णय घोषित कर दिया जाय। हम आशा करते हैं कि इस सम्बन्ध में भारत की प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी और ऋषि विनोबा के बीच शीघ्र ही सीधी बातचीत शुरू होगी, ताकि कोई ठोस निर्णय निश्चित तिथि के पहले ही लिया जा सके। इस विषय को

राजनीतिक दृष्टिसे न देखा जाय, और विरोधी दल पूज्य विनोबाजी की गोवध-बंदी की माँग का राजनीतिक फायदा उठाने का प्रयत्न न करें। इस माँग पर किसी प्रकार की साम्प्रदायिकता का रंग चढाने की कोशिश भी न की जाय। ऋषि विनोबा की माँग राष्ट्रीयता, सस्कारिता और वैज्ञानिकता से ओतप्रोत है। हम पूरी श्रद्धा है कि भारत सरकार, सभी राज्य सरकार और देश की आम जनता इस माँग को इसी दृष्टि से देखेंगी।

शिक्षा की नयी पद्धति -

कोठारी कमीशन ने यह सिफारिश की थी कि दस वर्ष के प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षण के बाद दो वर्ष का उच्च माध्यमिक शिक्षण दिया जाय, जिसमें विद्यार्थियो को तकनीकी व व्यावहारिक पाठ्यक्रमो को पूरा करने का अवसर मिले। कमीशन की यह धारणा थी कि कम से कम पचास फीसदी विद्यार्थी इस प्रकार के व्यावहारिक पाठ्यक्रमो को पूरा करके काम में लग जाय और कालेजो तथा विश्वविद्यालयो मे प्रवेश पाने की इच्छा न रखे। जिन नवयुवको मे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विशेष योग्यता हो, वे युनिवर्सिटियो में अवश्य जा सकगे। अक्टूबर १९७२ में सेवाग्राम में जो राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन हुआ था, उसमें भी इस शिक्षाक्रम को पसन्द किया गया था। भारत सरकार व सभी राज्य सरकारो ने अब इस नयी शिक्षा-पद्धति को स्वीकार कर लिया है।

किन्तु हमें खेद है कि १०—२—३ के शिक्षाक्रम में बीच के दो वर्ष की ओर आवश्यक ध्यान नही दिया जा रहा है। राज्य सरकारो नें अधिकतर इन दो वर्षों में पुराने ढग के ही आर्टस, साइ स, कामर्स आदि के पाठ्यक्रम चालू कर दिये है और तकनीकी पाठ्यक्रमो के प्रशिक्षण का कोई विशेष प्रबंध नही किया जा रहा है। इसका परीणाम यह होगा कि कई राज्यो में विद्यार्थियो को एक वर्ष अधिक अध्ययन करने का खर्च उठाना होगा, लेकिन शिक्षित बेकारो की समस्या का कोई व्यावहारिक हल न निकल सकेगा। कालेजो में प्रवेश के लिये नवयुवको की भीड लगी रहेगी और इस प्रकार यह नयी शिक्षा-पद्धति एक मँहगी विफलता साबित होगी।

कुछ समय पहले केन्द्रीय शिक्षा और ट्रेनिंग की राष्ट्रीय काउंसिल ने 'प्लस टू' पाठ्य-क्रमों को बनवाने के लिये एक विशेष संगोष्ठी दिल्ली में आयोजित की थी। इस संगोष्ठी में कई राज्य सरकारों ने कई उपयोगी सुझाव भी दिये हैं। दरअसल, इस प्रकार की संगोष्ठी दो वर्ष पहले ही आयोजित करनी चाहिए थी। जो हो, हम आशा करते हैं कि अब सभी राज्य सरकारें इस ओर खास ध्यान देंगी, ताकि नयी शिक्षा-पद्धति का सफलतापूर्वक कार्यान्वयन किया जा सके और हमारी शिक्षा-प्रणाली को एक नयी और उपयोगी दिशा प्राप्त हो।

गोवध-बंदी कानून

[भारत सरकार द्वारा प्राप्त जानकारी से]

१, धारा ४८ के अंतर्गत पूरी गोवध-बंदी है—

१. राजस्थान, २. जम्मू-काश्मीर, ३ पंजाब, ४ हरियाना, ५ चंडीगढ, ६ उत्तरप्रदेश, ७ दिल्ली, ८ बिहार, ९ मध्यप्रदेश, १०. गुजरात, ११ तेलंगाना (आंध्र), १२, विदर्भ-मराठवाडा (महाराष्ट्र,) १३ कर्नाटक, १४ उड़ीसा

२, कानून नहीं है, लेकिन परम्परा से गोवध बंद है

१. आंध्र, २ मणिपुर, ३ हिमाचल प्रदेश, ४ आंदमान-निकोबार, ५. त्रिपुरा

३, आंशिक बंदी

१. पश्चिम-बंगाल २ तमिलनाडु, ३. असम, ४ मिझोरम, मेघालय

४ गोवध-बंदी कानून नहीं

१ केरल, २ महाराष्ट्र, ३ गोवा, ४ पांडेचेरी, ५ अरुणाचल, ६. लखदीव बेट, ७. नागालैंड ८ दादरा-हवेली.

महात्मा गांधी :

गोपालन सहकारी हो :

प्रत्येक किसान अपने घरमें गाय-बैल रखकर उनका पालन भली-भाँति और शास्त्रीय पद्धतिसे नहीं कर सकता। गोवंशके ह्रास के अनेक कारणों में व्यक्तिगत गोपालन भी एक कारण रहा है। यह बोझ वैयक्तिक किसानकी शक्ति के बिलकुल बाहर है।

मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि आज संसार हर एक काम में सामुदायिक रूप से शक्ति का संगठन करने की ओर जा रहा है। इस संगठन का नाम सहयोग है। बहुत-सी बातें आज कल सहयोग से हो रही हैं। हमारे मुल्क में भी सहयोग आया तो है, लेकिन वह ऐसे विकृत रूप में आया है कि उसका सही लाभ हिन्दुस्तान के गरीबों को बिलकुल नहीं मिलता।

हमारी आबादी बढ़ती जा रही है और उसके साथ किसान की व्यक्तिगत जमीन कम होती जा रही है। नतीजा यह हुआ है कि प्रत्येक किसान के पास जितनी चाहिए उतनी जमीन नहीं है। जो है, वह उसकी अड़चनों को बढ़ानेवाली है। ऐसा किसान अपने घर में या खेत पर गाय बैल नहीं रख सकता। रखता है, तो अपने हाथों अपनी बरबादीको न्योता भी देता है। आज हिन्दुस्तान की यही हालत है। धर्म, दया या नीति की परवाह न करनेवाला अर्थशास्त्र तो पुकार-पुकार कर कहता

है कि आज हिन्दुस्तान में लाखो पशु मनुष्यको खा रहे है। क्योंकि उनसे कुछ लाभ नही पहुँचने पर भी उन्हें खिलाना तो पडता ही है। इसलिए उन्हें मार डालना चाहिये। लेकिन धर्म कहो, नीति कहो या दया कहो, ये हमें इन निकम्मे पशुओको मारने से रोकते हैं।

इस हालतमें क्या किया जाये? यही कि जितना प्रयत्न पशुओ को जीवित रखने और उन्हें बोझ न बनने देने का हो सकता है, उतना किया जाय। इस प्रयत्न में सहयोग का बडा महत्व है। सहयोग अथवा सामुदायिक पद्धति से पशु-पालन करने से —

१ जगह बचेगी। किसानको अपने घरमें पशु नहीं रखने पडेंगे। आज तो जिस घर में किसान रहता है, उसी में उसके सारे मवेशी भी रहते हैं। इससे हवा बिगडती है और घर में गंदगी रहती है। मनुष्य पशु के साथ एक ही घर में रहने के लिए पैदा नही किया गया है। ऐसा करने में न दया है, न ज्ञान।

२ पशुओकी वृद्धि होने पर एक घरमें रहना असम्भव हो जाता है। इसलिए किसान बछडेको बेच डालता है और भैंसे या पाडेको मार डालता है, या मरनेके लिए छोड देता है। यह अधमता है। सहयोग से यह रुकेगा।

३ जब पशु बीमार होता है, तब व्यक्तिगत रूपसे किसान उसका शास्त्रीय उपचार नही करवा सकता। सहयोग से ही चिकित्सा सुलभ होती है।

४ प्रत्येक किसान साँड नही रख सकता। सहयोग के आधार पर बहुत से पशुओ के लिए एक अच्छा साँड रखना सरल है।

५ प्रत्येक किसान गोचर भूमि तो ठीक, पशुओ के लिए व्यायाम की, यानी हिरने फिरने की भूमि भी नही छोड सकता, किन्तु सहयोग के द्वारा ये दोनो सुविधायें आसानीसे मिल सकती हैं।

६ व्यक्तिगत रूप में किसान को घास इत्यादि पर बहुत खर्च करना पडता है। सहयोग के द्वारा कम खर्च में काम चल जायगा।

७ किसान व्यक्तिगत रूप मे अपना दूध आसानीसे नही बेच सकता। सहयोग के द्वारा उसे दाम भी अच्छे मिलेगें और वह दूध में पानी वगैरा मिलाने के लालच से भी बच सकेगा।

८ व्यक्तिगत रूप में किसान के लिए पशुओ की परीक्षा करना असम्भव है किन्तु गाँव भर के पशुओ की परीक्षा सुलभ है और उनकी नसल के सुधार का प्रश्न भी आसान हो जाता है।

९ सामुदायिक या सहयोगी पद्धति के पक्ष में इतने कारण पर्याप्त होने चाहिये। परतु सबसे बडी और सचोट दलील तो यह है कि व्यक्तिगत पद्धति के कारण ही हमारी और पशुओ की दशा आज इतनी दयनीय हो उठी है। उसे बदल दे, तो हम भी बच सकते हैं और पशुओ को भी बचा सकते हैं।

मेरा तो विश्वास है कि जब हम अपनी जमीन को सामुदायिक पद्धति से जोतगे, तभी उससे फायदा उठा सकेगे। गाँव की खेती अलग-अलग सौ टुकडो में बँट जाय, इसके बनिस्बत क्या यह बेहतर नही होगा कि सौ कुटुम्ब सारे गाँव की खेती सहयोग से करे और उसकी आमदानी आपस में बाँट लिया करे ? और जो खेती के लिए सच है, वह पशुओ के लिए भी सच है।

यह दूसरी बात है कि आज लोगो को सहयोग की पद्धति पर लाने में कठिनाई है। कठिनाई तो सभी सच्चे और अच्छे कामो मे होती है। गो-सेवा के सभी अग कठिन है। कठिनाइयाँ दूर करने से ही सेवा का मार्ग सुगम बन सकता है। यहां तो मुझे इतना ही बताना था कि सामुदायिक पद्धति क्या चीज है और यह कि वैयक्तिक पद्धति गलत है और सामुदायिक सही है। व्यक्ति अपने स्वातन्त्र्यकी रक्षा भी सहयोग को स्वीकार करके ही कर सकता है। अतएव सामुदायिक पद्धति अहिंसात्मक है, वैयक्तिक हिंसात्मक।

हरिजन १५-२-१९४२

विनोबा :

भारतीय संस्कृति का आदेश :

भारत में गोहत्या बंद होनी चाहिए, इस विषय में बाबा ने दो पत्रक निकाले हैं। वे पत्रक आप सब लोगों ने पढ़े होंगे। इसलिए उस विषय में खास कहने का रहता नहीं। जो कुछ है, वह करने का बाकी है।

नंबर एक—गोहत्या भारत में न हो, यह भारतीय संस्कृति का आदेश है। नंबर दो—भारतीय संविधान में गोहत्या-बंदी का निर्देश है। नंबर तीन—सत्ता काँग्रेस ने गाय-बछड़ा अपना चुनाव-चिन्ह माना है। ये तीन बातें पर्याप्त हैं गोहत्या-बंदी क्यों होनी चाहिए—यह समझने के लिए।

कुछ लोगों का ख्याल है कि मुसलमान खिलाफ जायेंगे। यहाँ तक कि गांधीजी का नाम हमको बताते हैं। इन सज्जनों को मालूम नहीं है। गाँधीजी ने कहा था कि मेरे दो वचनों में फरक मालूम हो, तो मेरा आखिरी वचन प्रमाण मानें। गांधीजी को समझनेवाले जो कुछ लोग होंगे भारत में, उनसे इस सिलसिले में बाबा को कम जानकारी नहीं है। लेकिन, फिर भी बाबा गांधी जी के नाम से कुछ नहीं कहता। बाबा तो अपने को जो ठीक लगता है, वह कहता है। क्योंकि जब गांधीजी भगवान के पास गये होंगे, तब भगवान ने उनसे यह नहीं पूछा होगा कि बाबा ने क्या-क्या गलतियाँ कीं। और जब बाबा भगवान के पास जायेगा, तब भगवान बाबा से यह नहीं पूछेगा कि गांधीजी ने क्या-क्या गलतियाँ कीं। कुरान में एक बहुत सुन्दर कहानी है इस विषय में। बहुतों का

रक्षा है और बैल को पूर्ण सरक्षण नही है। निरुपयोगी बैल को काट सकते है, ऐसा सुप्रीम कोर्ट का कहना है। वह बाबा को मजूर नही है, फिर भी बाबा उसके लिए उपवास नही करेगा। उपवास तो मिनिमम (कम-से-कम) चीज के लिए करना होता है। तो सुप्रीम कोर्ट का जजमेंट —न्याय-बाबा को मजूर न होने पर भी बाबा उसके लिए उपवास नही करेगा। दुर्बल बैल भी रक्षा के पात्र है, यह बात बाबा के साथी लोगो को समझाते रहेगे।

प्रश्न —यहाँ पर मास न खानेवाले की जमात है, सो आप उन लोगो के भी विचार जाने, जो मास खाते है।

उत्तर —मासाहार छोडने की बात बाबा नही कर रहा है। सिर्फ गो-मास मत खाओ—यह रहा है। सब प्रकार का मासाहार छोडना चाहिए, यह जैनो का विचार है। वह दुनिया को बडी देन है। लेकिन वह जरा आगे की बात है। फिलहाल, गोमास नही खाना— इतनी ही बात है।

(जून १२, १९७६, अखिल भारत कृषि-गो-सेवा सघ की बैठक मे)

गाय से बैल,
बैल से खेती,
खेती से प्राणि मात्र का पोषण !
गाय जियें
हम सब जियें।
'सब को सम्मति दे भगवान !'

—जानकीदेवी बजाज

जवाहरलाल नेहरु :

भविष्य के दर्शन की झाँकी :

(पंडित जवाहरलालजी ने पंढरपुर सर्वोदय सम्मेलन के लिए यह संदेश १८ एप्रिल सन १९५४ को भेजा था।)

जब कि सारे भारत में चारों ओर उद्वेग उत्पन्न हो रहा है, पंचवर्षी योजना के सिलसिले में खेती सुधार करने की, छोटे-बड़े उद्योग खड़े करने की, समाज-सुधार और समाज कल्याण की प्रवृत्तियों की सरगरमी पैदा हो गई है, राजनैतिक और आर्थिक विवादों की धूम है, भाषा और राज्य-सीमाओं को लेकर विवाद छिड़े हैं, एकता भंग करनेवाली प्रवृत्तियों और एकता का रक्षण करने वाली अपीलों तथा निराशाओं और असहमतियों का जोर शोर है, जब सारा भारत मानो अपने में प्रबुद्ध है और गतिमान दृश्य में बदल गया है, विनोबाजी की क्षीण काय मूर्ति शक्ति की चट्टान की तरह अडिग, नम्र और विनयशील खड़ी है। उनमें प्राचीन भारत की सामर्थ्य की झलक है और उनकी आँखोंमें भविष्य के दर्शन की झाँकी है। हम तुच्छ व्यक्तियों को यह अधिकार नहीं है कि हम उनके विषय में कोई निर्णय करें, भले ही कई बातों में हमारा उनसे मतैक्य या मतभेद हो, क्योंकि वे ऐसे तुच्छ निर्णयों से परे हैं। गांधीजी और भारत की आत्मा एवं परम्परा का जैसा प्रतिनिधित्व वे करते हैं, वैसा दूसरा कोई नहीं करता।

सारांश, नंबर एक—गोहत्या-बंदी के लिए भारतीय संस्कृति का आदेश है, नंबर दो—भारतीय संविधान का निर्देश है, नंबर तीन—गाय और बछड़ा कांग्रेसवालों का चिन्ह है।

* * * *

प्रश्न—वर्तमान स्थिति में अखबारों के सम्बंध में आपने समझाया, पर सर्वसाधारण हम सब लोग गोवध-बंदी के कार्य में कैसे-क्या सहयोग दे सकते हैं, यह स्पष्ट रूप से समझना चाहते हैं।

उत्तर :—जो दो परचे निकाले हैं, वे गाँव-गाँव जाकर बाँटें और जाहिर करें सब दूर, कि सारे भारत में गोवध-बंदी होनी चाहिए। पद-यात्राओं के जरिये गाँव-गाँव पहुँचें। मोटर से भी जा सकते हैं, रेल से भी जा सकते हैं, साईकल से भी जा सकते हैं। जिस किसी तरह से गाँव-गाँव पहुँचें। दो-चार हफ्ते की बात है। उतने में सारे गाँवों में पहुँच सकते हैं। इतना अपना संगठन व्यापक है।

प्रश्न :—शायद सरकार गोवध-बंदी जाहिर भी करेगी। परन्तु जैसे आज भी, जिन प्रांतों में गोवध-बंदी है, वहाँ के गाय-बछड़े, जहाँ गोवध-बंदी नहीं है, ऐसे प्रांतों में भेजे जाते हैं, तो उस गोवध-बंदी का कोई अर्थ नहीं। गायों को विदेश भेजना भी बंद होना चाहिए। तभी उस गोवध-बंदी का कोई मतलब है।

उत्तर :—इसमें जो लिखा है वह ठीक ही है। जैसे एक प्रांत से दूसरे प्रांत में, भारत से विदेश में गायें भेजना गलत है।

प्रश्न :—आपात्कालीन स्थिति हटाने के लिए काम करें, या गोवध-बंदी हो—इसलिए काम करें? पहले कौन-सा काम करें?

उत्तर :—प्रश्न पूछनेवालों को इतना ध्यान में नहीं आता है कि गोहत्या मूलभूत समस्या है। और आपात्कालीन स्थिति जो है, वह आज नहीं तो कल, हटनेवाली ही है। वह कायम की रहनेवाली चीज नहीं है।

प्रश्न :—गोवध-बंदी या गोवंशवध-बंदी?

उत्तर :—जो भारत के संविधान में कहा होगा वह। उस सम्बंध में सुप्रीम कोर्ट ने न्याय दिया है कि गाय को यानी स्त्रीलिंगी की पूर्ण

हमारे लिये और भारत के लिये यह बडे हित की बात है कि विनोबाजी हमारे बीच हैं। वे निरन्तर हमको उठाने के लिये संकेत करते हैं, सभी व्यक्तियों— स्त्री-पुरुषों के हृदय को स्पर्श करने वाले प्रेम और अनुरोध की भाषा बोलते हैं। सर्वोदय की उनकी कल्पना हम लोगों में से बहुतों को शायद कुछ अटपटी मालूम हो, लेकिन मूलतः वह शब्द और कल्पना हमारे कई शब्दों और कल्पनाओं से कहीं सुन्दर है। वास्तव में अब तक मैंने उस शब्द का प्रयोग करने से अपने आपको इसलिये रोका है कि अपनी समझ में हम उसके योग्य नहीं है और मैं एक उदात्त शब्द तथा कल्पना से अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहता।

विनोबाजी समूचे भारत के है, किसी राज्य या प्रान्त को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह भारत के दूसरे हिस्सों को उनसे वंचित रखे। फिर भी महाराष्ट्र का यह विशिष्ट गौरवयुक्त अधिकार है कि उसने मानव-जाति के इस सन्त को जन्म दिया।

पंढरपुर में होने वाले सर्वोदय सम्मेलन के अवसर पर मैं उन्हें अपना अभिनन्दन और अभिवादन भेजता हूँ।

नयी दिल्ली
१५-४-१९५८

❖

अनुशासन और विवेकयुक्त जनतन्त्र
दुनिया की सब से सुन्दर वस्तु है।

—गांधीजी

प्राणि-मात्र का संरक्षण :

आज तो आणी-वाणी का समय आ गया। कुछ भी करो, गायो को तो बचाना ही है। फिर आगे का आगे जमता जायगा।

आज तो गायें जीयें, विनोबाजी जीय, हम सब जीय--इसीमें गोवध-बंदी की शान है और हम सबका मान है।

हिन्दुस्तान में हिन्दू-धर्म सनातन काल से चला आ रहा है। गायो से बैल, बैलो से खेती, खेती से प्राणिमात्र का पोषण।

जमीन माता अन्न देती है, गाय-बैलो को चारा-पानी देती है। उसी जमीन से कपास मिलता है, कपास से रुई, रुई से कपडा बनता है। तो अन्न और वस्त्र धरती माता ही देती है। पर खती तो बैलो से ही होती है। उनसे गोबर और गो-मूत्र का खाद जमीन को मिलता है। उसीमे जमीन मे जीवन बना रहता है।

मशीन तो अपने ही तरीके स काम करेगी। यह युग मशीनो का है। तो उनका उपयोग भी ऊसर पडी जमीनो को सुधारने मे ले सकते है, पर छोटी-छोटी जमीनो की खेती तो बैलो से ही सफल हो सकती है। किसानो को धरती माता की तरह गो-माता का भी बडा सहारा रहता है।

गाय को 'कामधेनु' कहते है। काली गाय को कपिला गाय कहते हैं। कपिला गाय का दूध अधिक गुणकारी माना जाता है, और गाय कामधेनु होने से वह सब की मनोकामना पूरी करती है।

कहते है कि मनुष्य मरता है, तो आगे वैतरणी नदी मिलती है। जिसने गाय की सेवा की होती है और गोदान दिया होता है, वह गाय की पूँछ पकडकर वैतरणी पार कर लेता है। गाय उसे पार करवा देती है। इसलिये मरते वक्त गोदान दिलाते है। उसका बडा पुण्य माना जाता है।

दिलीप राजा न गाय की बडी लगन से सेवा की, तो उनकी मनो-कामना पूरी हो गई। यह सब तो कथा-पुराणो में सुनते ही है।

रहते थे, क्योकि भारतीय राजदूतकी हैसियत से हमें उस जगह विविध कार्यक्रमो में अक्सर जाने का अवसर मिलता रहता था।

* * * *

राष्ट्र-प्रेम तो सभी देशो के नौजवानो मे पाया जाना स्वाभाविक ही है। भारत को स्वराज्य प्राप्त होने के बाद एशिया व अफ्रीका के बहुत-से राष्ट्र जाग उठे और उन्होने परतन्त्रता की जंजीरो को तोड फेंका। आजादी के पिछले इक्कीस वर्ष के बीच दो बार भारत पर चीन व पाकिस्तान की तरफ से आक्रमण हुए। उस समय सारा देश एक मजबूत दीवार की तरह उठ खडा हुआ, किन्तु खतरा टल जाने के बाद हम फिर अपनी छोटी-मोटी समस्याओ व सघर्षो मे फँस जाते है और भारत की एकता को गहरी ठेस पहुँचाते हैं। जैसे आचार्य काकासाहब कालेलकर कहा करते है, हम एक बडे राष्ट्र के छोटे लोग बन जाते हैं और अशोभनीय व्यवहार करने लगते हैं। हमारे राजनैतिक नेता हमे बार-बार स्मरण दिलाते रहते है कि अभी बाहरी आक्रमण का भय दूर नही हुआ है, ताकि हमारी एकता कायम बनी रहे। लेकिन राष्ट्र प्रेम जगाने के लिए क्या हमें विदेशो के हमलो की राह देखते रहना है? क्या देश की गरीबी व बेकारी की ऐसी जटिल समस्याएँ हमारे सामने नही खडी है, जिन्हें परास्त करना हमारा परम कर्तव्य है? और ये मसले तभी हल किये जा सकते हैं, जब हम राष्ट्रीयता से ओतप्रोत हो।

इसके अलावा प्रत्येक राष्ट्रकी कुछ विशेषताएँ होती है, जिन्हें हम उस देश की 'आत्मा' या अंग्रेजी में 'जीनियस' कहते है। किसी राष्ट्र में कला व साहित्य की विशेष प्रतिभा दिखलाई देती है, कही क्रीडा, खेल-कूद व 'एडवेन्चर' का माद्दा खास तौर पर विकसित होता है। कुछ देशो म उद्योग, परिश्रम व सामाजिक अनुशासन के गुणो का दर्शन होता है तो कही विनोदप्रियता व उच्छृंखलता का वातावरण पाया जाता है। हमारे पूर्वजो ने भारत को 'कर्म-भूमि' के नाम से पुकारा है। यहाँ 'धर्म भावना' का विशेष महत्व प्राचीन काल से रहा है। इसलिए इसे 'धर्म भूमि' भी कहा जाता है।

* * * *

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने पाश्चात्य संस्कृति व भारतीय सभ्यता का बुनियादी अन्तर बड़े मार्मिक शब्दों में बयान किया है। वे लिखते हैं— "जब यूरोप का एक मजदूर व किसान दिनभर काम करके थका हुआ शाम को घर आता है, तो अपनी थकान मिटाने के लिए शराब पीता है और अनाचार करता है। किन्तु भारत का किसान अपनी थकान भजन-कीर्तन द्वारा भूल जाता है और भगवान् की भक्ति में लीन हो जाता है।"

दोनों सभ्यताओं में हम एक और विशेष अन्तर देखते हैं। विदेशों में अगर आप पहाड़ों की चोटियों पर चढ़कर किसी रमणीय स्थान पर पहुँचेंगे, तो वहाँ एक 'बार' या शराब की दूकान देखेंगे, लेकिन भारत की यह विशेषता है कि इस प्रकार के प्राकृतिक स्थलों पर निश्चित ही एक कलापूर्ण मन्दिर या तीर्थ के दर्शन मिलेंगे। हमारे देश में पर्वतारोहण के साथ-साथ धर्मभावना का समावेश रहा है। इसीलिए आज हम गंगोत्री, बदरीनाथ, अमरनाथ, कैलास व गौरीशंकर के भव्य दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं।

विदेशों में नाम कमाना हो, तो करोड़पति व अब तो अरबपति बनना जरूरी होता है, या तो फिर बड़ा राजनैतिक नेता, जिसके हाथ में महान् सत्ता हो। किन्तु भारत में तो एक 'सन्त' व 'महात्मा' के पीछे ही सारी जनता चलती है और उसका जय-जयकार करती है।

भारत की संस्कृति महलों व प्रासादों में नहीं, वनों व मुनियों के आश्रमों में फलती-फूलती रही है। यहाँ के राजा महाराजा अपने गुरु-जनों के आदेशों के अनुसार ही राज्य संचालित करते रहे हैं। वशिष्ठ, विश्वामित्र, याज्ञवल्क्य व समर्थ रामदास की गुरु परम्परा किसी और देश में खोजे भी नहीं मिल सकेगी। भारत भूमि में वह सहज प्राप्त है।

यदि इन प्राचीन परम्पराओं को दरगुजर कर भारत को उन्नत बनाने का प्रयत्न करेंगे, तो हम ठोकर खाकर गिरेंगे और संसार के सम्मुख हँसी के पात्र बनेंगे। दुनिया आज भारत की ओर इसलिए नहीं देख रहा है कि यहाँ भी ऊँची इमारतें, विशाल बाँध व बड़ी फैक्टरियाँ स्थापित

स्वराज्य मिला, तब से तो अपने नेताओं ने बार-बार गोवध-बन्दी की बात पर बड़ा जोर दिया है। विशेषज्ञों ने भी यही बात बताई है कि अपने देश के लिये गोवंश की वृद्धि होना जरूरी है। उसीसे खेती सुधरगी और उत्पादन बढ़ सकेगा।

स्वराज्य मिलने के बाद अब तक हजारों-लाखों दुधारू गायें कत्ल हो गई हैं। इसीसे गाय, बैल मिलना बहुत कठिन हो गया है। उनके दाम भी दिनोंदिन बढ़ते जा रहे हैं, तो किसान खेती कैसे करे? मँहगाई और गरीबी दूर कैसे हो?

अगर अभी गो-वध का सिलसिला, जैसे चला है, वैसे ही चलता रहा, तो अपने देश की हालत गिरती ही जायगी। फिर गरीबी दूर कैसे होगी?

यही सब सोच-समझकर पूज्य विनोबाजी ने ११ सितम्बर तक समूचे देश में गोवध-बंदी हो जानी चाहिये—ऐसा संकल्प जाहिर किया है। यह गम्भीर बात है।

गोवंश-वृद्धि होना ही हमारे लिये वरदान सिद्ध होगा। इसलिये विनोबाजी के संकल्प के साथ जनता की भावना और प्रार्थना भी शामिल हो जावे, तो सरकार को भी गोवध-बन्दी की बात सोचने में ज्यादा मदद हो सकेगी।

अपने देश में गोवध बन्द होने का विचार वर्षों से चल ही रहा है। बापूजी ने जमनालालजी को आखिर में गोसेवा का काम ही सौंपा था। उनके बाद मेरे मन में दिन-रात गोरक्षा का ही ध्यान तो लगा रहता है, पर यह कैसे हो?

यह काम अब भगवान स्वयं कराना चाहते हैं—ऐसा लग रहा है। तभी तो राई-रत्ती की तरह से तौलकर सूक्ष्मतम आहार लेने वाले इस युग के ऋषि विनोबाजी को गोरक्षा की ऐसी तीव्र प्रेरणा हुई है। तो अब हम सभी का ध्यान इसी काम में लग जाना चाहिये और गोवंश का संरक्षण जल्दी होना चाहिये।

गोवध तो बन्द अब होना ही चाहिये।

गायें भी जियें और हम सब भी जियें। तभी चारों ओर सद्-भावना फैलेगी। गरीबी दूर होने का रास्ता भी खुलेगा और विनोबाजी की चिन्ता तभी मिट सकेगी।

'दुर्लभं भारते जन्म' :

विद्यार्थी जीवन मे हमे कविवर मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' से राष्ट्रीयता की गहरी प्रेरणा मिली थी। अंग्रेजी कवि लोगफैलो की भी मशहूर कविता 'दिस इज माई ओन माई नेटिव लैण्ड' हमें कंठस्थ थी। इकबाल की ये पंक्तियाँ हम सभी गाया करते थे —

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।
हम बुलबुलें हैं उसकी, वह बोस्ताँ हमारा ॥

उन दिनो 'वन्दे मातरम्' का राष्ट्रीय गीत तो अँग्रेजी राज्य के प्रति बगावत का प्रतीक बन गया था। फिर भी वह हरेक की जबान पर रहता था। पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी की 'फूल की चाह' शीर्षक कविता भी बहुत लोकप्रिय बन गई थी —

मुझे तोड लेना वनमाली,
उस पथ मे देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढाने,
जिस पथ जाये वीर अनेक ॥

और हमारे देश के सम्बन्ध मे तो महाभारत के महाकवि ने हजारो वर्ष पहले ही घोषित किया था— 'दुर्लभ भारते जन्म'। रामायण के कवि-सम्राट वाल्मीकि ने स्वय भगवान राम की वाणी द्वारा मातृभूमि-भक्ति का प्रेरक सन्देश दिया था —

अपि स्वर्णमयी लका, न मे लक्ष्मण रोचते,
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

काठमाण्डू में स्थित नेपाल की राष्ट्रीय रगशाला के सामने ये पंक्तियाँ बडे अक्षरो मे लिखी हुई थीं। हम भी उन्हे बार-बार गुनगुनाते

रहते थे, क्योंकि भारतीय राजदूतकी हैसियत से हमें उस जगह विविध कार्यक्रमो में अक्सर जाने का अवसर मिलता रहता था।

* * * *

राष्ट्र-प्रेम तो सभी देशो के नौजवानो में पाया जाना स्वाभाविक ही है। भारत को स्वराज्य प्राप्त होने के बाद एशिया व अफ्रीका के बहुत-से राष्ट्र जाग उठे और उन्होने परतन्त्रता की जजीरो को तोड फेंका। आजादी के पिछले इक्कीस वर्ष के बीच दो बार भारत पर चीन व पाकिस्तान की तरफ से आक्रमण हुए। उस समय सारा देश एक मजबूत दीवार की तरह उठ खडा हुआ, किन्तु खतरा टल जाने के बाद हम फिर अपनी छोटी-मोटी समस्याओ व सघर्षो में फँस जाते है और भारत की एकता को गहरी ठेस पहुँचाते है। जैसे आचार्य काकासाहब कालेलकर कहा करते है, हम एक बडे राष्ट्र के छोटे लोग बन जाते है और अशोभनीय व्यवहार करने लगते है। हमारे राजनैतिक नेता हमे बार बार स्मरण दिलाते रहते है कि अभी बाहरी आक्रमण का भय दूर नही हुआ है, ताकि हमारी एकता कायम बनी रहे। लेकिन राष्ट्र-प्रेम जगाने के लिए क्या हमें विदेशो के हमलो की राह देखते रहना है? क्या देश की गरीबी व बेकारी की ऐसी जटिल समस्याएँ हमारे सामने नही खडी है, जिन्हें परास्त करना हमारा परम कर्तव्य है? और ये मसले तभी हल किये जा सकते है, जब हम राष्ट्रीयता से ओतप्रोत हो।

इसके अलावा प्रत्येक राष्ट्रकी कुछ विशेषताएँ होती है, जिन्हें हम उस देश की 'आत्मा' या अंग्रेजी में 'जीनियस' कहते है। किसी राष्ट्र में कला व साहित्य की विशेष प्रतिभा दिखलाई देती है, कही क्रीडा, खेल-कूद व 'एडवेन्चर' का माद्दा खास तौर पर विकसित होता है। कुछ देशो में उद्योग, परिश्रम व सामाजिक अनुशासन के गुणो का दर्शन होता है, तो कही विनोदप्रियता व उच्छृंखलता का वातावरण पाया जाता है। हमारे पूर्वजो ने भारत को 'कर्म-भूमि' के नाम से पुकारा है। यहाँ 'धर्म-भावना' का विशेष महत्व प्राचीन काल से रहा है। इसलिए इसे 'धर्म-भूमि' भी कहा जाता है।

* * * *

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने पाश्चात्य संस्कृति व भारतीय सभ्यता का बुनियादी अन्तर बडे मार्मिक शब्दो मे बयान किया है। वे लिखते हैं— "जब यूरोप का एक मजदूर व किसान दिनभर काम करके थका हुआ शाम को घर आता है, तो अपनी थकान मिटाने के लिए शराब पीता है और अनाचार करता है। किन्तु भारत का किसान अपनी थकान भजन-कीर्तन द्वारा भूल जाता है और भगवान् की भक्ति मे लीन हो जाता है।"

दोनो सभ्यताओ मे हम एक और विशेष अन्तर देखते है। विदेशो में अगर आप पहाडो की चोटियो पर चढकर किसी रमणीय स्थान पर पहुँचेंगे, तो वहाँ एक 'बार' या शराब की दूकान देखेंगे, लेकिन भारत की यह विशेषता है कि इस प्रकार के प्राकृतिक स्थलो पर निश्चित ही एक कलापूर्ण मन्दिर या तीर्थ के दर्शन मिलगे। हमारे देश मे पर्वतारोहण के साथ-साथ धर्मभावना का समावेश रहा है। इसीलिए आज हम गगोत्री, बदरीनाथ, अमरनाथ, कैलास व गौरीशकर के भव्य दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकते है।

विदेशो मे नाम कमाना हो, तो करोडपति व अब तो अरबपति बनना जरूरी होता है, या तो फिर बडा राजनैतिक नेता, जिसके हाथ में महान् सत्ता हो। किन्तु भारत में तो एक 'सन्त' व 'महात्मा' के पीछे ही सारी जनता चलती है और उसका जय-जयकार करती है।

भारत की संस्कृति महलो व प्रासादो मे नहीं, वनो व मुनियो के आश्रमो में फलती-फूलती रही है। यहाँ के राजा महाराजा अपने गुरु-जनो के आदेशो के अनुसार ही राज्य सचालित करते रहे हैं। वशिष्ठ, विश्वामित्र, याज्ञवल्क्य व समर्थ रामदास की गुरु परम्परा किसी और देश में खोजे भी नही मिल सकेगी। भारत भूमि मे वह सहज प्राप्त है।

यदि इन प्राचीन परम्पराओ को दरगुजर कर भारत को उन्नत बनाने का प्रयत्न करेंगे, तो हम ठोकर खाकर गिरेंगे और संसार के सम्मुख हँसी के पात्र बनेंगे। दुनिया आज भारत की ओर इसलिए नही देख रहा है कि यहाँ भी ऊँची इमारतें, विशाल बाँध व बडी फैक्टरियाँ स्थापित

हाल राष्ट्रो का है। यदि वे अपनी सस्कृति की भूमि पर स्थिर रहकर दुनिया से सीखने का प्रयत्न करते हैं, तो उनका विकास सर्वांगी होता है लेकिन अगर वे अपना राष्ट्रीय व्यक्तित्व ही खो बैठते है, तो कही के नही रहते।

गाधीजी हम अक्सर समझाया करते थे कि राष्ट्रीयता और अन्तरराष्ट्रीयता म मूलत कोई आपसी विरोध नही है। अन्तरराष्ट्रीय बनने के लिए यह जरूरी नही है कि हम दुनिया के सभी देशो में हवाई जहाज से उडकर जाते रह। हाँ, जितना बिल्कुल आवश्यक हो, उतना विदेशो से सम्पर्क रखना अच्छा है। किन्तु बापूजी तो सेवाग्राम में रहकर भी केवल ससार स बल्कि, ब्रह्माण्ड के जीवन से एक रस रहते थे। असली सवाल है दृष्टि का। अगर हमारे दिल उदार है और दिमाग व्यापक है तो फिर हम जहाँ कही भी रह, विश्व भावना से ओतप्रोत रह सकते हैं।

और अन्त मे अन्तरराष्ट्रीयता की भावना का आधार राष्ट्रीयता ही हो सकती है। यदि हम अपने राष्ट्र के एक अच्छे नागरिक व सेवक है तो हमारी खुशबू दुनिया के और देशो में भी सहज फैलती रहेगी। किसी भी देश में किया हुआ अच्छा काम धीरे-धीरे दूसरे राष्ट्रो पर भी असर डालता ही है। आचार्य विनोबा का भूदान व ग्रामदान आन्दोलन अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुका है, यद्यपि विनोबाजी ने पाकिस्तान के सिवाय और किसी विदेश की धरती पर अब तक पैर नही रखा है, किन्तु वे तो गाँव गाँव म घूमते हुए भी 'जय जगत' का नारा लगाते रहते है। वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श उनकी प्रत्यक साँस में समाया हुआ है। लेकिन उनके पैर अपने देश की धरती पर मजबूती से जमे हुए है।

वजूभाई पटेल :

कार्यानुभव की संकल्पना और व्यवहार :

इस सन्दर्भ में NCERT की ओरसे हो रहा कार्य

कोठारी कमीशन ने इ स १९६६ म वर्क एक्सपीरियन्स '— कार्यानुभव के नाम से अपने देश के शिक्षा-क्षत्र म जिस सकल्पना को प्रदान किया, उसका स्वीकार देश म कितने अश तक तथा किस प्रकार हुआ—यह दस साल के वाद एक विचारणीय मुद्दा है। कोठारी कमीशन की अन्य सिफारिशो का तात्कालिक अमल करने के लिये कोई प्रवन्ध नहीं हुआ, ठीक वैसा ही कार्यानुभव के वारे मे हुआ। कार्यानुभव के वारे में वैचारिक स्तरपर काफी प्रमाण में चर्चा हुई है, इस वात को स्वीकार करना चाहिय, तथा विविध राज्यो में शाला-शिक्षा क नये अभ्यास क्रम में कार्यानुभव का उपयोग क्राफ्ट के स्थान पर हुआ है—इस वात को भी स्वीकार करना होगा। यद्यपि इस नये अभ्यास-क्रम मे उद्योग-क्षेत्र को महत्व देनेके अलावा विशेष कोई काम हुआ हो —ऐसा नही दिखाई देता। कार्यानुभव एक विशेष विषय क रूप म शाला क सामान्य अभ्यास-क्रम की सभी कक्षाओ में स्वीकृत हुआ है -यह हकीकत है। एक से सात कक्षा में उद्योग को स्थान दिया गया है, जव कि आठ से दस कक्षा में नये विषय के रूप में उसको स्वीकार किया गया है।

आज के शालेय अभ्यास क्रम मे श्रमजन्य शिक्षा का स्वीकार नहीं हुआ है। काम द्वारा शिक्षा (W0rk based Education) को नये अभ्यास-क्रम में कोई स्थान प्राप्त नही हुआ, जव कि समग्र अभ्यास-क्रम कार्योन्मुख (functional) वने, तव जो चित्र उठेगा, वह स्वाभाविकता से आज के एकागी कार्यानुभव से विलकुल भिन्न होगा। आज कार्यानुभव एक विषय मात्र है। उस विषय की शिक्षा का आयोजन, उसकी शिक्षा-प्रक्रिया तथा उसका मूल्याकन इस प्रकार हो रहा है कि

हो रही है! संसार तो हमारे राष्ट्र में कुछ और ही अपेक्षा रखता है, क्योंकि वह गांधी व टैगोर का देश माना जाता है। जब हम सन् १९४९ में अमरीका की हारवर्ड यूनिवर्सिटी के विख्यात् अर्थशास्त्री प्रो. शुमपीटर से मिले, तो उन्होंने बडी नम्रता से किन्तु आग्रहपूर्वक कहा—"मेरी ओरसे अपने देशवासियो को एक सन्देश जरूर दीजिएगा, और वह यह कि वे भूलकर भी हमारी नकल न करें। हमारे पास धन है, किन्तु वह अमूल्य वस्तु नही है, जो भारत के पास है। ससार, भारत से अध्यात्म की ज्योति पाने की आशा रखता है।" कुछ इसी प्रकार की भावना डा. आइन्स्टाइनने व्यक्त की थी। गांधीजी के प्रति तो उनकी अगाध श्रद्धा थी ही। उन्होंने कहा था—"आनेवाली पीढियाँ तो वह विश्वास भी नही कर सकेंगी कि गाँधी जैसा 'हाड-माँस का कोई शख्स इस पृथ्वी पर सचमुच कभी चला था।"

* * * *

पूज्य बापू के स्वप्नों के भारत में नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यो को प्रमुख स्थान तो था ही, उनकी हार्दिक आकाक्षा थी कि आजाद हिन्दुस्तान, दुनिया को अपनी प्राचीन संस्कृति के अनुरूप एक नई रोशनी दे। किन्तु वह यह नही चाहते थे कि भारत संसार के अन्य राष्ट्रो से अलग-थलग पड जाय और एक सकुचित वृत्ति का अनुसरण करे। इसी-लिए उन्होने बहुत साफ शब्दों में लिखा था—"मै नही चाहूँगा कि स्वतत्र भारतका भवन सभी ओर दीवारोसे घिरा रहे और उसके खिडकी-दरवाजे बन्द रहें। सभी देशों की संस्कृतियो का प्रवाह हमारे मकान के अन्दर आवश्यक स्वतंत्रता से बहे। लेकिन मै यह कभी बरदास्त नही करूँगा कि इन प्रवाहो से मेरे पैर ही उखड जायें। इसका यही भावार्थ है कि हम सभी दिशाओ से अच्छे विचार व गुण अपनाने की दृष्टि रखे, लेकिन हमारे पैर हमारी धरती पर मजबूत रहे। हम विदेशी हवा में उड़ न जायें, दूसरो के अनुकरण के प्रवाह में वह न जायें।"

* * * *

हम अगर जरा बारीकी से अपने प्राचीन ग्रथो का अध्ययन करे, तो पायेगे कि वेदों मे भी 'विश्व मानुष' के आदर्श का जिक्र है। ऋग्वेद

ने तो यही प्रार्थना की है कि चारो दिशाओ से शुभ विचारो का प्रवाह जारी रहे— "आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वत "। अथर्ववेद ने भी यही जाहिर किया है कि सम्पूर्ण पृथ्वी मेरी माता है और मै उसका पुत्र हूँ— "माता भूमि, पुत्रो ह पृथिव्या। " कितना विशाल व व्यापक दर्शन था हमारे प्राचीन विचारको व ऋषियो का ! वे ग्रामा, आश्रमो व वनो में रहते थे, किन्तु उनका चिन्तन केवल विश्वव्यापी ही नही, ब्रह्माण्डमय था।

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कुछ इसी प्रकार के विचार दूसरे ढग से व्यक्त किये हैं। उन्होने भारतीय परम्परा की उपमा गगाजी के निरन्तर प्रवाह से दी है। उसमे कई दिशाओ से दूसरी नदियो के जल का भी प्रवेश होता है। वे गगा में मिलकर एकरूप हो जाती है गगा ही बन जाती है। किन्तु यदि मिलनवाली नदियो द्वारा गगाजी मे बाढ आ जाय, तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है और चारो ओर बरबादी फैल जाती है। इसी तरह यदि हम विदेशो के गुणो को अपनाकर उन्हे हजम कर लें और अपना व्यक्तित्व भी कायम रख सके, तो सब दृष्टि से कल्याणकारी है। लेकिन अगर बाहरी प्रवाह से हमारा सन्तुलन ही बिगड जाय, तो फिर हम विनाश की ओर तेजी से बह जायगे।

हम जरा वृक्षो की ओर भी नजर डालें। ऊँचे पेड खुली हवा में कितनी शान से खडे रहते है। चारो ओर से उन्हें शीतल मन्द सुगन्ध वायु का लाभ मिलता रहता है। वे स्वय कडी धूप सहते है, लेकिन दूसरो को शीतल छाया प्रदान करते है। सूरदासजी ने गाया है —

> वृक्षन से मत ले, मन ! तू वृक्षन से मत ले।
> धूप सहत अपने सिर ऊपर,
> और को छाँह करेत !

पर उनकी गहरी जडे धरती मे रहती है, वही से उन्हें जीवन-शक्ति सदा प्राप्त होती रहती है। यदि जडें कमजोर हो और जमीन के ऊपर निकल आवे, तो फिर वह वृक्ष अधिक दिन गौरव से अपना सिर ऊँचा न रख सकेगा। हवा के झोको से वह गिरकर समाप्त हो जायगा। यही

इस विषय-शिक्षा के उद्देश्यो को भी वह सिद्ध नही कर सकता । उदाहरणार्थ शालेय अभ्यास-क्रम के योजको ने कार्यानुभव के उद्देश्यो के विषय मे स्पष्ट लिखा है कि कार्यानुभव के द्वारा विद्यार्थी की उत्पादन-शक्ति विकसित होगी तथा श्रम के प्रति रुचि निर्माण होगी एव किसी भी प्रकार के श्रम के प्रति उसको अनुराग होगा । हमारे समाज मे शारीरिक श्रम के प्रति न तो रुचि है, न ऐसे कोई काम करने का कौशल । इस परिस्थिति के कारण शालेय अभ्यास-क्रम में न तो ठीक आयोजन होता है और न ठीक शैक्षणिक प्रक्रिया । फलत अनुभव को विकसित करने का प्रश्न ही कभी उपस्थित नही होता । शाला में न तो कार्य है, न उसका अनुभव । कार्यानुभव को एक विषय के तौर पर स्थान दिया गया है, उसका यह परिणाम है ।

इस सन्दर्भ में NCERT की ओर से जो काम देश मे हो रहा है, वह जाँचने योग्य है । NCERT सस्था में Vocationalisation Unit नामक एक विभाग पिछले कुछ वर्षो से चल रहा है । उसके अधिकारी कार्यकर्ता कल्पनाशील है तथा कार्यानुभव के विषय मे पूरी समझ रखते है । किन्तु NCERT की ओर से हाल ही मे जो परिषद् हुई, उसमें उस विभाग की ओर से कुछ प्रदान हुआ हो—ऐसा नही दखाई देता । अत अप्रैल १९७५ की परिषद् के बाद NCERT की ओर से 'दस वर्ष का अभ्यासक्रम' (Curricular Form of Ten Years General Education) पुस्तिका का प्रकाशन हुआ—वह परीक्षणीय है । उसकी प्रस्तावना मे NCERT के नियामक कार्यानुभव की सकल्पना को स्वीकार करते है, परन्तु उस प्रस्तावना में पाँचवी पचवर्षीय योजना के उद्देश्य को दूर रखकर शिक्षा के आयोजन की बात करते है–यह विचित्र लगता है । पाँचवी पचवर्षीय योजना के मुख्य दो उद्देश्य है— बेकारी निवारण, तथा गरीबी नाबूदी । ये दोनो उद्देश्य सिद्ध करने हो, तो शिक्षा मे उत्पादक-श्रम के कार्य व्यापक फलक पर उठाने पड़ेगे तथा उसके द्वारा शिक्षा-प्रक्रिया का निर्माण करना होगा । यह तभी शक्य बन सकता है, जब अभ्यास-क्रम कार्योन्मुख बने । इस बात को सोचने के बदले NCERT के

ऊपर की पुस्तक में प्रकरण २, ३, ४ में कार्यानुभव को एक विषय का स्थान दिया है तथा फिर वही पुरानी बातें लिखी है।

दस वर्ष बीत गए और इन वर्षों में कार्यानुभव से कोई निष्पत्ति नहीं मिली—यह अनुभव हो चुका है, फिर भी हम कुछ नया नहीं सोच सकते या हेतुपूर्वक हमें सोचना ही नहीं है। फलत देश म शिक्षा-प्रक्रिया वही पुराने ढग से चलाना है-ऐसा महसूस होता है। हकीकत यह है कि हमारे देशमें नौकरशाही को कार्योन्मुख अभ्यास-क्रम के प्रति एक प्रकारकी घृणा-नफरत है। अत जब तक उनके हाथो मे नीति निश्चित करने के साधन है, तब तक शिक्षा में मूलभूत परिवर्तन होने की सम्भावना नहीं।

परिस्थिति यह है, फिर भी शाला और घर व्यक्तिगत स्तर पर बहुत कुछ कर सकते है। समाज मे मूल्य परिवर्तन लाने के लिये घर और शाला तथा साहित्य और पत्रकारत्व बहुत कुछ कर सकता है, उसम घर तथा शाला महत्व का प्रदान कर सकते है।

विद्यार्थी के घर में एव शिक्षक के घर मे श्रम की, मूल्य के रूप में स्थापना नही हुई है—यह हकीकत है। शाला तथा घर—दोनो सयुक्त रूपसे प्रयास करें, तो विशाल समाज व्यापक तौर से श्रम के विशिष्ट मूल्य को स्वीकार करे। उत्तर बुनियादी विद्यालय श्रम-प्रतिभाव को तोडने में काफी सफल हुए है—ऐसा कहने मे कोई अतिश्योक्ति नहीं है। उत्तर बुनियादी विद्यालयो का उद्योग के प्रति आज की परिस्थिति में सबसे बडा प्रदान है।

अखिल भारत नयी तालीम समिति ने कुछ मास पहले नयी तालीम अभ्यास-क्रम का पुनर्निर्माण किया है। उसमें कार्योन्मुख अभ्यास क्रमकी सकल्पना की व्यवस्था है। इस प्रकार के अभ्यास-क्रम के निर्देशक बिन्दु (Guidelines) 'नयी तालीम पत्रिका के अक्टूबर-नवम्बर१९७५के अक में पृष्ठ ७६ से८१पर दिए गये है। उसके अनुसार कार्योन्मुख अभ्यास-क्रम की निम्नलिखित विशेषता दिखाई गई है। कार्योन्मुख अभ्यास-क्रम में मुद्दोंके माध्यम बनाना होगा—(१) शरीर-श्रम, (२) शाला मे सामूहिक जीवन, (३) प्राकृतिक वातावरण, (४) घर तथा समाज, (५) समाज-सेवा तथा विकास-कार्यक्रम।

उपरोक्त मुद्दों को माध्यम बनाना हो, तो प्रत्येक शाला का अलग-अलग अभ्यास-क्रम तैयार करना होगा—यह स्वाभाविक है। समान अभ्यास-क्रम और समान मूल्यांकन—यह रूढ़िग्रस्त बात है तथा उसके बुरे परिणाम का आज इतने वर्षों के बाद भी अनुभव कर रहे हैं। इसलिये अन्य विकसित देशों के अनुसार हमारे विकसित देश में प्रत्येक शाला में अभ्यास-क्रम की रचना अपनी आसपास की आवश्यकतानुसार निर्धारित निर्देशक बिन्दुओं के आधार पर होनी चाहिये। यह तभी शक्य है, जब शाला को शासन की ओर से स्वायत्तता मिले। आज अपने देश में अगर कोई महत्व का परिवर्तन समाज-जीवन में परिवर्तन लाने की दृष्टि से करने योग्य है, तो वह शाला तथा महाविद्यालयों में कार्योन्मुख अभ्यासक्रम की रचना के लिये उनको स्वायत्तता प्रदान करना ही है।

*　　　*　　　*

भाषा-शुद्धि

महात्मा कन्फ्यूशियस से किसी ने पूछा कि यदि तुम्हें किसी देश पर शासन करने का अवसर मिले तो सब से पहले आप क्या करें ?

"सबसे पहले वहाँ की भाषा शुद्ध करने का प्रयत्न करूंगा।' कन्फ्युशियस ने जवाब दिया।

"लेकिन महात्मन्! भाषा-शुद्धि का शासन से क्या सम्बध है ?"

"भाषा अशुद्ध हो तो उसके द्वारा मन के भाव बराबर व्यक्त नहीं होते और जब भाव बराबर व्यक्त नहीं होते, तो न करने जैसे काम हो जाते हैं। और जब अनुचित काम होते हैं तब सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का और नैतिकता का अन्त होता है। और जहाँ नैतिकता अन्त आता है, वहाँ न्याय कैसे टिक सकता है? और न्याय के बिना अराजकता का फैलना स्वाभाविक है। और जहाँ अराजकता फैले, वहाँ शासन किस तरह किया जाय? इसलिये भाषा-शुद्धि की अनिवार्यता सर्वोपरि है।"

मदालसा नारायण :

"जन-जन का सन्मान बढ़े नित" :

समय बदलता है, साल बदलता है और मौसम भी बदलता है। उसीके अनुरूप सृष्टि का सौन्दर्य खिलता है और जन जीवन भी फलता-फूलता है। एक के आगे एक नई पीढ़ियाँ पनपती हैं। मानव समाज प्रगल्भ होता है, तो उत्क्रांति का पथ भी आलोकित होता है। यही विधि-विधान है। तदनुसार विश्वका संचालन सतत हो रहा है।

अखिल विश्व के अन्तराल में अपना भारतवर्ष एक महान गौरवशाली राष्ट्र है। विज्ञान के विकासवान स्वरूप ने आज मानव जीवन क विकास की अनोखी संभावनाएँ जगत म जगाई हैं तो आणविक शक्ति के भयानक प्रयोगो ने सर्वनाश का ताण्डव नर्तन भी दिखाया है और दुनियाँ को प्रलयकारी भय से नितान्त भयभीत कर दिया है। इस विश्वव्यापक भय से मानव मन कैसे मुक्त हो—यह बडा विकट सवाल और बडी प्रखर समस्या आज सब ओर छाई हुई है। धरातल के सभी राष्ट्र इसे हल करने के लिये जी-जान से उत्सुक नजर आ रहे हैं।

१६४६ में विश्व परिभ्रमण करते हुए हम लोग अमेरिका पहुँचे। वहाँ प्रिन्स्टन विश्वविद्यालय के सुविशाल प्रागण मे इस युग के महान वैज्ञानिक वयोवृद्ध महर्षि अलवर्ट आइन्स्टाइन से हम मिलने गये। सेवा-ग्राम की 'बापू-कुटी' से भी सादी सी कुटिया में वे रह रहे थे। बापू जी के तृतीय पुत्र श्री मणिलाल गांधी भी हमारे साथ थे। खूब फुर्सत से जी भरकर बातचीत होती रही। प्रो आइन्स्टाइन ने हमें गहराई से समझाया —

"विज्ञान एक महान शक्ति है। उसका आविष्कार करने मे मन मुग्ध हुआ, आनन्द और सन्तोष मिला, पर उसका दुरुपयोग विनाशकारी

ढग से होने लगा है। यह बडी चिंता की और मेरे लिये बडे दुख की बात है। परन्तु आप भारतवासी बडे भाग्यवान है। आपके राष्ट्रपिता गाधीजी ने आपको सत्य और अहिंसा का ऐसा महान जीवन-पथ दिखा दिया है कि उसपर चलते हुए आप विनाश से बचकर दुनियाँ को भी विकास के मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित कर सकते है।"

यह कितना बडा आश्वासन हमने पा लिया। [अब हमे बहुत-सी बात अपने आप गहराई से सोचना और समझ लेना है। यह सभी जानते है कि हमने 'स्वराज्य' पा लिया है, पर वह किस रूप में हमें मिला है, यह भी तो हमें भलीभाँति जान लेना चाहिये।

अपने भारतवर्ष मे करीबन अर्ध शताब्दी से भी अधिक समय तक स्वराज्य प्राप्ति की साधना और आराधना चली। अनेकानेक अपूर्व बलिदान और महान कुर्बानिया हुई। फलस्वरूप १५ अगस्त १९४७ के मगल प्रभात मे हमने अपनी भारत भूमि पर स्वराज्यका सूर्योदय देखा। लोकमान्य तिलक का 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है'—यह मत्र सिद्ध हो गया। राष्ट्रपिता बापू का सकल्प पूरा हुआ। पर विभाजन के भयानक दुख-दर्द से बापू का हृदय ऐसा विदीर्ण हुआ कि ३० जनवरी १९४८ की सायकालीन प्रार्थना-भूमि पर 'हे राम' का उच्चार करते हुए उनका परिनिर्वाण हो गया।

एक ओर स्वराज्य का सूर्योदय हमने देखा, तो दूसरी ओर अपने सद्भाग्य का सूर्यास्त भी हमें देखना पडा। फिर भी राष्ट्रपिता बापू के समकालीन नेताओ ने अपने देशकी बागडोर भली भाँति अपने सुदृढ हाथो में थाम ली।

स्वतत्र भारत का अत्यन्त स्वतत्र और मौलिक लोकतत्रात्मक भारतीय सविधान २६ नवम्बर १९४९ के दिन रचकर तैयार हो गया। भारतीय जनता की ओर से लोकसभा द्वारा वह स्वीकृत भी हो चुका। तदनुसार भारत में 'भारतीय गणतत्र' की घोषणा २६ जनवरी १९५१ के दिन हो गई। सविधान की धाराओ के अनुसार भारत का राष्ट्रीय कारोबार चलने लग गया। योजना-आयोग, जनसेवा-आयोग, चुनाव-

आयोग आदि अनेक जन-समाज के उपयोगी आयोगो की स्थापना भी भारत में हो गई। सबके सहयोग से १९५२ का राष्ट्रव्यापी प्रथम आम चुनाव अत्यन्त सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ। दुनियाने आश्चर्य चकित होकर उसकी प्रशसा की, पर उसके बाद अब तक जन-जनके द्वारा जनतत्र सचालन की प्रक्रिया ठीक से कहीं भी जम नहीं पाई है। इसीसे चारो ओर असन्तोष और अशान्ति छाई हुई नजर आ रही है। उसके मूलभूत कारणो को ढूंढना, जाँचना, समझना है और अब सुधार ही लेना है।

यह सोचते हुए पहला सवाल मनम यह उठता है कि हमें स्वराज्य मिला, तो दर असल क्या मिला ? जनसाधारण के हाथ मे आया तो क्या आया ? इसका जवाब बडा सीधा, सादा, सरल और कीमती है —

"राष्ट्रपिता के बलिदान के फलस्वरूप भारत माता के वरदान के रूप में हमे भारत का सविधान मिला है" यह है बडे कीमती सवाल का अनमोल जवाब, पर अभी तक वह जन-जन के हाथो में कहाँ पहुँचा है ? न घर-घर में उसकी चर्चा है, न विचार है, न चाहना है। तब भला 'जहाँ चाह वहाँ राह' की तो बात ही कहाँ रही ? इस तरह राष्ट्रपिता के सत्यमय अहिंसात्मक प्रयोगो के सहारे जो स्वराज्य हमे मिला, उसके साथ अभी तो हमारी देखा-देखी या जान-पहचान भी ठीक से कहाँ हो पाई है ?

पर अब समय आ गया है। अब सविधान का बोलबाला हो रहा है। उसमें हेरफेर की बातचीत भी चल रही है। तब जनता-जनार्दन का सामूहिक अभिमत भी जाहिर हो जाना जरूरी है। उसके लिये हमारे भारतीय सविधान का एक सक्षिप्त और नया स्वरूप प्रकाशित हो जाना चाहिए और घर-घर में उसकी चर्चा, विचार और परिपूर्ण जानकारी फैल जानी चाहिए। इस दृष्टि से 'जनतत्रम् विजयते' की भावना बडी सामयिक और महत्वपूर्ण है। वास्तव में वह एक अत्यन्त उपयोगी सयोजना है, जिसका सक्षिप्त और सशोधित रूप बडा रोचक है।

जन-जन के द्वारा जनतंत्र का सचालन होने की वह बडी लोकप्रिय बात है। जिसका सशोधित और सूचक स्वरूप इस तरह से समझमें लेने लायक है —

"भारत में आज जो 'एडमिनिस्ट्रेशन' चल रहा है, वह शासन-तंत्र नही, वल्कि वास्तव में जन-तंत्र है। उसे व्यवस्था-तंत्र कहा जा सकता है। उसके अंतर्गत सचालन-तंत्र विधि-तंत्र, न्याय तंत्र, तो चलते ही हैं, पर जनतंत्र में जन जनको शिक्षित, प्रशिक्षित, प्रमाणित और प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय ही करते हैं। उनका उत्तरदायित्व महान है। इसलिये उनकी ओर से हरेक महाविद्यालय मे प्राध्यापको एव विद्यार्थियो को जनतंत्र-सचालन का उत्तम ज्ञान और समुन्नत प्रशिक्षण अवश्य दिया जाना चाहिये।"

समाज में जिनके इक्कीस साल पूर्ण हो जाते हैं ऐसे अपने राष्ट्र के नवोदित नवयुवक और युवतियाँ भारतीय सविधान के अनुमार सतत मौलिक अधिकारो से विभूषित होते ही जा रहे हैं। उन्हें हार्दिक रूपसे अभिनंदित करते हुए उनके महान राष्ट्रीय उत्तरदायित्वो का भलि-भाँति दर्शन भी उन्हें करवाया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

आज अपने राष्ट्रीय जनतंत्र का स्वरूप सार्वभौग प्रयुक्त सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य का है। वह जनता जनार्दन के बहुमत पर आधारित है। जनमत प्राप्ति के लिये पाँच सालाना आम चुनाव पद्धति को हमने भी अपनाया है। उस े लिये जन-सख्या के अनुपात में सारा देश निर्वाचन क्षेत्रो में सीमाबद्ध किया गया है। चुनाव के समय वही से जनतंत्र का सुव्यवस्थित सचालन होने के लिये जन प्रतिनिधि चुने जाते है। वह लोकसभा और विधान सभा म जाकर अपने निर्वाचन क्षेत्रो की जनता का उत्तमता से प्रतिनिधित्व करना [होता है। उसक लिये हर निर्वाचन-क्षेत्र में एक क्षेत्रीय समाज विकास की सब तरह की जानकारी से भरापूरा एक एक जनभवन' अवश्य होना चाहिय। जहाँ केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारी योजनाओ का अनुबन्धन क्षेत्रीय योजनाओ के साथ सतत जोडा जा सके। यह एम एल ए तथा एम पी का

स्थानीय कार्यालय ही समझा जाय, जहाँ इन जन-प्रतिनिधियों का वहाँ के जन-सेवकों के साथ सतत मिलना-जुलना होता रहे, तो जनता के साथ भी उनका सम्पर्क और सहयोग बढ़ता रह सकता है। तब वहाँ के जन-समाज के साथ मिल-जुलकर जन-सेवा के कार्य अधिक अच्छी तरह से होने लग जावेंगे। तभी जन जीवन में सुख, शान्ति, समृद्धि अपने आप बढ़ने लग जावेगी। समाज में नवजीवन जागृत हो उठेगा।

नवयुवकों में नई आशा, नये उत्साह और नई उमगे तरंगित हो उठेंगी। तभी नित नई तालीम की भाँति जन-जन के मानसरोवर में नित्य नूतनता लहराने लग जावेगी। उसीसे जनतत्र का सुचारु रूप से सचालन भी होने लग जायेगा।

'अनुशासन और विवेक युक्त जनतत्र दुनिया की सबसे सुन्दर वस्तु है'--राष्ट्रपिताकी यह भावना और यही मगलकामना आगामी १५ अगस्त के अपने २६ वे स्वाधीनता दिवस से सब ओर फैलने लग जाय, तो कितना अच्छा होगा!

> 'नया जमाना, नया साल है नया तरीका पावें।
> स्वतत्रता का सुदिन आज हम नई राह अपनावें।'
> जन जन के द्वारा सचालन हो अपने शासन का।
> वरदायक जनतत्र हमारा गौरव, अनुशासन का।।
> जन-भवनों के द्वारा सयोजन होगा सुखदाई।
> सचालन उत्तम होगा, जनतत्र बन वरदाई।।

❦

श्रीमती शांता नारुलकर :

सयानों की तालीम

(गत अक से आगे)

सहयोगी दुकान :

सेवाग्राम मे एक सहयोगी दुकान चल रही है। वह पूरे गांव की दुकान है, क्योकि गांव के हर कुटुम्ब ने उस में कुछ-न-कुछ हिस्सा दिया है। इसलिये वह खरीदने का पूरा हक भी रखता है। जो पैसा पूरे देहात से जमा हुआ है उसे हिस्सो (Shares) मे बांट दिया गया है। व्यवस्था-मडल या हिस्सेदार पैसा निकाल नही सकते, और न मुनाफा ही मांग सकते है। लकिन दुकान पूरे गांव की सुविधा के लिये है—यह मानकर बारी बारी से जिम्मेदारी उठाते है। मुनाफा उसी काम को बढाने या गांव के सुधार मे लगाने के लिये मुकर्रर है। दुकान सभालना, चीजें बेचना खरीदना हिसाब रखना आदि काम सभी सहयोग से करते है। कोई नौकर नही रखा गया है।

दूसरे चार देहातो के अनाज की व्यवस्था भी इसी दुकान के मार्फत हुई है। वहां के लोग पूंजी में पैसे देने को तैयार थे, लेकिन वे मुनाफे की अपेक्षा रखते थे। यह यहां के नियम के विरुद्ध है, इसलिये उनसे कोई पैसा नही लिया गया। शुरु में व्यवस्था म थोडी गडबडी रही, छ महीने बाद कुछ घाटा भी दिखाई दिया, लेकिन व्यवस्था-मडली ने अपनी तरफ से वह सब हिसाब ठीक करके व्यवस्थित रुप में किया। तबसे अब वह बढ ही रहा है। इसके द्वारा आज सिर्फ सेवाग्राम देहात की ही नही, उसके नजदीक के चार देहातो के लिये भी

अनाज, तेल वगरह की जरूरतें वे अपने आप निभा सकते हैं। इस तरह देहातियों ने आपस के सहयोग के साथ गाँव की जरूरतें पूरी करने की जिम्मेदारी स्वय ले ली है। इसी आधार पर उनकी अनाज की कोठी भी बनी है। उसमें सबने अपनी-अपनी शक्ति के मुताबिक कम-ज्यादा अनाज डाला है। जिसको जितने अनाज की जरूरत है, उतना लेगा और वापिस करेगा। यहाँ यह प्रश्न आ सकता है कि यदि अनाज न लौटाया तो ? उसका उत्तर है कि जब देहात के सब साथ होकर काम करते है तो एक-दूसरे पर भरोसा रहता है। उसे देहात में रहना है, तो लौटा ही देगा। समाज के विरुद्ध कैसे चलेगा ? बाहरी आदमी नियमों को तोड देगा या देहात म झगडे होंगे, तब यह बन्धन तोड देंगे। इसी एकता को सभालना है। लडें तो भी दो न बनें, एक रहें।

पालकों की जिम्मेदारी :

प्रौढ शिक्षा का और एक बडा हिस्सा है—पालकों की जिम्मेदारी और बच्चों की देखभाल के बारे में ज्ञान। यह काम यहाँ पूर्व-बुनियादी शाला के जरिए किया जा रहा है। इस दृष्टि से देखा जाय तो पूर्व-बुनियादी शाला के शिक्षक प्रौढ-शिक्षा के भी कार्यकर्ता है।

माँ बाप, पालक और शिक्षक की जिम्मेदारी :

प्रौढ-शिक्षा में पालक यानी माँ बाप की जिम्मेदारी और यह जिम्मेदारी समझकर बालकों की देख रेख, उनका पालन पोषण करना, —यह बहुत महत्व का विषय है। जैसा कि गाधीजी ने कहा है, बच्चो की शिक्षा, जब से बच्चा माँ के पेट में आता है, तभी से शुरू होती है। कई शारीरिक और दिमागी आदतें वह जन्म से ही लेकर आता है। इसलिये आगे आनेवाले अपने बच्चे के शारीरिक व मानसिक आरोग्य को ठीक रखने के लिये माँ को अपना आरोग्य ठीक रखना लाजिमी है। यही माँ की शिक्षा बनती चली जाती है। बच्चा अपने घर के बडो की गोद में पलता है, उसकी सफाई और आरोग्य की आदतें,

रहन-सहन, सभ्यता आदि बातें अपने बडों के व्यवहार से बनती जाती है। यह बात अगर बड़ो की समझमे आ जाय, तो बच्चों की आगे की तालीम का काम बहुत सरल हो जाय। माँ-बाप या पालकों को यह समझना चाहिये कि वे अपने बच्चे को इस तरह पालें, जिससे वह एक सच्चा आदमी बने।

शाला में पूर्व-बुनियादी वर्ग होना जरुरी है ही, लेकिन साथ ही बच्चोके घर और उनके माँ-बाप का भी उनकी शिक्षा में बड़ा भारी हाथ है। २ से ७ साल तक के बच्चे अपनी माँ और घर से ज्यादा हिले रहते हे। शाला मे आते हैं, फिर भी घर की तरफ उनका खिचाव ज्यादा रहता है, और यह स्वाभाविक भी है। लेकिन जब घर और शाला का वातावरण एक-सा बनेगा, माँ-बाप-शिक्षक—सब एकता में उसे दिखाई देंगे, तब उसका वह सकोच हट जायगा। उसे आश्वासन और प्रेम मिलेगा, तब बच्चा निर्भयता से शाला क अनोखे वातावरण से हिल-मिल जायगा। इसलिये पूर्व-बुनियादी शिक्षा के साथ माँ-बाप को भी उनकी जिम्मेदारी क्या है—यह सीखने का मौका दिया जाय। इसके लिये बच्चो की तालीम देनेवाले शिक्षक को अपने काम के घटों में से निश्चित समय बच्चों के घरो पर जाने और उनके माँ-बाप से चर्चा करनेके लिये देना चाहिये। बच्चोंके बारे में बातचीत करने से मित्रता बढ़ती है और इसके जरिये माँ-बाप या पालको को यह निश्चित ख्याल देना है कि जिस तरह दस वर्ष तक बच्चो को खाना-कपडा देना उनका धर्म है, उसी तरह उन्हे तालीम देना भी उनका कर्तव्य है। और यही उनकी बच्चों के प्रति प्रेमकी निशानी है, क्योंकि इसीके द्वारा वे बच्चो को इसानियत की जिन्दगी बिताने का अवसर देंगे। आजकल घरो मे बच्चों से जो काम लिया जाता है, वह काम सिखाना नही है, वह तो बिना पैसे की गुलामी है। वहाँ वह बचपन भूलकर बडा-बूढा बन जाता है, खासकर लडकियाँ। इसलिए अगर आगे आने वाले समाज को शक्तिशाली बनाना है, तो आज के माँ-बाप को समझना चाहिये कि बच्चा जो काम करे, अच्छी तरह सीखकर करे, उसकी बुद्धि उसके काम में बढ़े, और वहएक स्वतत्र आदमी की हैसियत से बढ़े,

गुलाम की तरह बोझ न ढोए । इस जबरदस्ती की शिक्षा में पैसे का लालच या दंड का भय नहीं होगा, वरन् शिक्षक और माँ-बाप का सहयोग होगा और घर और स्कूल का वातावरण एक-सा होगा।

स्त्री-शिक्षा

बच्चों की तालीम में पिता की अपेक्षा माँ का सम्बध ज्यादा है। इसलिये प्रौढ़-शिक्षा में स्त्री-शिक्षा को भी शामिल करना बहुत जरूरी है। इसी के ऊपर कुटुम्ब की सफाई और आरोग्य निर्भर है। अपने बच्चो की ओर कुटुम्बियो को बीमारियो से कैसे बचाना, उनका आहार-पानी, सफाई आदि की देखभाल शास्त्रीय ढग से कैसे करना, --ये बातें अगर माताएँ ठीक से समझ ले, तो उनका कुटुम्ब स्वस्थ और सुखी बन सकता है। देहात में आरोग्य, सफाई, सभ्यता और सुविचार की बातें समझने से घर का वातावरण आनन्दी और उत्साही बनेगा। देहात की स्त्रियो में पुरानी बीमारियाँ बहुत कम होती हैं। शरीर की दुर्बलता, अपने प्रति अनुदारता, खाने-पीने, सोने के बारे में बेफिक्री और कुछ गरीबी--इन सबके कारण वे आलसी और गन्दी दिखाई देती हैं। उन्हें यह समझना है कि कुटुम्ब का सच्चा भार तन्दरुस्त औरत ही सभाल सकेगी। इसलिये उन्हें सफाई, खाना, काम, विश्राम आदि बातें नियमित रखनी चाहिये। अपनी आमदनी के मुताबिक कुटुम्ब का खर्च कैसे निभाना चाहिये--यह भी उन्हें समझाना है। शुरू में वे शायद ध्यान न दें, लेकिन बार-बार समझाना हमारा कर्तव्य है।

इसके अलावा स्त्रियों को भी कोई दस्तकारी या धन्धो का ज्ञान होना जरूरी है। स्त्रियो के हाथो में काम की कला है। बुनकर की स्त्री भी बुनाई का आधा काम तो करती ही है, फिर वह पूरा बुनाई का काम क्यो न सीखे ? टोकरियाँ बनाना, चटाई बनाना, झाड़ू बनाना आदि काम तो वे जानती हैं। उसीके जरिये उन्हें तालीम दी जावे। हर देहात में एक दाई तो रहती ही है। यदि वह समझ ले कि सफाई आदि रखने से उसकी आमदनी बढ़ेगी, तो वह अपने काम

का ढंग बदलने को तुरन्त तैयार हो जायगी । कोई-कोई स्त्रियाँ सिलाई का और कताई का काम जानती हैं । उन्हें इन दस्तकारियों में प्रवीण बनाना आसान है । यदि मौका मिले और स्त्रियाँ एक साथ तैयार हों, तो सामुदायिक वर्ग भी लेना ठीक होगा ।

सेवाग्राम की दाइयाँ इसी तरह दवाखाने में सीखने और काम करने लगी हैं । पाखाने का उपयोग करना जरूरी है, गर्भवती को डाक्टर से जाँच करवा लेना जरूरी है, जचकी के समय सफाई बहुत जरूरी है--आदि बातें स्त्रियाँ समझ रही हैं । लिखना-पढना, कपडे सीना वे सीखती हैं । कुछ स्त्रियों ने बुनाई दस्तकारी की पूरी बातें सीख ली हैं और खुद कपडा बुन सकती हैं । किसी-किसी समय आरोग्य-केन्द्र में सब मिलकर बच्चों को नहलाती हैं । इस तरह बुनियादी शाला बाल-आरोग्य-केन्द्र, प्रौढ शिक्षा के केन्द्र भी बने हैं ।

प्रौढ-शिक्षा की इस तरह की योजना का असर दो-तीन-साल काम करने के बाद दिखाई देगा । वातावरण धीरे-धीरे बनता जाता है । शुरू का वातावरण बनने के बाद सच्चा कार्यक्रम शुरू कर सकते हैं ।

---'o:---

"बच्चों का दिमाग जिज्ञासाओं और अधिक जानकारी के लिए लालायित रहता है। यदि इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए बच्चों की रुचि के अनुकूल पुस्तकें तैयार की जाँय, तो निश्चय ही बच्चा की रुचि पढ़ने की ओर बढ़ेगी।"

—जवाहरलाल नेहरू

Education for today & tomorrow

K S. Acharlu

वर्तमान मानव-समाज में जीवन-मूल्यो के परिवर्तन के कारण शिक्षा-क्षेत्र में नये दर्शन की खोज हो रही है। भौतिक सुखो से भरपूर ससार में मानसिक अशाति फैल गई है। विज्ञान के जिस ज्ञान ने यह स्थिति उपस्थित की है, उसका रुख मोडना होगा। सम्पूर्ण सामाजिक ढाँचा यदि बदलना है तो शिक्षा प्रणाली म परिवर्तन लाना होगा। गाधीजी की यह योजना थी। उनके विचारो मे आध्यात्मिक गहराई तो है ही, यथार्थ जीवन में उतरनेकी सामर्थ्य भी है।

श्री आचारलू ने गाधीजी और श्री विनोबा के शिक्षा सम्बधी विचारो का गहन अध्ययन किया और वर्धा की 'नई तालीम' शिक्षा से निरतर सम्पर्क में रहने के कारण उन्हे खूब समझा है। प्रस्तुत पुस्तक उन्ही विचारो को स्पष्ट करती है। १९७२ में 'गाधी शिक्षण भवन' मे दिये गये भाषणो का ही यह सग्रह है।

बापू तथा विनोबा जी के विचारो म यथार्थता कितनी है, इसका विवेचन इन्होने किया है। इस वैज्ञानिक युग में वैज्ञानिको की सर्जन शक्ति का प्रयोग विनाश के लिये हो रहा है। मानव को प्रकृति ने बहुत

दिया पर आभार मानने की बजाय वह उसका शोषण पर शोषण किये जा रहा है। इसे शीघ्रातिशीघ्र रोकने के लिये नये शिक्षा-सिद्धान्तो की आवश्यकता है, जिनसे हमारी संस्कृति विकसित हो। हमारी शिक्षा-संस्थाओ में यह नही हो रहा है— शिक्षा, जो प्रजातन्त्र की जान है।

श्री आचारलू ने ३ शिक्षा-कमीशनो का ब्यौरा दिया है। तीनों के शिक्षा-उद्देश्यो मे भिन्नता है। युनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन ने शिक्षा का उद्देश्य मस्तिष्क और आत्मा को प्रशिक्षित करना बताया। सेकेंडरी एजुकेशन कमीशन ने मानसिक स्वतन्त्रता और सामाजिक मूल्यो पर बल दिया। कोठारी एजुकेशन कमीशन ने आर्थिक उन्नति तथा राष्ट्रीय सुरक्षाको ध्येय माना, जो विज्ञान तथा तान्त्रिक शिक्षा द्वारा सम्भव होगा। शिक्षाविदो ने उद्देश्य बनाए—मगर उन्हें शिक्षा-प्रणाली में उतारा नहीं गया। शिक्षा के पहलुओ पर तो सब विचार कर रहे हैं, मगर जीवन के शाश्वत मूल्यो के बारे में— स्वय मानव के बारे मे कोई विचार नही कर रहा है। शिक्षा केवल नौकरी पाने के लिये दी जा रही है, न कि अधिक सुरक्षित समाज बनाने के लिये। वह न तो आज को सभाल पा रही है, न कल के लिये विचार कर रही है।[1]

श्री विनोबा जी ने शिक्षा के मूल्यो के रूप में ३ सिद्धान्त हमारे समक्ष रखे हैं और उन्ही का प्रतिपादन श्री आचारलू करते हैं।

(१) योग (२) उद्योग और (३) सहयोग।

योग का तात्पर्य आसनादि नही, बल्कि चित्त की प्रवृत्तियो पर नियन्त्रण है। समाज में चारो ओर विभिन्न आकर्षण फैले हुए हैं। सर्जनात्मक प्रवृत्तियो के विकास के लिये स्वतन्त्रता बहुत आवश्यक तो है, परन्तु स्वतन्त्रता की राह कठिन है। अपना उत्तरदायित्व आप उठाना— जरा-सा चूके, कि सम्पूर्ण अव्यवस्था की स्थिति आई। आज्ञाकारिता का सरल मार्ग विद्यालयों में अपनाया जा रहा है।

योग के लिये आवश्यक बात है, बौद्धिक आत्मनिर्भरता। बालक की आलोचनात्मक निर्णय लेने की शक्ति, जीवन मूल्य निर्धारित करने में

आत्मनिर्भरता और संयम। बालक को प्रकाश की ओर उन्मुख करके उसे स्वय उसका अनुभव लेने दो। वह निरंतर जीवन की कला को सीखें। स्वय स्वावलम्बी बने और दूसरो के विचारो को भी उचित सम्मान दे सकें। सादगी और स्वानुशासन रखें। इसके लिये पाठ्यक्रम के अतर्गत जीवन के मूल्य निहित किये जाएँ। साहित्य ऐसा हो, जिसमे लेखक और कवि निडर हो कर सत्य का प्रतिपादन करें। तुलसी, मीरा और कबीर की रचनाये इसीलियें प्रभाव शाली है कि वह शाश्वत सत्य का प्रतिपादन करती है।

विद्यालयो में शाश्वत मूल्यो का जो ह्रास हो रहा है, उसे रोकने के लिये बच्चो को रामायण और महाभारत जैसे ग्रथ पढाए जाए। बच्चा माँ से भाषा सीखे। शिक्षा मातृभाषा मे दी जाए। अँग्रेजी भाषा का अन्धानुकरण न किया जाए। आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा यह निर्धारित हो कि विज्ञानका प्रयोग मानवके विकासके लिये किस प्रकार किया जाए। विज्ञान की उन्नति की पहली शर्त अहिंसा हो। भारतीय सस्कृति का अध्ययन विद्यालयो में कराया जाए। पूर्वजो के अनुभवो की अवहेलना करना मूर्खता है। प्राचीन सस्कृति होने पर भी नई पीढी को उसका प्रकाश न मिले, तो ये बडा दुर्भाग्य होगा। वही हमें जीवन की कला सिखाए गी। सत्य और अहिंसा को सर्वोपरि रख कर सबका मन जीत लेना सिखाए गी। हमारी शिक्षा की सबसे बडी कमी ललित कलाओ की शिक्षा का अभाव है। मन और आत्मा पर ये स्थायी प्रभाव छोडती है। यही जीवन को, सस्कृति को अर्थ प्रदान करती है। इतिहास की शिक्षा अनेकता में एकता का ज्ञान देने के लिये दी जाए।

सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो का बालको को ज्ञान दिया जाए। अनासक्ति, अपरिग्रह, सहिष्णुता, शाति और अहिंसा जैसे ऊँचे मूल्यो का शिक्षा म समावेश हो। सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास अधूरा होगा, यदि धार्मिक शिक्षा न दी गई तो। शरीर, मन, आत्मा का सतुलित विकास ही सच्ची शिक्षा है। वर्तमान समाज मे अनेक तनाव है। गलत व्यक्तित्वो की पूजा हो रही है। कथनी और करनी में भारी

अंतर है। व्यवहार में सगे भाई के गले पर छुरी चलाई जाती है और तीर्थयात्रा करके धार्मिक होने के ढोंग किये जाते हैं। परन्तु बालक बडा चतुर है। वह यह सब तुरन्त भाप लेता है। इस दोहरी नैतिकता से वह मनोवैज्ञानिक रूप से स्वय को असुरक्षित पाता है। एक भ्रम-सा उसे चारो ओर नजर आता है और विचित्र सूनापन उसे आ घेरता है। रेडियो, टी. वी सिनेमा हल्का साहित्य सब इसे बढाने में सहयोग देते हैं।

इस सबसे मुक्ति पाने का एकमात्र उपाय धार्मिक शिक्षा है। बच्चो को यह बताएँ कि हम सर्व शक्तिमान से जुडे हुए हैं। विद्यालयो तथा महाविद्यालयो मे ससार के सभी धर्मो की प्रमुख परम्पराएँ सिखाई जाएँ। निम्नलिखित बाते बालक जाने।

सदाचारण मे आवश्यक शब्दो का नही, अच्छे कर्मों का अधिक महत्व है। बालक सहिष्णुता का पाठ पढे। धम्मपद, गीता, कुरान, ग्रथ-साहब—सभी का अध्यापन हो। उन्हे मालूम हो कि सारे सतो के आध्यात्मिक अनुभव एक-से हैं। विद्यालयो मे दैनिक प्रार्थना और मौन आराधना हो। प्रबुद्ध विद्यार्थी धार्मिक विषयो पर वाद-विवाद के अवसर भी पाएँ। देश और समाज की नैतिक-आर्थिक स्थिति पर भी चर्चा करें।

भय और शक्ति-प्रयोग शिक्षा-सस्थाओ मे जरा भी न हो। प्रेम और आपस की समझ बूझ से कार्य चले। स्पर्धा न हो, सहयोग हो, तभी सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास सभव। शारीरिक श्रम, सादगी और स्वानुशासन को महत्व दिया जाए। ललित कलाओ की शिक्षा अनिवार्यत दी जाए। इनका प्रभाव बालक की सम्पूर्ण प्रकृति पर होगा। शहरी जीवन के प्रभाव से बच्चों को अलग रखा जाए और प्रकृति से निकट। दार्शनिक और आध्यात्मिक तत्वों पर अध्यापकों और छात्रो मे चर्चाएँ हो। जो उनके विचारो से असहमत हो उन्हे भी उतना ही आदर दिया जाए जितना उन्हे दिया जाए, जो सहमत हो। ऐसा ही शिक्षा का आदर्श हो।

शिक्षार्थी मे सबसे बडा गुण हो—वास्तव। वह चरित्रवान हो, भीतर से धनी हो। साहसी हो, जो सच के बाजार में सच के साथ खडा हो सके।

उद्योग :

हाथों से किया जानेवाला कोई भी कार्य उद्योग है। आधुनिक शिक्षा में उसे तरह-तरह के नाम दिये जा रहे हैं मगर निर्धारित समय के अंदर भी उसकी शिक्षा विद्यालयों में समुचित रीति से नहीं दी जा रही है। समाज में शिक्षा का अर्थ ऐश और आराम से लिया जा रहा है। सब विषय भोगों में लिप्त हैं। परंतु भारत की प्रगति शारीरिक श्रम कर के ही की जा सकती है।

शारीरिक श्रम संतुलित मानव जीवन की मूल आवश्यकता है। श्रम अनुशासन लाता है, सादगी लाता है। आत्मविश्वास और साहस जगाता है। कई मानसिक विकृतियों को भी हटाता है। हाथों का इतना महत्व है कि संसार की हर भव्य वस्तु हाथों का ही कमाल है। नई तालीम में गांधी जी ने किसी उद्योग द्वारा विद्यार्थी का शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक विकास प्रतिपादित किया है। शरीर और मन–दोनों क्रियाशील हों, जिससे विद्यार्थी बेहतर व्यक्ति बन जाए। ऐसी शिक्षा से सामाजिक क्रांति होगी। असमानताएँ हट जाएँगी और वह शक्तिशाली बन जायगा।

आत्मा के विकास के लिये बौद्धिक कार्य और शारीरिक विकास के लिये शारीरिक श्रम अपरिहार्य हैं। मानसिक स्वास्थ्य और संतुलन तभी संभव है। शिक्षा द्वारा उत्पादन भी हो और उससे आर्थिक लाभ भी हो। विद्यार्थी अपनी हर सामर्थ्य (faculty) का पूरा-पूरा उपयोग कर सके। सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास हो। इस प्रकार काम पर आधारित शिक्षा मानसिक शांति भी देगी। व्यक्ति को, समाज को और सम्पूर्ण संसार को वह शक्ति और योग्यता देगी और बुद्धि को प्रखर बनाएगी। हिंसा की प्रवृत्ति को हटाएगी। सद्भावनाएँ बढाएगी और दुर्भावनाओं पर विजय दिलाएगी। कातना और बुनना इसके लिये श्रेष्ठ कार्य है।

इस प्रकार की शिक्षा विद्यार्थी को शेष प्रकृति से जोड़ेगी। अन्य प्राणी, प्रकृति—सभी से मानव का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। इस प्रकार

ज्ञान और कर्म का समन्वय हो। समाज में असमानता इसीलिये है कि बौद्धिक कार्य करने वालो का एक वर्ग हो गया है और शारीरिक श्रम करने वालो का दूसरा। यह औद्योगीकरण का प्रभाव है। भारत भी इस औद्योगीकरण की चपेट मे आ गया है, जब कि यह उसकी प्रकृति के प्रतिकूल है। समाज से सरलता लुप्त हो गई है, जटिलताएँ बढ गई है। व्यक्ति पूर्णता पा ही नही सकता इस तरह। वह अपने देशवासियो से, अपने साहित्य मे इसीलिए तादात्म्य स्थापित नही कर पाता। आवश्यकता है कि समाज मे वास्तविक और आर्थिक मूल्यो की खाई कम हो। विद्यालयो मे शारीरिक श्रम और हस्तकलाओ की शिक्षा से जीवन अर्थपूर्ण होगा और मानव के मानव से सम्बध सुधरेंगे।

सहयोग :

यह शिक्षा का तीसरा मूल्य हो। सब एक दूसरे को समझ-बूझकर सहयोग से कार्य करे। लेने ही लेने की, शोषण की जो प्रवृत्ति है, वह हट जाए। सब एक दूसरे को दे और लें। उपवन मे यदि एक ही प्रकार के पुष्प पनपे, तो उसका उतना महत्व न होगा। रकम-रकम के फूल जब एक साथ पनपे, तभी बाग की सार्थकता है। ये सहयोग केवल मानव-मानव में ही न हो, मानव और अन्य प्राणियो में हो और मानव और प्रकृति मे भी हो। तभी विश्वबधुत्व की भावना का विकास होगा।

विद्यालयो मे सास्कृतिक जागृति के द्वारा राष्ट्रीय भावना का प्रसार हो। उत्तम नागरिकता की शिक्षा दी जाए। विभिन्न समुदायो के साथ रहने के अवसर दिये जायें। उन समुदायो में समाज सेवा के लिये विद्यार्थी जाएँ। परिवार के महत्व की पुन स्थापना हो। शिक्षा सस्थाएँ प्रजातात्रिक आधार पर चले, जहाँ विद्यार्थियो पर उत्तरदायित्व सौंपे जाएँ और उनकी योग्यता पर पूरा विश्वास रखा जाये। बच्चे बड़ो से अधिक समझदार और कुशल होते है और उनकी कार्य कुशलता देखने-वाली चीज होती है। परतु उनकी स्वतनता पर सीमा नही लगाई जाए। किसीको भी उत्तरदायी बनाने के लिये उसे उत्तरदायित्व का अनुभव और उपयोग करने का अवसर देना आवश्यक है। विद्यालयो का

यही काम नहीं है कि वे विद्यार्थी को शिक्षित बनाएँ, बल्कि यह भी कि वे समाज के लिये उपयोगी सिद्ध हों।

परिवार सबके लिये महत्वपूर्ण इकाई है। वास्तव में वह जीवन भर की शिक्षा का केन्द्र है। बुजुर्गों के आदर्श का उदाहरण सामने देख कर बच्चा स्वयं ही आदर्शों की शिक्षा पा लेता है।

प्रौढ़- शिक्षा तथा समाज-शिक्षा का भी आयोजन किया जाना चाहिये। यूं तो उन्हें अशिक्षित कहा नहीं जा सकता, क्योंकि केवल लिखना-पढ़ना-जानना ही शिक्षा की कसौटी नहीं है। प्रकृति से, आस-पास के वातावरण से वे सीधे शिक्षा पाते हैं। समाज-शिक्षा के अंतर्गत हर उम्र के लोगों को, विशेषकर माताओं को शिक्षा का आयोजन किया जाना चाहिये।

राज्य अपनी सत्ता का प्रयोग शिक्षा क्षेत्र में न करे। शिक्षा की योजनाएँ राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से न बनें। विनोबा जी ने नये विद्यालयों की चर्चा करते हुए कहा है कि वहाँ शिक्षक और विद्यार्थी हर विषय पर स्वतंत्रतापूर्वक आपस में चर्चा करें। डिग्रियों का महत्व शिक्षा से हटा दिया जाए। समाज-शिक्षा के अंतर्गत रामायण और महाभारत की शिक्षा दी जाए।

नये विद्यालयों की कल्पना विनोबा जी ने की है, जो भव्य इमारतों में न होंगे। स्वाध्याय ही शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ साधन माना जायेगा। सत्ता की नीतियों पर न चल कर स्वाध्याय के द्वारा मानसिक विकास होगा। खुली कक्षाओं में प्यारी पुस्तकों और स्नेही शिक्षकों के बीच अध्ययन होगा। इसके लिये हर परिवार शिक्षा-केन्द्र बने, जहाँ आचार्य और विद्यार्थी में निकटता हो।

'भविष्य के विद्यालयों में शिक्षा जीवन से संबंधित होगी। केवल बच्चे ही शिक्षा नहीं लेंगे, वरन संपूर्ण समाज और विशेष कर माताएँ शिक्षा लेंगी। पाठ्य-पुस्तकें ही ज्ञान का स्रोत नहीं मानी जायेंगी। शिक्षा निरंतर होगी—जीवन भर। शिक्षक से बढ़कर कोई मशीन शिक्षा-सामग्री के रूप में काम में नहीं ली जायेगी। पाठ्यक्रम शाश्वत

मानव-मूल्यों पर आधारित होंगे। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होगी। शिक्षा-योजनाएँ 'आचार्य कुल' के द्वारा बनाई जाएँगी।

गांधीजी का आधुनिक शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा-क्षेत्र में क्रान्ति आवश्यक है। विदेशों ने भी गांधी जी के शिक्षा संबंधी विचारों को महत्वपूर्ण माना है। यूं संसार का नियम है कि युगों के बाद संतों के विचारों का महत्व माना जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक एक श्रेष्ठ शिक्षा-प्रणाली की खोज में लगे हुए शिक्षा-शास्त्रियों के लिये रुकने का ठाँव देती है और देती है पुरातन आदर्शों के आधुनिक समाज के साथ समन्वय की शीतल छाया।

इसमें २५२ पृष्ठ हैं तथा मूल्य २५ रु. है।

श्रीमती श्या को राव
गांधी शिक्षण भवन, बम्बई

—००—

सच्ची शिक्षा

उस आदमी को सच्ची शिक्षा मिलती है, जिसका शरीर इतना सधा हुआ है कि उसके काबू में रह सके और आराम व आसानी के साथ उसका बताया हुआ काम करे। उस आदमी को सच्ची शिक्षा मिली है, जिसकी बुद्धि शुद्ध है, शांत है और न्यायदर्शी है। उस आदमी ने सच्ची पाई है, जिसका मन कुदरत के कानूनों से भरा है और जिसकी इन्द्रियाँ अपने वश में हैं, जिसकी अन्तर्वृत्ति विशुद्ध है, और जो नीच आचरण को धिक्कारता है तथा दूसरों को अपने जैसा समझता है। ऐसा आदमी सचमुच शिक्षा पाया हुआ माना जाता है, क्योंकि वह कुदरत के नियमों पर चलता है। कुदरत उसका अच्छा उपयोग करेगी और वह कुदरत का अच्छा उपयोग करेगा। —गांधीजी

सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान

(माह मई, जून १९७६ का आश्रम-वृत्त)

सेवाग्राम आश्रम के दर्शन के लिये सारे विश्व के यात्री नित्य आते ही रहते हैं। अकेले भी आते हैं और समूहमें भी आते हैं। आश्रम जीवन का अनुभव करने की इच्छासे आश्रम में ठहरना भी चाहते हैं और ठहरते भी हैं।

आश्रम दर्शनार्थी इन यात्रिओंकी सुविधा के लिये एक यात्री-निवास केन्द्रीय सरकार द्वारा बनवाने का प्रयास सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान की ओरसे चलता रहा है। उक्त दो माह की अवधिमें कुल साढे पाँच हजार दर्शनार्थी आये। कुल १९६ टोलियाँ आश्रम दर्शन के लिये आयी। विशेष दर्शनार्थियो में भारत सरकार के उर्जा उपमंत्री,राची (बिहार) तथा विश्वभारती के व्हा चांसलर पंजाब युनिवर्सिटी के प्रोफेसरगण तथा डीन, पंजाब के प्रमुख सम्पादकदाता, भारत सरकार के प्रोबेशनरी रेव्हेन्यू आफिसर तथा सामाजिक कार्यकर्तागण--इन सभी ने आश्रम-दर्शन से प्रेरणा पायी।

आश्रम के दैनिक कार्यक्रम नित्य के समान सतत चलते रहे। आश्रम के प्रथम आश्रमवासी श्री बलवंत सिंह जी का स्वास्थ्य साधारण ठीक रहा। वे अस्पताल से आश्रम में रहने के लिये वापिस आ गये हैं।

नयी तालीम पक्ष

२० जून १९६७ स्व. आर्यनायकम जी का पुण्य दिवस और ३० जून १९७० स्व. आशा देवीजी का पुण्य-दिवस है। इसलिये पूर्व योजना के अनुसार इस अवधि को 'नई तालीम पक्ष' माना गया। इस अवधिमें आनंदवन समाधि-स्थान मे सर्व धर्म सामूहिक प्रार्थनाएँ, अखंड चर्खा कताई, सामूहिक सूत कताई। (सूत्रयज्ञ) तथा सर्व धर्म भक्ति संगीत के कार्यक्रम समय नुकूल सम्पन्न हुये। मित्रो के [illegible] से २७ जून को 'मित्र मिलन' और 'किसान मिलन' का कार्यक्रम आयोजित किया गया। 'किसान मिलन चर्चा' अच्छी रही।

श्री बलवंत सिंह जी तथा श्री ओम प्रकाश जी ने काफी प्रेरणादायी बातें किसानो से की।

रजि० सं० WDA/1 लाइसेंस नं०

मुद्रक : शंकरराव लोंढे, राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा